तर्जनी



मौलिक-संस्कृत-काव्यम्

(हिन्दी अनुवाद सहितम्)

लेखक :—

दुर्गादत्त शास्त्री

डा. सत्यव्रत शर्माजी की
सेवा में सादर भेंट समर्पित :-

दुर्गादत्त

तर्जनी

मौलिक-संस्कृत-काव्यम्

(हिन्दी-अनुवाद-सहितम्)

लेखक :—

दुर्गादत्त शास्त्री
विद्यालंकार, साहित्यरत्न,
(राष्ट्रीयपुरस्कारप्राप्त)

प्रथम संस्करणम्   संवत् २०२६   मूल्यम् :– सपाद नव मुद्राः
९. २५

प्रकाशक :–

शशी तथा शेष भूषण, ग्राम—नलेटी
डाकघर— नलेटी, द्वारा—प्रागपुर
तहसील—देहरा गोपीपुर, जिला—काँगड़ा
(हि० प्रदेश)

मुद्रक :

देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर
विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च
इन्स्टीच्यूट प्रेस, साधु आश्रम,
होशियारपुर ।

समर्पणम्

प्रथमं लिखितं काव्यं राष्ट्रपथप्रदर्शनम् ।
अङ्गीकृतं यथा राष्ट्र गृहाण तर्जनीं तथा ॥

लेखक :—



दुर्गादत्त शास्त्री
विद्यालंकार, साहित्यरत्न
(राष्ट्रीय-पुरस्कार-प्राप्त)
ग्राम—नलेटी, डाकघर—नलेटी, द्वारा—प्रागपुर
तहसील—देहरा गोपीपुर, ज़िला—कांगड़ा (हि० प्रदेश)



हरियाणा राजभवन,
चण्डीगढ़ ।
२२ अप्रैल, १९७०

मुझे श्री दुर्गादत्त शास्त्री द्वारा लिखित मौलिक संस्कृत काव्य "तर्जनी" को पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई है। गांधी शताब्दी वर्ष में श्री शास्त्री द्वारा राष्ट्रपिता गांधी को उनके आदर्शों के प्रति इस पुस्तक के रूप में दी गई श्रद्धाञ्जलि विशेष रूप से प्रशंसनीय है।

प्रस्तुत काव्य के ग्यारह सर्गों में कवि ने दहेजप्रथा, परिवारबाहुल्य, मद्यपान, भ्रष्टाचार और अस्पृश्यता आदि की कुछेक ऐसी राष्ट्रव्यापी समस्याओं के बारे में लिखा है, जो हमारे राष्ट्र को घुन की तरह अन्दर ही अन्दर खाए जा रही हैं । इन जटिल समस्याओं का वर्णन लेखक ने एक नवीन ढंग से करते हुए इनका समाधान भी ऐसे सुझावपूर्ण ढंग से किया है कि पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । लेखक का लक्ष्य "तर्जनी" द्वारा समाज के समक्ष इन समस्याओं का वास्तविक एवं कुत्सित रूप प्रदर्शित करना और इन से बचने के लिए सावधान रहने की प्रेरणा देना था, जिस में वह पूर्णतः सफल हुआ है ।

मैं श्री शास्त्री को संस्कृत की इस कृति पर बधाई देता हूं और उन्हीं के शब्दों में निम्न शुभकामनाएं भेजता हूं :—

दत्त्वा प्रज्ञां छलविरहितां निश्चलां मानवेभ्यः
संदर्श्यैवं निखिलभुवनं भ्रातृसंबंधबद्धम् ।
प्राप्य स्थानं परमरुचिरं काव्यमंदारराजौ
कृत्वा सर्वं मदभिलषितं तर्जनी स्यात्कृतार्था ॥

बीरेन्द्र नारायण चक्रवर्ती,
राज्यपाल हरियाणा

२२-४-७०

I have gone through this Sanskrit composition, entitled "TARJANEE" as written by Shri Durga Datt Shastri, a renowned and famous Sanskrit Pandit and Sanskrit teacher in H P.

There has been a long standing misgiving in contemporary thinking that Sanskrit is a dead Language and now this composition can very certainly remove this doubt as a vehicle of thoughts and expressions.

This "TARJANEE" is not a blind imitation of the old traditions and conventions in composing a Kavya, it is a new approach according to modern thoughts and deeds. I heartily congratulate Pt. Durga Datt Shastri for this modern Sanskrit Composition "TARJANEE".

Dr. D. N. Shukla,
M. A. Ph. D., D. Litt.,
Senior Prof. and Head of Sanskrit
Deptt. Punjab University,
Chandigarh.
6-4-1970.

I have glanced through "TARJANEE"—a Sanskrit Kavya by Pt. Durga Datt Shastri—with considerable interest.

It is a highly readable composition, which has great inspirational value in the present context.

I hope this welcome production attracts good many readers.

SURAJ BHAN
Vice Chancellor,
Punjab University Chandigarh.
April 6, 1970.

श्री दुर्गादत्तशास्त्रिप्रणीतं तर्जनीनामक राष्ट्रियकाव्यमाद्यन्तं सम्यगालोचितम् । कविना राष्ट्रियभावानां साधु प्रदर्शनमकारि । अस्पृश्यतालक्षणमपि नवमसर्गे युक्तियुक्तमेवोदलेखि । किमधिकेन काव्य सर्वात्मना रमणीयम् । एतत्कृते कविः श्री दुर्गादत्तशास्त्री धन्यवादार्हः । काव्यमिदं पाठकैर्भारतशासनेन च क्रीत्वा कवेरुत्साहोऽवश्यं वर्धननीयः । वर्तमानकाले संस्कृतभाषामेव कियन्तोऽधीयते ! तत्रापि काव्यप्रणयनमतीव दुष्करम् । उत्साहे पाठकैः प्रवर्धिते कविरन्यामपि कृतिं कर्तुमुत्संहते । तदस्य काव्यस्य मर्मज्ञैः सर्वात्मनोत्साहवर्धनमत्यावश्यकमिति संमनुते -

जगद्राम शर्मा शास्त्री
(कविरत्नम्)
प्रिंसिपल, सनातनधर्म
संस्कृत कालेज होशियारपुर
२५. ३. १९७०

दुर्गादत्तकृतं परामृतरसं माधुर्यबन्धोज्वल
शौर्याचारकरं कुनीतिभयदं चोत्कोचनिर्वापकम ।
राष्ट्रोद्धारकरं परं सुसरलं दिव्योपदेशप्रदं
काव्यं तर्जनिनामकं विजयतां यावद्धि खे भास्करः ॥

आचार्य दिवाकरदत्त शर्मा
शास्त्री, साहित्याचार्य, काव्यतीर्थ, विद्यावाचस्पति
संस्थापक, दिव्यज्योति (संस्कृतमासिकपत्रम्)
आनन्दलाज जाखू
शिमला—१
२-४-७०

मैंने "तर्जनी" के कुछ अंश पढ़े और आपके सफल काव्य का आनन्द उठाया। आपकी भाषा सुबोध और शैली परिमार्जित है। आशा है, संस्कृत भाषा के अनुरागी पाठक इस से लाभ उठाएंगे।

आपने दहेज आदि वर्तमान समस्याओं पर भी जनता को उद्बुद्ध करने का प्रयास किया है, यह प्रशंसनीय है।

डा० बाबूराम सक्सेना,
एम० ए० डी० लिट्, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा
तकनीकी शब्दावली आयोग शिक्षा
मंत्रालय, भारत सरकार,
नई दिल्ली।
३१-३-१९७०

"तर्जनी" नामक काव्य बनाने का आपका प्रयास प्रशंसनीय है। मैं इसकी सफलता के लिये कामना करता हूं।

आदित्यनाथ झा

उपराज्यपाल, देहली

राजनिवास,

देहली।

११-४-७०

प्राक्कथनम्

हमारी स्वाधीनता अब बाईस वर्ष की हो चुकी। इस सत्य के साथ ही साथ विभिन्न विचार मस्तिष्क में जागृत हो उठे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व मातृभूमि के प्रति जो अनुराग, बलिदान की भावना तथा निष्काम सेवा का व्रत देशवासियों में था क्या वह आज भी उसी रूप में सजीव है? क्या हम सामाजिक बुराइयों को छोड़ रहे हैं या वे हमें अधिकाधिक जकड़ती जा रही हैं? प्राचीन काल में संसार भारत को गुरु क्यों मानता था? उस की पृष्ट-भूमि क्या थी? हमारा वह आध्यात्मिक बल कहाँ है? क्या आज देशवासियों के हृदय में यह उमंग है कि भारत अपने उच्च चरित्र के द्वारा अपने प्राचीन गुरु सिंहासन पर आरूढ़ हो सके? क्या देशवासी राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व को ठीक ढंग से निभा रहे हैं? हमारी राष्ट्रीयता में कहीं कृत्रियता तो नहीं है? भाषावाद, प्रान्तवाद तथा जातिवाद के भूत विघटन का बीज तो नहीं बो रहे हैं? क्या अस्पृश्यता के कलंक को समाज ने धो दिया है? क्या अस्थि-मांस के आधार पर किसी को अस्पृश्य कहना उचित है? अन्ततोगत्वा क्या मानव को मानवता के बिना संसार में जीवित रहने का अधिकार है? इन्हीं प्रश्नों की उपज है यह "तर्जनी" नाम का मौलिक संस्कृत काव्य जो कि राष्ट्र के लिए मेरा द्वितीय तुच्छ उपहार है।

इस काव्य के मुद्रणार्थ विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर के मुद्रणालय प्रबन्धकों ने मुझे जो सहयोग दिया है उसके लिए मैं उन का हृदय से आभारी हूं।

श्री दामोदर जी शास्त्री, आचार्य का मैं विशेष रूप से धन्यवादी हूं जिन्हों ने प्रूफ-संशोधन-कार्य में मेरी प्रशंसनीय सहायता की है।

विद्वद्वृन्द से निवेदन है कि वे हंस के समान सारासार का विश्लेषण कर मुझे कृतार्थं करें।

निर्दोषं यद्भवति भुवने लक्ष्यते नाद्य यावत्
काव्ये मेऽस्मिन्नवगुणगणः कीदृशो वेद्मि नाहम्।
क्षन्तव्योऽस्मि प्रखरमतिभिर्मन्दधीः काव्यकारैः
स्थानं देयं निविडमपि तैः काव्यमालाच्छसूत्रे॥

मीन संक्रान्ति, २०२६

दुर्गादत्तः

विषय-सूची

(Contents)

तर्जनी-सिंहावलोकनम्

पत्रं लिपिकृतं सर्गे प्रथमे कान्तयैकया ।
स्प्रष्टुं नार्हसि मां कान्त शत्रुं यदि न जेष्यसि ॥१॥

द्वितीये शास्त्रिणस्त्यागः प्रधानमंत्रिणा स्तुतः ।
निराकृता प्रजाशंका 'मे पश्चात्किं भविष्यति' ॥२॥

तृतीये रोदिति श्वश्रूर् दायादस्य प्रलोभिनी ।
तस्मिन्नेव स्थिता कोणे यस्मिन् वधूः स्म रोदिति ॥३॥

चतुर्थे महिला चैका पत्युर् दुःशीलपीडिता ।
कुक्कुटस्य ध्वनिं श्रुत्वा त्वरितं निदधे पदम् ॥४॥

पंचमे चाद्भुतं प्रोक्तं गवेषन्तां मनीषिणः ।
कुक्षिच्छेदाय गर्भिण्या नायाति मद्यपो धवः ॥५॥

संबधिनां कलिः षष्ठे जातः सर्गे भयंकरः ।
तर्जन्यां लिखितो हेतुः पठन्तु पाठकाः स्वयम् ॥६॥

दंपती सप्तमे सर्गे दूषयतः परस्परम् ।
सेना कस्यापराधेन शिशूनामावयोरियम् ॥७॥

तर्जयति पतिः पत्नीमष्टमे भोजनोद्युतः ।
पक्वं कीटैः सहैवान्नमन्धा किमसि पापिनि ? ॥८॥

नवमेऽस्पृश्यतायाश्च मर्यादा स्थापिता बुधैः ।
अस्पृश्यः कोऽस्ति संसारे स्पष्टं तत्रास्ति वर्णितम् ॥९॥

दशमे शपथं दत्त्वा पृष्टाः सकलमानवाः ।
हरिजनश्च को नास्ति हरिनिर्मितसंसृतौ ॥१०॥

कामना त्यागपत्रस्य सर्गे चैकादशे कृता ।
कारयेश शुभं कर्म त्यागपत्रं गृहाण वा ॥११॥

TARJANEE

AT A GLANCE

First Sarga—A newly-wed exhorts her husband to lay down his life at his post rather than compromising his country's integrity and solidarity with the agressor at the pain of her refusal to allow him an access to the charming body which she concedes in her letter to be otherwise his and only his.

Second Sarga— The 'small-man' of India earned encomiums for a high sense of duty and blotless character when he resigned as the Union Railway Minister considering himself responsible for the railway mishaps following in quick succession. Praising his devotion to the motherland, Nehru silenced those who raised questions regarding his successor by saying, "the soil from which had risen illustrious sons like L. B. Shastri could not fail to produce one to fill the void created by my passing away."

Third Sarga:— Voracity can take one nowhere. A time comes when every soul realises the truth of this, as did a ravenous mother-in-law who made her sober

and beautiful daughter run away for she had brought with her no dowry, but alas ! it was a bit too late. She made her son marry an uncouth rich girl but was driven to desperation, neglected and shut out of her old station of reverence and authority.

Fourth Sarga :—What do lascivousness and extra-merital relations lead to ? Here appears psychic analysis of a lady who, unable to put up with her husband's loose morality anymore, want to commit suicide. She prays a cock announcing early morning to desist from crowing for some time more so as to make it possible for her to reach the village well, unobserved and hastens her steps.

Fifth sarga :—The character of a husband is dilated upon. The man is found lying unconscious after a drinking bout as if he had no care in the world when his neighbours were shouting for him to come and take the child from out of his dead wife's womb (so that her body could be consigned to the fire). It is for the wise reader to establish a causal relationship.

Sixth Sarga :— Herein are given the causes for a serious quarrel among relations-not committed to words here as that would mar the charm of going through the text. The reader may go through the chapter and find these out for himself.

Seventh Sarga :— Not merely a storm in the tea-cup-a husband and wife, each in turn, holding the other responsible for begetting the army of children they have. Purpose here is both satirical and comic-how each of them tried to prove his/her contention.

Eighth Sarga :— Delineating a 20th century official and the venality inherent in officialdom, is portrayed a man, who little knowing that it is the bribe-money and the qualms of his conscience that are responsible for it, questions his wife's vision, unable to gulp down anything for he feels that the food and deserts prepared that evening are contaminated and contain a lot of foreign matter worms ?

Ninth Sarga :— Are there really untouchables in society ? Of course not. Great sages and seers discuss the problem and establish the basis of untouchability as also the character of an untouchable.

Tenth Sarga :— All are asked on oath—"who is not a 'Harijan' in this world created by 'Hari' ?"

Eleventh Sarga :— The reader is admitted to inner recesses of the heart in this chapter as also is sought inspiration from the divine source. God is prayed by a man to impel him towards good or failing that to free him from the earthly bondage. The reader will find for himself that the chapter is not penned in a meloncholic mood rather it is ripe with light touches as truely as it is full of purpose.



अथ मंगलाचरणम्

आशीर्वादैस्तवैवास्मि सफलः काव्यलेखने ।
मातस्तुभ्यं नमस्काराँस्त्रिदिवे प्रेषयाम्यहम् ॥१॥

मया सेवा कृता नाभूज्जननि तव जीवने ।
तथापि वरदं हस्तं शिरसि त्वं करोषि मे ॥२॥

प्रथमं लिखितं काव्यं राष्ट्रपथप्रदर्शनम् ।
भवत्याः कृपया मातः सम्मानं प्राप्तवद् बहु ॥३॥

इच्छामि लिखितुं मातः सांप्रतं तर्जनीमहम् ।
प्रदेहि सुमतिं मह्यं काव्यं कर्तुं गुणान्वितम् ॥४॥

जडानां तारिणीं देवीं सरस्वतीं नमाम्यहम् ।
केवलं कृपया यस्या लेखनी बलमाप्नुयात् ॥५॥

राष्ट्रवन्दना

शुभ्राः कीर्तिः प्रसरति सदा यस्य सर्वासु दिक्षु
शान्तेर्मार्गे प्रचलति च यत्सर्वदा सौम्यरूपम् ।
यस्मिन् स्थातुं विमलमतयो देवताः कामयन्ते
लोके ख्यातं सुचरितकृते राष्ट्रमाराधयामि ॥१॥

कृष्टा भूमिः फलति कनकं कर्षकैर्यस्य धीरैर्
मुक्तापूर्णाः सकलगिरयो यस्य लोके प्रसिद्धाः ।
यत्सेवन्ते च परमसुखेनर्तवो वारशः षट्
सौंदर्यार्थं भुवि च विदितं राष्ट्रमाराधयामि ॥२॥

सर्वा आशाः सुहृदयदृशाऽऽलोकते यच्च नित्यं
यस्यालोकेऽखिलमपि तमो दूर एव प्रयाति ।
यस्य प्रज्ञा भवति हि सदा हारिणी चापनीतेर्
लोके ख्यातं सुनियमविधौ राष्ट्रमाराधयामि ॥३॥

एकं धर्मं सुखदगतिभिर्यत्र धर्माः प्रयान्ति
सिन्धुं सर्वाः सुजलसरिता यान्ति लोके यथा च ।
सोऽयं धर्मः सकलमनुजैः शस्यते सैकुलेरः
ख्यातं लोकेऽखिलसमदृशं राष्ट्रमाराधयामि ॥४॥

सर्वे प्रान्ताः सुखमनुगताः स्नेहपूर्वं वसन्ति
भाषा एवं परममधुराः सन्ति सर्वाश्च यस्य ।
यस्मिन्नास्ते सुगुणभरितं शासनं च प्रजायाः
सृष्टावेकं सुखदमतिदं भारतं पूजयामि ॥५॥

अथ प्रथमः सर्गः

त्वामहं सत्करिष्ये

And then, you are welcome.



काचित्पत्रं लिखति रमणी युद्धभूमौ प्रयातं
स्वं भर्तारं सुविपुलबलं भीमतुल्यं दधानम् ।
एतत्पत्रं लिखितमधुना वक्षसः शोणितेन
भर्तर् दृष्ट्वा यदिह लिखितं पूर्णतां तन्नयस्व ॥१॥

कोई नारी युद्धभूमि में गये हुए, भीम के समान बड़ी भारी शक्ति को धारण करने वाले अपने पति को पत्र लिख रही है। हे पतिदेव! अब यह पत्र मैंने अपनी छाती के रुधिर से लिखा है। इसे पढ़ें और इसमें जो कुछ लिखा है उसे पूरा करें ॥१॥

एतज्ज्ञातं सरलहृदयैर्भारतस्यास्य लोकैः
सीमास्माकं चरणमथितारातिभिर् मित्रसंज्ञैः ।
"भ्राता भ्राता"-कपटवचनैर्दत्तविश्वासमात्रै-
रन्तःपापैरमलहृदयं दर्शयाद्भिः सकूटम् ॥२॥

इस भारत के सरल मन वाले सब लोगों को यह प्रतीत हो गया है कि हमारे राष्ट्र की सीमा को 'भाई-भाई'– इन कपट भरे वचनों से झूठा विश्वास देने वाले, अन्तःकरण में पाप भरे हुए, छल-कपट के साथ झूठ ही निर्मल हृदय को दिखाने वाले तथा मित्र कहलाने वाले इन शत्रुओं ने छू लिया है ।।२।।

चिन्ता कार्या नहि मम पते शोभना स्वे गृहेऽहं
सर्वं कार्यं सुनिपुणतया सद्मनोऽहं करोमि ।
पित्रोः सेवां विमलमनसा सावधानाचरामि
युद्धक्षेत्रे स सपदि पते मर्दनीयस्त्वयारिः ।।३।।

हे पतिदेव ! आप मेरी चिन्ता न करें । मैं अपने घर पर हर प्रकार से ठीक हूं। मैं घर के काम को बड़ी चतुराई से कर रही हूं। मैं सावधान होकर निर्मल मन से माता-पिता की सेवा कर रही हूं। आप युद्ध-भूमि में उस शत्रु का शीघ्र ही नाश करें ।।३।।

हत्वा शत्रूनपगतभयां मातृभूमिं कुरुष्व
भूमेः शत्रुः सपदि कुटिलो दंडनीयः स एवम् ।
कुर्याद् दृष्टिं न स हिमगिरौ भूय एवं कदाचि-
त्तृप्तां भूमिं स्वरिपुरुधिरेणाचिरादेव धेहि ॥४॥

शत्रुओं को मार कर मातृभूमि के भय को दूर करें। आप उस दुष्ट शत्रु को शीघ्र ही ऐसा दंड दें कि वह फिर कभी भी हिमालय पर दृष्टि न डाले। हे पतिदेव ! आप शीघ्र ही अपने शत्रु के रुधिर से मातृभूमि को तृप्त करें॥ ४॥

दर्शं दर्शं तव भुजबलं कान्त शत्रुर्जघन्यः
कर्णस्पर्शं स भजति यथा साहसं दर्शयस्व ।
शस्त्राघातै रिपुदलवधं पार्थवत्त्वं कुरुष्व
जित्वा शत्रून् गृहमधिगतं त्वामहं सत्करिष्ये ॥५॥

हे पतिदेव ! आप ऐसा साहस दिखावें कि वह नीच शत्रु आपकी भुजाओं की शक्ति को देख कर अपने कानों का स्पर्श करे। आप अर्जुन के समान शस्त्रों के वारों से शत्रुओं के दल का संहार करें। आप शत्रुओं को जीत कर घर आएंगे तो मैं आप का सत्कार करूंगी॥ ५॥

'बापू'गान्धेर्विविधकृतिभिर्मातृभूमिः स्वतंत्रा
न स्यात्सेयं रिपुकरगता प्राणनाशेऽपि कान्त ।
प्राणान् वीरा अजुहवुरिमां बन्धनान्मोक्तुमीश
स्मृत्वा तेषां सुशुभचरितं त्वं कुरुष्वात्मदानम् ॥६॥

हे पतिदेव ! जो मातृभूमि बापू गान्धी के अनेक प्रकार के प्रयत्नों से स्वतन्त्र हुई है वह प्राणों का नाश होने पर भी शत्रु के हाथ में न जाए । इस मातृभूमि को गुलामी से छुड़ाने के लिए अनेक वीरों ने अपने प्राणों का बलिदान कर दिया । उनके ऊंचे चरित्र को याद करके आप भी अपना बलिदान कर दें ॥६॥

चेद् वैधव्यं भवति समरे प्राणहान्या तवाथ
काचिच्चिन्ता न भवति पते संगमश्चावयोः स्यात् ।
स्वर्गे लोके प्रिय सुकृतिनो यत्र गत्वा भवन्ति
कार्यैः पुण्यैर्भुवनविदितैर्मृत्युबन्धाद् विमुक्ताः ॥७॥

हे पतिदेव ! यदि युद्ध में आपकी प्राणहानि से मैं विधवा भी हो जाऊं तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं है। हमारा समागम उस स्वर्ग लोक में होगा जहां जा कर पुण्य वाले लोग संसार में प्रसिद्ध अपने पवित्र कार्यों के द्वारा आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥७॥

पुण्यं कार्यं भवति च पते नाधिकं प्राणदानाद्
रक्षाहेतोः स्वजननभुवः संगरं कान्त गत्वा ।
युष्माकं वै शुभसुचरितैः शौर्यधर्मावलिप्तैर्
मोक्षो मेऽपि प्रिय च भविता योगिनामेत्य लोकम् ॥८॥

हे पतिदेव ! अपनी मातृभूमि की रक्षा के निमित्त युद्धभूमि में जाकर प्राणों के बलिदान से बढ़ कर और कोई पवित्र कार्य संसार में नहीं है। आप के वीरधर्म से सम्बन्धित ऊंचे चरित्र से योगियों के लोक को प्राप्त करके निश्चय ही, मैं भी मोक्ष प्राप्त कर लूंगी ॥८॥

नाथ त्यागं विदधति च ये मातृभूमेर्निमित्तं
गाथास्तेषां सकलमनुजा आयुगं कीर्तयन्ति ।
एतत्सत्यं भवति च पतेऽनश्वरो यो बुभूषुर्
दद्यात्प्राणान् विमलमनसा राष्ट्ररक्षानिमित्तम् ॥९॥

हे पतिदेव ! जो लोग मातृभूमि के लिए बलिदान करते हैं उनके यश को सब लोग युगों तक गाते रहते हैं। यह बात बिलकुल सत्य है कि जो आदमी अमर होना चाहता हो उसे चाहिए कि वह अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए शुद्ध मन से अपने प्राणों का बलिदान कर दे ॥९॥

दातुं भीतिं मनसि च रिपोः सिंहनादं कुरुष्व
धारासारः पतति च यथा गोलिवर्षां विधेहि ।
हत्वानेकान् गमय परतो मृत्युभीतांस्तथान्यान्
यावत्सर्वे न यमपुरगास्त्वं विरामं न कुर्याः ॥१०॥

हे पतिदेव ! शत्रु के मन में भय पैदा करने के लिए शेर के समान गर्जना करें। गोलियों की ऐसी वर्षा करें कि मानो मूसलाधार वर्षा हो रही हो। अनेकों को मार करके मौत से डरे हुए दूसरों को परे हटा दें। जब तक सभी यमराज के दरबार में न पहुंच जाएं, आप विश्राम न करें ॥१०॥

स्थित्वास्माभिः सह च कुटिला मित्रवन्मित्रपंक्तौ
दुष्टा एते स्वयमपि पते पंचशीलं समर्थ्य ।
राष्ट्रेऽस्माकं चरणमधमं धारयित्वा विनाशं
कुर्वन्त्येते वचनाद्विमुखाः पंचशीलस्य तस्य ॥११॥

ये कुटिल एक मित्र के समान मित्रों की पंक्ति में हमारे साथ बैठे और इन दुष्टों ने स्वयं ही पंचशील का समर्थन किया। अब ये अपने वचन से फिर गये हैं और हमारे राष्ट्र में अपना अपवित्र चरण रख कर स्वयं ही उस पंचशील का नाश करने लग पड़े हैं ॥११॥

कामं किञ्चिद् भवतु च पते सन्ति नोपेक्षणीया
एते दंड्या विविधविधिभिर्घोरदण्डं प्रदाय ।
पश्यन्त्येते न पुनरपि नः शैलराजं हिमाद्रिं
विश्वासो मे रिपुविदलने पूर्णदक्षोऽसि कान्तः ॥१२॥

हे पतिदेव ! चाहे कुछ भी हो, इन शत्रुओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इन्हें अनेक प्रकार से ऐसा घोर दण्ड देना चाहिये कि ये फिर कभी हमारे पर्वतराज हिमालय को आंख भर कर न देखें। मुझे विश्वास है कि आप शत्रुओं का संहार करने में पूर्ण दक्ष हैं ॥ १२ ॥

जेता भूत्वा रणभुवि रिपोरेहि मानं त्वमेवं
कृत्स्ने देशे भवतु च यथा नामसंकीर्तनं ते ।
गर्वं कुर्यामहमपि पते कस्य भार्या भवामि
सर्वश्लाघ्यो भवसि च यदि स्वागतं मे करिष्ये ॥१३॥

हे पतिदेव ! आप इस कुटिल शत्रु को जीत कर ऐसा मान प्राप्त करें कि सारे देश में आप की कीर्ति गाई जाय। मुझे भी इस बात का गर्व करने का अवसर मिले कि मैं किस की पत्नी हूं। यदि आप इस प्रकार सब लोगों की प्रशंसा प्राप्त करेंगे तो मैं जी भर कर आप का स्वागत करूंगी ।।१३।।

एतज्ज्ञातं कुटिलरिपवश्छद्मवेषं धरन्ति
धूर्ता एते सकलभुवने पूर्वमेव प्रसिद्धाः ।
कूटैस्तेषामतिपरिचितः सावधानश्च भूयाः
कच्चिन्न स्याद् विकटघटना कान्त जानासि सर्वम् ।।१४।।

यह पहले ही प्रतीत है कि ये शत्रु कपट का वेष धारण करते हैं। अपनी धूर्तता के लिए ये संसार में पहले ही प्रसिद्ध हैं। हे पतिदेव ! आप इनके छल-कपट से सावधान होकर रहें, कहीं कोई विकट घटना न घटे। आप सब बातों को जानते ही हैं ।।१४।।

नारीभाग्ये न भवति पते युद्धभूमौ प्रयाणं
टैंके स्थित्वा भयदवदना चंडिकावद्धरिस्था ।
हत्वा शत्रूनहमगणितान् भारमल्पं व्यधास्यं
सोऽयं खेदो भवति च पतेऽर्धाङ्गिनी विग्रहे न ।।१५।।

हे पतिदेव ! नारी के भाग्य में युद्धभूमि में जाना नहीं लिखा है नहीं तो मैं भयानक आकृति वाली, शेर पर बैठी हुई चण्डी के समान टैंक में बैठ कर असंख्य शत्रुओं को मार कर आप के भार को हल्का करती। यह खेद की बात है कि मैं युद्ध में आपकी अर्धांगिनी नहीं बन रही हूं ।।१५।।

लक्ष्मीबाई रिपुविमथने सिद्धहस्ता प्रसिद्धा
पादं चक्रे प्रथममिह सा मुक्तये मातृभूमेः ।
दृष्ट्वा तस्या अनुपमतमान् खड्गपातांश्च गौरा
धावन्तोऽग्रे विकलनयनाः पृष्ठतस्तामपश्यन् ॥१६॥

महारानी लक्ष्मीबाई शत्रुओं का संहार करने में बहुत प्रसिद्ध थी। सब से पहले उसने ही मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न किया। उसके अद्भुत तलवार के प्रहारों को देख कर अंग्रेज आगे-आगे दौड़ते थे और डरे हुए नेत्रों से उसे पीछे-पीछे देखते थे ॥१६॥

शत्रुर्ज्ञेयोऽपरिमितबलो नैष बोध्योऽथ फल्गु-
र्युद्धक्षेत्रे हरिसमबलं धारयैतं विहन्तुम् ।
सिंहः शौर्यं जनयति सदा कुंजरे जम्बुके न
कालस्त्याज्यो नहि मम पते हस्तजातो भवाद्भिः ॥१७॥

हे पतिदेव ! इस शत्रु को आप तुच्छ न समझें, यह बहुत बड़ी शक्ति वाला है। इसको मारने के लिए आप शेर के समान शक्ति धारण करें। शेर अपनी शक्ति हाथी पर ही दिखाता है, गीदड़ पर नहीं। वीरता दिखाने का जो अवसर आप के हाथ में आया है इस को छोड़ें नहीं ॥१७॥

स्मृत्वा शौर्यं सुभुजनिहितं तावकं कान्त सत्य-
मुत्पद्यन्ते प्रिय च विविधाः कल्पना मानसे मे ।
दर्शं दर्शं तव च नयने क्रोधरक्ते पतन्ति
रक्तालिप्ताः कथमिव पते शत्रवस्तत्र भूमौ ॥१८॥

हे पतिदेव ! आप की भुजाओं की शक्ति को याद करके मेरे मन में सच ही बहुत सी कल्पनाएं पैदा हो रही हैं। वहां युद्धभूमि में क्रोध से लाल-लाल आप के नेत्रों को देख करके खून से लथ-पथ वे शत्रु कैसे गिर रहे होंगे ! ॥१८॥

यद्यस्थास्यं गहनसमरे कान्त साकं त्वयाहु-
मद्रक्ष्यं ते सुदृढ़भुजयोः पाटवं शत्रुहन्तुः ।
एषोऽभावः प्रिय तुदति मे लोचनेऽश्मेव चित्तं
नायं न्यायो भवति समरे कामिनीनां निषेधः ॥१९॥

हे पतिदेव ! यदि रणभूमि में मैं आप के साथ ठहरी होती तो शत्रुओं का नाश करने वाले आप की मजबूत भुजाओं की चातुरी को मैं देख लेती। यह कमी मेरे मन को इसी प्रकार दुःखी कर रही है जैसे नेत्र में पड़ा हुआ कंकर नेत्र को कष्ट पहुँचाता है। युद्ध में स्त्रियों के प्रवेश पर जो रोक लगाई गई है वह महिला-जगत् के साथ न्याय नहीं किया गया है ॥१९॥

वीराः पंक्तौ शृणु मम पते सन्ति ये चाग्रिमायां
तेषां कान्त त्वमपि बहुशः साहसं वर्धयस्व ।
शीर्षे भूत्वा गमय सकलानग्रतो जेतुकामान्
नेता श्रेष्ठो भवति यदि वै सिद्धिरन्वेति पादौ ॥२०॥

हे पतिदेव ! जो अगली पंक्ति में बहादुर खड़े हैं उन के साहस को आप स्वयं बढ़ाएं। विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले उन बहादुरों के आगे होकर आप उन्हें शत्रुओं के सामने

ले जाएं। यदि नेता अच्छा हो तो सिद्धि पैरों के पीछे दौड़ी-दौड़ी आती है ।।२०।।

आनेतव्यं प्रियतम रिपोः शीर्षमेकस्य गेह-
मुच्चे वेणौ कचसहचरं लम्बमानं करिष्ये।
आयास्यन्ति प्रिय न विहगाः क्षेत्रमेतेन भीता
एवं मुक्तिर्ननु च भविता वादनाद् ढोलकस्य ।।२१।।

हे पतिदेव! एक शत्रु का सिर घर ले आइयेगा, मैं उसे केशों के समेत ऊंचे बाँस पर लटका दूंगी। इस के डर से पक्षी खेत में नहीं आयेंगे। इस प्रकार पक्षियों को भगाने के लिए ढोल बजाने से भी छुटकारा हो जायेगा ।।२१।।

प्रातःकाले प्रतिदिनमहं नित्यचर्यां करोमि
पश्चात् स्नात्वा नियममनुगा मंदिरं यामि कान्त।
तत्र स्थित्वा सकलजगदाधारमीशं नमामि
प्रत्यागत्य प्रिय च सदने व्यापृताहं भवामि ।।२२।।

हे पतिदेव! मैं प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी नित्यचर्या करती हूं। फिर स्नान करके नियमपूर्वक मन्दिर में जाती हूं। वहां कुछ समय ठहर करके सकल संसार के आधार भगवान् को नमस्कार करती हूं। फिर वहां से लौट कर घर के काम में जुट जाती हूं ।।२२।।

युद्धं जेतुं प्रतिदिनमहं चंडिकां पूजयामि
चायुष्कामा तव हि सुपते शंकरं तोषयामि ।
सस्यश्यामा विविधमणिभिर्भूषिता मातृभूमिर्
हस्ताच्छत्रोः कथमपि पते नाप्नुयान्मानभंगम् ॥२३॥

हे पतिदेव ! मैं आपकी युद्ध-विजय की कामना के लिए प्रति-दिन चण्डी का पूजन करती हूं। आपकी लम्बी आयु की इच्छा से भगवान् शंकर की आराधना करती हूं। खेतों से हरी-भरी, अनेक प्रकार की मणियों से सजी हुई हमारी मातृभूमि का शत्रु के हाथ से किसी प्रकार भी तिरस्कार न हो ॥२३॥

मन्ये नित्यं तव सुपितरौ देवतुल्यौ च गेहे
यावच्छक्यं भवति च पतेऽभ्यर्चनां वै करोमि ।
श्वश्रूं जाने प्रियतम सदा पार्वतीं शंभुतुल्यं
तातं वेद्मि स्वशुभमनसा प्रत्ययं मे कुरुष्व ॥२४॥

हे पतिदेव ! मैं आपके माता-पिता को घर पर देवता के समान समझती हूं। जहां तक मुझ से हो सकता है, मैं उनकी पूजा करती हूं। मैं अपने शुद्ध मन से सास को पार्वती के समान और श्वसुर को महादेव के बराबर समझती हूं, आप मेरा विश्वास करें ॥२४॥

एका वेणी मम च शिरसि स्थास्यति प्राणनाथ
नाधास्येऽहं मम सुवदने चाङ्गरागं छटायै ।
रक्तं रागं प्रियतम न मे संकरिष्ये नखेषु
यावद् भूत्वा समरविजयी कान्त गेहं त्वमेषि ॥२५॥

हे पतिदेव ! जब तक आप युद्ध को जीत कर घर नहीं आ जाते तब तक मैं अपने सिर पर एक ही गुत करूंगी। मैं शोभा के लिए अपने शरीर पर पाउडर आदि नहीं लगाऊंगी और अपने नाखूनों में सुर्खी भी नहीं लगाऊंगी ॥२५॥

दास्ये नाहं शृणु मम पते चक्षुषोरंजनं मे
नैवञ्चाहं रदनपुटयोर्लालिमां दर्शयिष्ये ।
यास्याम्येवं न जनकगृहं प्राणनाथ ब्रवीमि
यावद् भूत्वा समरविजयी कान्त गेहं त्वमेषि ॥२६॥

हे पतिदेव ! जब तक आप युद्ध को जीत कर घर नहीं आते, मैं अपने नेत्रों में अंजन नहीं लगाऊंगी, अपने होठों को लाल नहीं करूंगी और अपने पिता के घर भी नहीं जाऊंगी ॥२६॥

शय्या मेऽथ क्षितितलगता स्थास्यति प्राणनाथ
खट्वास्पर्शं कथमपि पते कर्तुमिच्छामि नाहम् ।
एकं वस्त्रं कटतलगतं विस्तरं मेऽथ तावद्
यावद् भूत्वा समरविजयी कान्त गेहं त्वमेषि ॥२७॥

हे पतिदेव ! जब तक आप युद्ध जीत कर घर नहीं आ जाते, मैं चारपाई पर नहीं सोऊंगी, मेरा बिछौना धरती पर ही होगा, चटाई पर रखा हुआ एक वस्त्र ही मेरे लिए बिस्तर का काम देगा ।।२७।।

स्वादिष्टा ये सुमधुरतमाः सन्ति लोके पदार्था-
स्त्यागं तेषामथ मम पते सर्वथाहं करिष्ये ।
भोक्ष्ये तावत्सलवणमहं केवलं भोजनं च
यावद् भूत्वा समरविजयी कान्त गेहं त्वमेषि ।।२८।।

हे पतिदेव ! जब तक आप युद्ध को जीत कर घर नहीं आ जाते तब तक मैं संसार के स्वादु और मीठे पदार्थों को कभी ग्रहण नहीं करूंगी, केवल नमक से ही अपना भोजन खाऊंगी ।।२८।।

शंका कार्या नहि मम पते मानसे स्वे कदापि
भार्यां मां न प्रिय च गणयेर्यादृशीं तादृशीं वा ।
संपत्तौ वा विपदि च पते तुल्यरूपं दधामि
चिन्तां हित्वा समरविजयी कान्त भूयास्त्वमेवम् ।।२९।।

हे पतिदेव ! आप अपने मन में किसी प्रकार की शंका न करें, मुझे आप कोई ऐसी-वैसी पत्नी न समझें । मेरा सुख और दुःख में एक ही रूप है । आप निश्चिन्त होकर युद्ध में विजय प्राप्त करें ।।२९।।

दत्ता कोषे शृणु मम पते पारितथ्या मदीया
दत्त्वा चैनां प्रियतम मया साधितोऽस्ति प्रभावः ।
अन्या नार्यः सुभग सहसा साहसं मे निरीक्ष्य
दानं चक्रुः सरलमनसा भूषणानां सहासम् ॥३०॥

हे पतिदेव ! मैंने अपनो सिंगारपट्टी (सोने का बना सिर का भूषण) रक्षाकोष में दे दी । इसके देने से लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा । मेरे साहस को देख कर दूसरी स्त्रियां भी हंसती हुई सरल मन से अपने भूषणों का दान करने लग पड़ीं ॥३०॥

सर्वा नार्यः स्वमृदुवपुषो भूषणानि प्रदाय
राष्ट्रस्नेहं समधिकतमं नाथ विज्ञापयन्ति ।
बाला वृद्धाः सकलमनुजा राष्ट्ररक्षानिमित्तं
प्राणान् दातुं तरलमनसा कामयन्ते स्ववारम् ॥३१॥

हे पतिदेव ! सभी स्त्रियां अपने कोमल शरीर के भूषणों को देकर राष्ट्र के प्रति अधिक से अधिक प्यार को जता रही हैं। राष्ट्र की रक्षा के लिए बच्चे-बूढ़े सब लोग अपने प्राणों का बलिदान करने के लिए चंचल मन से अपनी-अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥३१॥

रक्षाकोषे समधिकधनं कर्तुमीहेऽथ नाथ
गेहे गेहे प्रतिदिनमहं यत्र तत्र प्रयामि ।
नार्यो मह्यं ददति बहुलं केवलं पूरुषा न
सत्यं भाषे शृणु मम पते निश्चितोऽन्ते जयो नः ॥३२॥

हे पतिदेव ! सुनो, मैं रक्षाकोष में अधिक से अधिक धन इकट्ठा करना चाहती हूं। इस उद्देश्य के लिए मैं प्रतिदिन जहां-तहां घर-घर जा रही हूं। केवल पुरुष ही नहीं, स्त्रियां भी मुझे बहुत-कुछ दे रही हैं। हे प्रियतम, मैं सच बोलती हूं कि अन्त में जीत हमारी ही होगी ॥३२॥

वीरा भूमे रिपुवधकृते चाग्रतो ये प्रयाताः
शीतं तत्र प्रभवति यथा सान्द्रतामेति रक्तम् ।
तेभ्यो नार्यो विविधवसनान्यूर्णया साधयन्ति
नेत्री भूत्वा शृणु मम पते कार्यभारं वहामि ॥३३॥

हे पतिदेव ! मातृभूमि के जो वीर, शत्रु को मारने के लिए जहां आगे युद्धक्षेत्र में गये हुए हैं वहाँ इतनी सर्दी होती है कि खून जम जाता है। स्त्रियां उन लोगों के लिए ऊन के कई प्रकार के वस्त्र तैयार कर रही हैं। मैं उनकी नेता बन कर सारे कार्य-भार को अपने कन्धों पर धारण कर रही हूं ॥३३॥

भ्रामं भ्रामं सकलनगरे हाटकं चार्जयामि
श्रावं श्रावं समरसुकथास्तोषमायान्ति लोकाः ।
नामं नामं रणविजयिनो मातृभूमिं नमन्ति
युद्धक्षेत्रादिह मम पते व्यस्तता नास्ति चोना ॥३४॥

हे पतिदेव ! मैं सारे नगर में घूम-घूम कर सोना इकट्ठा कर रही हूं। लोग युद्ध की कथाओं को सुन-सुन कर गद्गद हो रहे

हैं। वे युद्धविजेताओं को नमस्कार करके मातृभूमि की वन्दना कर रहे हैं। हे प्रिय, यहां की व्यस्तता युद्धक्षेत्र से कम नहीं है ।।३४।।

ग्रामे ग्रामे सकलपुरुषा मातृभूमिं स्तुवन्ति
दातुं शीर्षं सुविहितपणाः प्रस्तुताः कान्त सन्ति ।
स्वं स्वं वारं चपलहृदयेनोत्सुका मार्गयन्ति
कान्तोत्साहो मम दशगुणः साहसं वीक्ष्य तेषाम् ।।३५।।

हे पतिदेव ! ग्राम-ग्राम में सब लोग मातृभूमि की स्तुति कर रहे हैं। वे अपने राष्ट्र के लिए सिर देने की प्रतीक्षा किये हुए हर समय तैयार बैठे हैं। उत्कंठासहित चंचल हृदय से अपनी-अपनी बारी की वे प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे कान्त, उनके साहस को देख कर मेरा उत्साह भी दस गुना हो गया है ।।३५।।

एका तृष्णा तरुणिजगतः शाम्यतां नैव याति
सर्वा नार्यो निजसुपतिभिर् भ्रातृभिश्चाथ सार्धम् ।
स्कन्धे स्कन्धं मिलितमिव ताः कर्तुमिच्छन्ति नाथ
जेतुं शत्रून् कुटिलमनसो वामनान् क्रूरचीनान् ।।३६।।

हे पतिदेव ! महिला-जगत् की एक तृष्णा शान्त नहीं हो रही है। सब नारियां कुटिल मन वाले, बौने, क्रूर चीनी शत्रुओं को जीतने के लिए अपने पतियों और भाइयों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाना चाहती हैं ।।३६।।

वीथ्यां वीथ्यां विकलहृदया अंगनाः संलपन्ति
काचिद् ब्रूते गरिमवचसा स्वां सखीं स्नेहसिक्ता ।
आलि ! भ्राता मम च कुरुते शौर्यकर्मेदृशं स
एकेनैवागणितरिपवो मृत्युलोकं प्रणीताः ॥३७॥

गली-गली में व्याकुल हृदय वाली स्त्रियां आपस में बातें कर रही हैं। प्यार से भीगी हुई कोई गौरवपूर्ण वचन से अपनी सखी को कहती है कि हे सखी ! मेरा भाई तो बहुत बहादुरी का काम कर रहा है, उस अकेले ने ही अनगिनत शत्रुओं को मौत के घाट उतार दिया ॥३७॥

काचिद् भर्तुः पुनरथ पितुः शंसते वा सुतस्य
सेनास्माकं भवति भयदा वैरिणां लोपकर्त्री ।
तासां वाचः शृणु मम पते निश्चितां मामकुर्वन्
नास्मान् कश्चिद् भवति सकले जेतुमर्हश्च लोके ॥३८॥

कोई अपने पिता की बात करती है, कोई पति की बात करती है तो कोई अपने पुत्र के बारे में कह रही है। वह सब कहती हैं कि हमारी सेना इतनी भयानक है कि वह शत्रुओं को नष्ट-भ्रष्ट कर देगी। हे पतिदेव ! उनके वचनों से मुझे पूरा निश्चय हो गया है कि सारे संसार का कोई भी देश हमें जीत नहीं सकता है ॥३८॥

नाथास्माकं शुभहिमगिरिः पूज्यते यः सदैव
सर्वैर्लोकैर्विनयसहितं मस्तकं स्वं नमद्भिः ।
शृङ्गाण्यद्रेर्हिमपरिवृतान्यभ्र रम्याण्यनन्ते
सोऽपि स्पृष्टो रिपुभिरधमैश्चीनदेशे वसद्भिः ॥३९॥

हे पतिदेव ! जिस हिमालय की सब लोग नम्रता के साथ अपने सिर को झुकाते हुए पूजा करते हैं, जिसकी बर्फ से ढकी हुई चोटियां आकाश में शोभा देती हैं, उस हिमालय का भी चीन देश में रहने वाले नीच शत्रु ने स्पर्श कर लिया है ॥३९॥

रुद्राणी या तरुणिजगता पूज्यते कामनाभ्य-
स्तस्यास्तातः प्रियनगपतिर्धर्षितः शत्रुभिस्स्यात् ।
वामात्रत्या वसतु च सुखं कीदृशी धृष्टतेयं
यत्नः कार्यो भवतु न यथा पार्वती साऽप्रसन्ना ॥४०॥

हे प्रियतम ! जिस पार्वती को सारी स्त्रियां अपनी कामनाओं के लिये पूजती हैं उसके पिता प्यारे हिमालय का शत्रु के हाथ से तिरस्कार हो और यहाँ की स्त्रियां सुख से रहें यह कितनी धृष्टता की बात है । आप ऐसा प्रयत्न करें कि पार्वती हम पर रुष्ट न हो जाय ॥४०॥

सौभाग्याय प्रिय च महिलाः प्रार्थयन्ते भवानीं
तुष्टा चैषा बहुविधवरान् कामिनीभ्यो ददाति ।
तस्यास्तातं स्पृशतु न रिपुर्गाधितां विद्धि कान्त
रुष्टोमा चेद्भवति च पते प्रश्रयं कस्य यामः ॥४१॥

स्त्रियां अपने सौभाग्य के लिए पार्वती से प्रार्थना करती हैं। वह भी प्रसन्न होकर स्त्रियों को कई प्रकार के वरदान देती हैं। हे पतिदेव! उसके पिता को शत्रु छूने न पाये। आप विषय की गहराई तक पहुंचने का प्रयत्न करें, यदि पार्वती हम पर रुष्ट हो गई तो हम किस की शरण में जाएंगी ॥४१॥

शूरस्त्वं न प्रिय गिरिमिमं रक्षितुं चेत्समर्थो
न स्वीकुर्यात्कथमपि शिवः पूजनं चास्मदीयम् ।
एवं भर्तः सकलविषये सूक्ष्मदृष्टिं विधाय
संरक्षैनं स्मरहरनतं शैलराजं हिमाद्रिम् ॥४२॥

हे पतिदेव! यदि आप इस पर्वत की रक्षा न कर सकेंगे तो महादेव भी हमारी पूजा स्वीकार नहीं करेंगे। इसलिए आप सारी बात पर गहराई से विचार करके शिव जी के पूज्य इस पर्वतराज हिमालय की रक्षा करें ॥४२॥

शोभां यस्य प्रिय च कवयोऽवर्णयन् मुक्तकंठं
काव्ये शैल्या ललिततमया शब्दसौंदर्यवत्या ।
कान्तैतस्मिन् प्रियहिमगिरौ नाधिकारो रिपोस्स्यात्
संप्राप्तोऽयं प्रिय सुसमयो दर्शितुं शौर्यमद्य ॥४३॥

कवियों ने अपने काव्य में सुन्दर शब्दों से भरी हुई, मधुर शैली से जिस हिमालय की शोभा का मुक्तकण्ठ से वर्णन किया है उस प्यारे हिमालय पर किसी भी प्रकार शत्रु का अधिकार न हो। हे पतिदेव! अब वीरता दिखाने का सुअवसर आ गया है ॥४३॥

तप्त्वा यस्मिन् सुगहनतपः पूर्वजा बोधमीयुर्
जेपुः मंत्रान् सुमधुरगिरा कंदरासूपविश्य ।
अद्रिः सोऽयं रिपुकरगतः कान्त न स्यात्कदापि
संप्राप्तोऽयं प्रिय सुसमयो दर्शितुं शौर्यमद्य ॥४४॥

हमारे पूर्वजों ने जिसमें गहरी तपस्या करके ज्ञान प्राप्त किया और जिसकी गुफाओं में बैठकर मन्त्रों का जप किया वह किसी भी प्रकार शत्रु के हाथ में न जाने पाये । हे पतिदेव ! अब बहादुरी दिखाने का सुअवसर आ गया है ॥४४॥

देशस्यायं च भवति पते मस्तकं विश्वसिद्धं
दीर्घात्कालाज्जगति विदितो रक्षको भारतस्य ।
रक्षास्याद्य प्रिय विधिवशात्स्कंधयोस्ते प्रसक्ता
संप्राप्तोऽयं प्रिय सुसमयो दर्शितुं शौर्यमद्य ॥४५॥

सारा संसार जानता है कि हिमालय हमारे राष्ट्र का मस्तक है तथा यह भी सारे संसार को ज्ञात है कि यह भारत का रक्षक है। आज संयोगवश इसकी रक्षा का भार आप के कन्धों पर आ गया है। हे पतिदेव ! आज वीरता दिखाने का सुअवसर आ गया है ॥४५॥

संदिश्यन्ते　　　परमविमलैरम्बरस्पर्शिशृंगैः
सर्वे देशा "भवतु भवतां निश्छलं मानसं भोः" ।
दुष्टः किन्तु प्रिय न कुरुते सज्जनोक्तिं स्वकर्णे
सोऽयं बोध्यः कुटिलमनसां योग्यया दंडनीत्या ॥४६॥

आकाश को छूने वाली इसकी सफेद चोटियाँ संसार के सब देशों को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि अरे देशो ! आप के मन में किसी भी प्रकार का छल-कपट न हो। परन्तु हे प्रियतम, दुष्ट आदमी सज्जन की बात को अपने कान में धारण नहीं करता है, इसे तो कपटी लोगों के योग्य दण्डनीति से ही समझाना चाहिए ॥४६॥

ह्यूनत्सांगः समनयादितः संस्कृतिं कान्त दिव्यां
तामाश्रित्य प्रिय मनुजता वामनैस्तैरधीता।
विस्मृत्यैतेऽखिलमुपकृतं भापयंत्यस्त्रमत्ता
एभ्यः शिक्षां शुभमतिमतां दोर्बलेन प्रदेहि ॥४७॥

ह्यूनत्सांग यहां से जो दिव्य संस्कृति ले गया था उसके सहारे उन बौनों ने मनुष्यता सीखी। ये अस्त्रों के घमण्डी, हमारे सारे उपकारों को भूल कर हमें डरा रहे हैं। हे पतिदेव ! आप अपनी भुजाओं के बल से इनको भले लोगों की शिक्षा दें ॥४७॥

दातुं संघे च पदमितरैः सार्धमस्मै प्रयत्नो
वारंवारं बहु च विहितः कान्त जानाति लोकः।
चेत्साफल्यं न समधिगतं नास्ति दोषोऽस्मदीयः
कर्मैवास्य प्रभवति यथा सर्वतो निन्दितोऽसौ ॥४८॥

सारा संसार जानता है कि इसे राष्ट्रसंघ में दूसरों के साथ स्थान दिलाने के लिए हमने बार-बार बहुत प्रयत्न किया।

यदि सफलता नहीं मिली तो इस में हमारा क्या दोष है। इसके कर्म ही ऐसे हैं कि सारा संसार इसकी निन्दा करता है ॥४८॥

शस्त्रागारे समुचिततमः संग्रहो नायुधानां
कान्तास्माभिर्भवति विहितः शान्तिकामैश्च लोके ।
एषोऽभावः सकलमनुजैः सांप्रतं ज्ञात एव
शौर्याभावे न जगति पते राष्ट्ररक्षास्ति शक्या ॥४९॥

हे पतिदेव ! संसार में शान्ति की कामना से हमने अपने शस्त्रभंडार में शस्त्रों का ठीक संग्रह नहीं किया। परन्तु अब इस त्रुटि को सब लोगों ने समझ लिया है कि शक्ति के अभाव में राष्ट्र की रक्षा नहीं हो सकती ॥४९॥

सर्वे देशा विविधविधिभिः प्रस्तुता योगदाने
सत्यं नस्ते प्रहरणधनान्युद्यताः सन्ति दातुम् ।
याच्ञा किन्तु प्रियतम न मे रोचते स्तोकमात्रा-
प्युच्चं शीर्षं न भवति पते याच्ञया जीवितानाम् ॥५०॥

सब देश अनेक प्रकार से हमारा सहयोग देने को तैयार हैं, वे सच ही हमें शस्त्र तथा धन देने को प्रस्तुत हैं । परन्तु हे पतिदेव ! मुझे माँगना तो जरा भी अच्छा नहीं लगता क्योंकि मांग कर जीने वालों का सिर कभी भी ऊंचा नहीं होता ॥५०॥

दूरे नास्ति प्रिय स समयः शस्त्रनिर्माणदक्षा
विज्ञानज्ञाः प्रखरमतयो भारतस्याभिमानाः ।
शीघ्रं सर्वैः सफलगतिभिर्दूरमारैश्च शस्त्रै-
रेतद् राष्ट्रं सकलजगतः स्थापयिष्यन्ति शीर्षे ॥५१॥

हे पतिदेव ! वह समय अब दूर नहीं रहा है जब कि शस्त्रों की रचना करने में चतुर, कुशाग्रबुद्धि, भारत के लिए अभिमान-भूत हमारे वैज्ञानिक शीघ्र ही सफल गति वाले, दूर-दूर तक मार करने वाले शस्त्रों के द्वारा इस राष्ट्र को सारे संसार के आगे ले जाएंगे ॥५१॥

अण्वस्त्राणां विहितरचना भापयान्ति प्रियास्मान्
पापा एते वयमपि परं नैव पश्चाद् भवामः ।
अण्वज्ञा नो झटिति रचनां कर्तुमर्हन्ति नून-
माज्ञापेक्षा भवति च पते सर्वकारस्य तेभ्यः ॥५२॥

ये पापी अणु अस्त्रों की रचना करके हमें डरा रहे हैं, परन्तु हम भी इन से पीछे नहीं हैं। हे प्रियतम ! हमारे अणु-पण्डित कुछ ही दिनों में परमाणुबम की रचना कर सकते हैं; उन्हें सरकार की ओर से आज्ञा मिलने की ही देर है ॥५२॥

दृष्ट्वाऽस्माकं ध्वनिसमगतीन् वायुयानीयवृन्दान्
भेष्यन्त्येते सकलरिपवो वर्षतो वज्रतुल्यान् ।
भूमौ तेषां हि भयदबमान् घातिनो दुष्टशत्रोर्
दूरे नास्ति प्रिय स समयः प्रत्ययं मे कुरुष्व ॥५३॥

आकाश में ध्वनि के समान गति वाले, शत्रु की भूमि पर उन दुष्ट शत्रुओं को मारने वाले वज्र के समान भयानक बमों को बरसाने वाले हमारे वायुयानों की पंक्ति को देखकर सब शत्रु डरा करेंगे। हे प्रियतम ! वह समय अब दूर नहीं रह गया है। आप मेरा विश्वास करें ॥५३॥

गर्जिष्यन्ति प्रिय जलनिधौ भीतिदाः युद्धपोता
वीच्यास्फालैः स्वविकटरिपूनाह्वयन्तः सकाशम् ।
तेषां भीत्या न खलु रिपवश्चागमिष्यन्ति पार्श्वे
दूरे नास्ति प्रिय स समयः प्रत्ययं मे कुरुष्व ॥५४॥

तरंगों के उतार-चढ़ाव से अपने विकट शत्रुओं को पास बुलाते हुए हमारे भयानक युद्धपोत समुद्र में गर्जना करेंगे। उनके भय से निश्चय ही कोई भी शत्रु हमारे निकट नहीं आएगा। हे प्रियतम ! वह समय अब दूर नहीं है। आप मेरा विश्वास करें ॥५४॥

योत्स्यन्तेऽभ्रे भयदवदना वायुयानीयवृन्दा
धाविष्यन्ति प्रिय च रिपवः प्राणभीत्या विदूरे ।
नैवाक्रान्ता शृणु च भविता मातृभूरस्मदीया
दूरे नास्ति प्रिय स समयः प्रत्ययं मे कुरुष्व ॥५५॥

भयानक आकृति वाले हमारे वायुयानों के समूह आकाश में युद्ध करेंगे। तब हमारी मातृभूमि पर कोई भी शत्रु आक्रमण नहीं करेगा। हे प्रियतम ! वह समय अब दूर नहीं है। आप मेरा विश्वास करें ॥५५॥

सेनास्माकं प्रिय च भविता सज्जितेयं नवीनैः
शस्त्रैरेवं भवति भयदा कान्त सत्यं रिपुभ्यः ।
देशः कश्चित् प्रिय नहि तदा भारतं भापयेत
दूरे नास्ति प्रिय स समयः प्रत्ययं मे कुरुष्व ॥५६॥

हमारी सेना आधुनिक शस्त्रों से इस प्रकार सुसज्जित होगी कि शत्रु इससे सचमुच ही डरा करेंगे। तब हमारे प्यारे भारत को कोई भी नहीं डराएगा। हे पतिदेव ! वह समय अब दूर नहीं है। आप मेरा विश्वास करें ॥५६॥

चीनाक्रान्तिः शुभवरसमा ज्ञास्यते कान्त नून-
मेभिः सुप्ताः शृणु मम पतेऽरातिभिर्जागृताः स्मः।
लोके सत्यं भवति च पते दैवयोगात्कदाचिद्
दुष्टैर्लोकैः सुजनजनितं संकटं लाभकारि ॥५७॥

हे पतिदेव ! चीन का आक्रमण अवश्य ही वरदान समझा जाएगा। हम सोये हुए थे, इन शत्रुओं ने हमें जगा दिया। संसार में दुष्ट लोग सज्जनों के लिए जो संकट पैदा करते हैं वह कभी-कभी दैवयोग से लाभदायक सिद्ध हो जाता है ॥५७॥

लोके कश्चित् प्रिय न भविता नूनमागामिकाले
द्रक्ष्यत्यस्मान् कलुषितदृशा बाहुवीर्यप्रमत्तः।
कश्चित् किन्तु भ्रमपरिगतो धृष्टतां चेत्करोति
चेष्टा तस्य प्रिय नु भविता स्वात्मघातेन तुल्या ॥५८॥

हे पतिदेव ! भविष्य में संसार में कोई भी ऐसा आदमी नहीं होगा जो अपने बाहुवीर्य का घमंडी हमें टेढ़ी दृष्टि से देख सके। परन्तु यदि भ्रान्ति के कारण कोई ऐसा करेगा तो उसकी यह चेष्टा आत्महत्या के समान ही होगी ॥५८॥

स्वाधीन्यं नो न भवति पते यौवनन्यस्तपादम्
नैवाद्येदं प्रियतम तथा षोडशाब्दे प्रविष्टम् ।
साक्षात्कारो भवति विपदो यस्य बाल्ये नरस्य
सर्वायुष्यं सकलविपदां मस्तके तस्य पादः ॥५९॥

हे प्रियतम ! जो स्वाधीनता हमने प्राप्त की है वह अभी जवान नहीं हुई है । अभी इसकी आयु सोलह वर्ष की भी नहीं हुई । जिस मनुष्य को बचपन में ही विपत्ति का सामना करना पड़ जाता है वह फिर सारी आयु विपत्तियों को कुचल देता है ॥५९॥

एते कामं शृणु मम पते धृष्टतां दर्शयन्तु
सूचीमात्रां करतलगतां भूमिमेते न शक्ताः ।
कर्तुं यत्र प्रियतम सम संस्थितः सैनिकैस्त्वम्
जेता भूत्वा सुविमलयशा गेहमागच्छ शीघ्रम् ।६०॥

हे पतिदेव ! ये शत्रु चाहे कितनी भी धृष्टता करें, जहां पर आप सैनिकों के साथ अड़े हुए हैं, ये सूई के बराबर भी हमारी भूमि को अपने हाथ में नहीं कर सकते । हे प्रियतम ! आप युद्ध में विजय प्राप्त करके अपने निर्मल यश को फैलाते हुए शीघ्र ही घर आवें ॥६०॥

गौरा युष्मान् शृणु मम पते सिन्धुपारं च निन्युर्
युद्धार्थं ते भयदरिपुभिस्तत्र युद्धावसाने ।
कीर्तिः प्राप्ता सकलभुवने सैनिकैरस्मदीयैः
स्वीया भूमी रिपुकरगता कान्त लज्जास्पदं चेत् ॥६१॥

अंग्रेज अपने भयानक शत्रुओं के साथ लड़ने के लिए आप को समुद्र के पार ले जाते रहे। वहां युद्ध के अन्त में हमारे सैनिकों ने सारे संसार में यश प्राप्त किया। हे पतिदेव ! यदि अपनी भूमि शत्रु के हाथ में चली गई तो यह बड़ी लज्जा की बात होगी ॥६१॥

ध्यात्वा सर्वं गहनमनसा योजना योजनीयाः
कच्चित् किञ्चिद् भवतु न पते लज्जितं मे मनः स्यात् ।
एवं कार्यं पुनरपि रिपुर्मस्तकं नोन्नमेत्स
भग्नं शीर्षं यदि न फणिनो जीवितः स्यात्पुनः सः ॥६२॥

हे पतिदेव ! सारी बात को गहराई से सोचकर योजनाएं बनाएं। कहीं कोई ऐसी बात न हो कि मेरा मन लज्जित हो। कोई ऐसा उपाय करें कि वह शत्रु फिर सिर न उठाए। फण वाले सांप के सिर को यदि अच्छी तरह न कुचला जाय तो उस के दूसरी बार जीवित होने का भय बना रहता है ॥६२॥

पाकश्चापि प्रियतम सदा भाषते नो विरुद्धं
दुष्टः शत्रुर्यदि न मथितः सोऽपि कुर्यात्प्रमादम् ।
शिक्षा देया प्रिय च रिपवे शिक्षणं स्यात्परेषां
कश्चित्कुर्यान्नहि खलमतिः साहसं द्वेष्टुमस्मान् ॥६३॥

हे पतिदेव ! पाकिस्तान भी सदा हमारे प्रतिकूल बोलता रहता है। यदि इस दुष्ट शत्रु का अच्छी तरह दमन न किया गया तो हो सकता है वह (पाकिस्तान) भी आक्रमण करने का

प्रमाद करे। हे प्रियतम ! इस शत्रु को ऐसी शिक्षा दें जिस से दूसरों को भी शिक्षा मिले। फिर कोई भी दुष्ट हमसे द्वेष करने का साहस नहीं करेगा ॥६३॥

ध्यायं ध्यायं स्वजननभुवं मानसं मोदते मे
दृष्ट्वाऽरण्यं गिरिपरिवृतं सर्वचेतोहरं च।
सस्यश्यामा सुविमलतमा भूमिरत्यंतदिव्या
नैते गृध्राः शृणु मम पते पादमस्यां धरेयुः ॥६४॥

अपनी जन्मभूमि का ध्यान करके मेरा मन बहुत प्रसन्न हो रहा है। पहाड़ों से घिरे हुए, सबके चित्त को हरने वाले वनों को देख कर मेरा मन फूला नहीं समाता। खेती से हरी-भरी तथा निर्मल यह भूमि अत्यन्त ही सुन्दर है। हे पतिदेव ! ये गीध इस भूमि पर पैर न रखने पाएं ।।६४।।

सेनाशक्तिर्भवति महती ज्ञायते सम्यगेतद्
दम्यः शत्रुः शृणु मम पते योजनाभिर्भवद्भिः।
दत्ते भूरि प्रियतम फलं योजनाबद्धकार्यं
स्थित्वैकान्तेऽखिलजनरलैर्मंत्रणां कान्त कुर्याः ॥६५॥

यह बात अच्छी तरह मालूम है कि हमारी सेना की अपार शक्ति है। आप योजनाएं बनाकर शत्रु का दमन करें। हे पतिदेव ! योजना बना कर जो काम किया जाता है उसका

बहुत फल मिलता है। आप एकान्त में बैठकर सारे जनरलों के साथ सलाह करें ॥६५॥

जासूसानां सकलगतयः सावधानं निरीक्ष्याः
कूटं कृत्वा विविधवचनैर्वञ्चयन्ति प्रलोभैः।
विश्वासो न प्रिय च शुभदः सम्मतो युद्धकाले
संग्रामज्ञा विमलमतयः प्राक्तने प्राहुरेतत् ॥६६॥

जासूसों की सारी चालों को सावधानी से देखें। ये जासूस छल-कपट करके कई प्रकार के प्रलोभनों से तरह-तरह के वचनों द्वारा ठगी करते हैं। हे पतिदेव! युद्ध के समय किसी पर भी विश्वास करना अच्छा नहीं होता है। संग्राम-विद्या को जानने वाले बुद्धिमान् लोगों ने यह बात प्राचीन काल में ही कही है ॥६६॥

स्वीकृत्यार्थं विचलति च यो निश्चितात्स्वीयमार्गाद्
भेदं शत्रून् प्रति च नयते राष्ट्रघातं करोति।
पापात्मायं प्रियतम न मे मर्षणीयः कदाचि-
त्तस्मै देयः सुनिपुणतया केवलं मृत्युदंडः ॥६७॥

जो मनुष्य धन को लेकर अपने निश्चित मार्ग से गिर जाता है, शत्रुओं को अपना भेद पहुंचा देता है वह राष्ट्र की हत्या करता है। हे प्रियतम! ऐसे नीच पापी को कभी क्षमा न करें, उसे बड़ी चतुराई से केवल मौत का ही दंड दें ॥६७॥

यत्नोऽस्माकं भवति च सदा मित्रतापादनाय
सर्वा आशाः कपटरहितैरक्षिभिर्लोकयामः ।
एते दुष्टा न शुभमनसाऽधारयन् कान्त सख्यं
मैत्री दुष्टे भवति च यथा मूत्रितं बालुकासु ॥६८॥

हे प्रियतम ! हमने सदा ही मित्रता के लिए प्रयत्न किया है, हम सारी दिशाओं को निष्कपट आंख से देखते हैं। परन्तु इन दुष्टों ने हमारी मित्रता को अच्छे मन से ग्रहण नहीं किया। दुष्ट आदमी के साथ मित्रता करना तो ऐसा होता है जैसे रेत में मूत्र करना ॥६८॥

शान्तिर्लाभं जनयति पते केवलं शान्तिवद्भ्यो
दुष्टाः शान्तेर्नहि परिचिता दंडनं कान्त तेषाम् ।
लाभं दत्ते सकलजगते कथ्यते सत्यमेत-
च्छाठ्यं कुर्याद् यदि नहि शठे मन्यते नैव दुष्टः ॥६९॥

हे पतिदेव ! शान्ति, शान्ति वालों के लिए ही लाभदायक होती है। दुर्जन आदमी शान्ति की परिभाषा को नहीं समझते, उनको तो दंड ही देना चाहिये, इससे सारे संसार को लाभ पहुंचता है। सच कहते हैं कि यदि दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार न किया जाए तो वह मानता नहीं है ॥६९॥

लोकः सर्वः प्रिय च कुरुतेऽनादरं शीतलानां
क्रूरस्याग्रे प्रिय न सहते कोऽपि गन्तुं बलेन ।
विज्ञानज्ञैर्निजपदतलैरिष्यते स्पर्श इन्दोः
कोऽप्यादित्यं प्रति न चकमे मृत्युभीतः प्रयातुम् ॥७०॥

सज्जन स्वभाव वाले लोगों का सब लोग अपमान ही करते हैं। क्रूर के सामने तो कोई भी आदमी बलपूर्वक नहीं जा सकता। वैज्ञानिकों ने अपने चरणों से चन्द्रमा को ही छूने की इच्छा की है, सूर्य के सामने किसी भी वैज्ञानिक ने मौत के भय से अब तक जाने की इच्छा नहीं की ॥७०॥

एतत्सत्यं भवति च पते शक्तिहीना जना ये
तेषां सर्वे सकलभुवने कुर्वतेऽनादरं हि।
शक्तिर्येषां भवति भुजयोस्त्रासयन्ते जगत्ते
प्राप्तुं मानं जगति सकले शक्तिमन्तो भवेम ॥७१॥

हे पतिदेव ! यह बात सत्य है कि जो लोग शक्ति से हीन होते हैं, संसार में सब लोग उनका अनादर करते हैं। जिनकी भुजाओं में शक्ति होती है उनसे सारा संसार डरता है, इसलिए संसार में मान प्राप्त करने के लिए हमें शक्तिशाली बनना पड़ेगा ॥७१॥

सर्वे लोकाः प्रिय बलवतां पुष्टिदाः सन्ति सत्यं
कश्चिन्नास्ति प्रिय च भुवने निर्बलानां सहायः।
वन्याग्नेर्यो भवति च सखा मातरिश्वा स एव
शान्तं दीपं सपदि कुरुते दुर्बलं नाथ मत्वा ॥७२॥

हे पतिदेव ! संसार में सब लोग शक्ति वालों के पक्ष का ही समर्थन करते हैं, निर्बल का कोई भी सहायक नहीं होता।

जो वायु जंगल की आग का मित्र होता है, वही दीपक को निर्बल समझ कर उसे शीघ्र ही बुझा देता है ।।७२।।

देवाः पूर्वं रिपुभिरसुरैः पीडिताः कान्त भूरि
विष्णुं जग्मुः प्रातिकृतिकृते पृष्टवन्तो विनम्राः ।
शौरिर्मंत्रं सकलविबुधान् प्राह किञ्चित्सकोप-
मेकीभूत्वा प्रचुरबलिनो जेतुमर्हन्ति शत्रून् ।।७३।।

प्राचीन काल में जब राक्षसों ने देवताओं को बहुत पीड़ित कर दिया तो देवता प्रतिशोध के सम्बन्ध में बड़ी नम्रता के साथ विष्णु भगवान् के पास गये और उपाय पूछा। विष्णु भगवान् ने सब देवताओं को कुछ गुस्से के साथ एक ही मंत्र बताया कि संगठित होकर शक्तिशाली बनो, फिर तुम शत्रुओं को जीत सकते हो ।।७३।।

पूर्वं गत्वा कुरुत विबुधा अर्जनं चण्डशक्ते-
रन्योन्यं चेद् भवति भवतां भेदभावश्च कश्चित् ।
स्थित्वैकान्ते विमलमनसा दूरतो द्रावयन्तु
पश्चाद् युद्धे सरलविधिना जेतुमर्हन्ति शत्रून् ।।७४।।

हे देवताओ ! जाओ, पहले अपने में प्रचण्ड शक्ति पैदा करो। यदि आप का आपस में कोई भेदभाव है तो एकान्त में बैठकर शुद्ध मन से पहले उसे दूर करो। फिर आप युद्ध में आसानी से शत्रुओं को जीत सकते हैं ।।७४।।

विष्णोर्वाक्यं श्रवणकुहरे स्थापनीयं सदैव
येनास्माकं भवतु न पते मानहानिः कदापि ।
शान्त्यालापा न च रुचिकरा सन्ति मे कान्त सत्यं
गच्छन्त्वेते सपदि तपसे काननं शान्तिकामाः ॥७५॥

हे पतिदेव ! विष्णु भगवान् के वचन को सदा कान में रखना चाहिये जिससे हमारी मानहानि न हो। हे प्रियतम ! मैं सच कहती हूं, मुझे शान्ति के वचन अच्छे नहीं लगते हैं। जो लोग शान्ति की बातें करते हैं उन्हें चाहिए कि वे तपस्या के लिए जंगल को चले जाएं ॥७५॥

एका बाधा शृणु मम पते बाधते मामजस्रं
केचिल्लोकाः कुमतिपतिताः प्रान्तवादे निमग्नाः ।
मूढा अन्ये दधति कटुतां चाधिकृत्याथ भाषाः
स्वार्थस्तेषां भवतु न पते कारणं खंडनस्य ॥७६॥

हे पतिदेव ! एक पीडा मुझे लगातार दुःखी कर रही है कि खोटी बुद्धि वाले कुछ लोग प्रान्तों के झगड़ों में फंस गए हैं, कुछ लोग भाषाओं का आधार लेकर आपस में विरोध कर रहे हैं। उनका यह स्वार्थ कहीं मातृभूमि के विघटन का कारण न बन जाय ॥७६॥

आस्मिन् काले सकलमनुजैरेकता साधिताऽस्ति
पश्याम्येतां शृणु मम पते कृत्रिमां कालयोग्याम् ।
रूपं स्थायि प्रिय भवति चेदेकतायाः सदार्थं
सर्वो लोकः प्रभवति न नो जेतुमन्ते युगस्य ॥७७॥

हे पतिदेव ! इस समय तो सब लोगों ने एकता बना ली है परन्तु मैं इस एकता को समयानुसार बनावटी समझती हूं। यदि यह एकता सदा के लिए स्थायी हो जाय तो सारा संसार युग के अन्त में भी हमें जीत नहीं सकता ॥७७॥

नैतत्कार्यं भवति भवतां सैन्यपंक्तौ स्थिताना-
मत्रस्थाहं शृणु मम पते चास्य पूर्तिं विधास्ये ।
कच्चिन्न स्यान्मम च तुलनं संकटे न्यूनमस्मिन्
नोपालंभो भवतु भवते "भार्यया किं कृतं ते" ॥७८॥

परन्तु हे पतिदेव ! आपकी गणना सैनिकों में है इसलिए यह एकता आदि स्थापित करना आपका काम नहीं है। इस काम को तो मैं ही यहां ठहरी हुई पूरा करूंगी। कहीं ऐसा न हो कि इस संकट में मेरा पलड़ा आप से हल्का रह जाय। लोग आपको यह उलाहना न दें कि आपकी पत्नी ने क्या काम किया ॥७८॥

लोभः कार्यः प्रिय न भवता युद्धकाले पदस्य
कुर्वन्त्येवं मलिनहृदयाः सन्ति नीचा जनास्ते ।
एकं साध्यं भवति भवतां मातृभूशत्रुनाशः
संरक्ष्यैनां निजरिपुकरात्प्राप्स्यसे कान्त कीर्तिम् ॥७९॥

हे पतिदेव ! आप युद्धकाल में किसी पद का लालच न करें। जो लोग ऐसा करते हैं वे नीच होते हैं। बस, आपका तो मातृभूमि के शत्रु का नाश करना ही एकमात्र ध्येय है। हे प्रियतम ! शत्रु के हाथ से इस मातृभूमि की रक्षा करके आप कीर्ति प्राप्त करेंगे ॥७९॥

स्वार्थात्स्वीयादुपरि च पते राष्ट्रचिन्ता विधेया
स्वस्थे राष्ट्रे सकलजनता प्रत्यहं मानमेति ।
उच्चं राष्ट्रे भवति च पदं सैनिकानां पवित्रं
कच्चित्पातो न भवतु पते स्वार्थलिप्सावशात्ते ॥८०॥

हे पतिदेव ! अपने स्वार्थ को छोड़कर पहले राष्ट्र की चिन्ता करनी चाहिये। एक स्वस्थ राष्ट्र में सारी जनता दिन-प्रतिदिन मान को प्राप्त करती है। राष्ट्र में सैनिक का पद बहुत ही ऊंचा और पवित्र होता है। हे प्रियतम ! किसी स्वार्थ के कारण कहीं आपकी गिरावट न हो जाय ॥८०॥

ना चेत् कश्चिद् भवति च पते राष्ट्रवामं प्रयाति
योऽन्नं भुक्त्वा स्वजननभुवो दृष्टिमन्यत्र धत्ते ।
एषो नास्ति प्रियतम खलः प्रत्ययाधानयोग्यो
बाह्यः शत्रुर्नहि च भयदो मध्यवर्ती यथाऽऽस्ते ॥८१॥

जो मनुष्य राष्ट्र के प्रतिकूल जाता हो, जो अन्न तो अपनी मातृभूमि का खाता हो परन्तु दृष्टि जिसकी कहीं दूसरी ओर ही रहती हो, हे प्रियतम ! ऐसा दुष्ट आदमी विश्वास के योग्य नहीं होता है । बाहर का शत्रु इतना भयानक नहीं होता है जितना देश के भीतर का शत्रु भयंकर होता है ॥८१॥

संख्ये गत्वा प्रिय न कुरुते पालनं यो व्रतस्य
भीरुर्भूत्वा व्रजति न पुरः प्राणमोहं करोति ।
देशद्रोही भवति स पते मातृभूमेररातिर्-
र्दृक् वैरी भवति भयदो वस्तुतः कान्त शत्रोः ॥८२॥

जो मनुष्य युद्ध में जाकर व्रत का पालन नहीं करता है, जो डरपोक बनकर आगे नहीं जाता है और प्राणों का मोह करता है ऐसा आदमी मातृभूमि का शत्रु तथा देशद्रोही होता है। हे प्रियतम ! ऐसा शत्रु वास्तविक शत्रु से भी भयानक होता है ॥८२॥

अन्नं भुक्त्वा प्रिय न सफलं जन्मभूमेः करोति
जीवन् सोऽपि प्रिय मम पते मृत्युमेवोपपन्नः ।
तस्याच्छ्रेष्ठो भवति च पशुर् घासमात्रं प्रभुज्य
सोढ्वा कष्टं विविधविधिभिः सेवते स्वामिनं स्वम् ॥८३॥

हे पतिदेव ! जो मातृभूमि का अन्न खाकर उसे सफल नहीं बनाता है वह जीता हुआ भी मरे हुए के समान है। उससे तो वह पशु ही अच्छा है जो घासमात्र खाकर अनेक प्रकार के कष्ट झेलकर भी अपने स्वामी की सेवा करता है ॥८३॥

गावोऽरण्ये मुदितमनसा नैव घासं चरन्ति
वत्सा एते प्रिय च चकिता ऊर्ध्वकर्णा भ्रमन्ति ।
एषां क्षोभं गमय सुपते मातृभूमिं सुरक्ष्य
हत्वा शत्रून् गृहमधिगतं त्वामहं सत्करिष्ये ॥८४॥

ये गौएं जंगल में प्रसन्न मन से घास नहीं चर रही हैं, ये बछड़े चकित होकर ऊंचे कान करके घूम रहे हैं। हे पतिदेव ! आप मातृभूमि की रक्षा करके इनके क्षोभ को दूर करें। आप शत्रु को जीतकर घर आएंगे तो मैं आपका सत्कार करूंगी ॥८४॥

एते भीता हरिणशिशवो घासमत्तुं न यान्ति
मृग्यः सन्ति प्रियतम दवेनेव भीताश्च दीनाः ।
जीवा एते गठितनयनाः शक्तिपुंजे त्वदीये
भीतिं दूरे कुरु मम पते दर्शयित्वा स्वशौर्यम् ॥८५॥

डरे हुए ये हिरणों के बच्चे घास चरने नहीं जा रहे हैं,

हिरणियां इस प्रकार दीन हैं मानो जंगल की आग से डरी हुई हों। हे प्रियतम! ये जानवर आप के बाहुबल में ही अपनी आंखें लगाए हुए हैं। आप अपनी वीरता दिखाकर इनके भय को दूर करें ॥८५॥

पश्याम्येनं मृगपतिमहं कन्दरायां बहिःस्थं
पृष्ठे कृत्वा जिगमिषति वै चंडिकां मातरं सः।
युद्धक्षेत्रे द्रुततरगतिर्दुर्हृदां मर्दनाय
सोत्कंठोऽयं नयति च पलाँश्चंडिकाया विलम्बात् ॥८६॥

मैं इस शेर को गुफा के बाहर बैठा हुआ देख रही हूं। यह चंडी को अपनी पीठ पर बिठाकर शत्रुओं का संहार करने के लिए तेज गति से युद्धक्षेत्र में जाना चाहता है। चंडी के देर करने से अब यह बड़ी उत्कंठा से अपने समय को बिता रहा है ॥८६॥

अश्वा एते पिहितनयनाः सन्ति वैराग्यलिप्ताः
साहाय्यार्थं विगतसमये युद्धभूमिं प्रजग्मुः।
लक्ष्मीबाई प्रिय हतवती सप्तिमारुह्य शत्रू-
नन्ये वीरा अपि मम पते सन्ति चैषां कृतज्ञाः ॥८७॥

इन घोड़ों ने वैराग्य से आंखें बंद कर ली हैं। ये प्राचीन-काल में सैनिकों की सहायता के लिए युद्धभूमि में जाते थे। हे प्रियतम! लक्ष्मीबाई ने घोड़े पर चढ़ कर ही शत्रुओं को मारा था। दूसरे बहादुर भी इनके उपकारों के कृतज्ञ हैं ॥८७॥

किन्त्वद्यत्वे न विहितफला प्राक्तना युद्धरीतिः
कर्तुं शक्ता न किमपि पते वाजिनः सन्ति भीताः।
सर्वानेतानपगतभयान् कान्त शीघ्रं विधेहि
हत्वा शत्रून् गृहमधिगतं त्वामहं सत्करिष्ये ॥८८॥

परन्तु आज वह पुराना युद्ध का ढंग फलदायक नहीं है। इसलिए ये घोड़े कुछ भी करने में असमर्थ हैं और इसीलिए डरे हुए हैं। हे प्रियतम ! आप अपनी शक्ति के द्वारा उनके भय को दूर करें। आप शत्रु को जीतकर घर आएंगे तो मैं आपका सत्कार करूंगी ॥८८॥

एते वृक्षा उपवनगता आकृतिं धारयन्ति
किंचिद् व्यग्रां शृणु मम पते कारणं तत्र वेद्मि।
संवीक्ष्यैते स्वजननभुवं शत्रुभिर्धर्षितां हि
चिन्ताग्रस्ता मुकुलितदलाः सन्ति शंकाकुलाश्च ॥८९॥

ये उपवन के पेड़ बहुत व्याकुल दिखाई दे रहे हैं। हे प्रियतम ! मैं इनकी व्याकुलता के कारण को समझती हूं। ये अपनी मातृभूमि को शत्रु से आक्रान्त देखकर चिन्ता और शंका में पड़ गए हैं और इनके पत्ते मुरझा गये हैं ॥८९॥

आम्रे स्थित्वा मधुरवचनं कोकिला भाषते न
मौनेनास्ते सुविशदवचाः पंजरस्थः शुकोऽपि ।
चिन्तालिप्ताः सकलविहगा यत्र तत्र भ्रमन्ति
सर्वे सन्ति प्रिय च विकला मातृभूसंकटेन ॥९०॥

आम के पेड़ पर कोयल मीठा नहीं बोल रही है, स्पष्ट वाणी बोलने वाला यह तोता भी पिंजरे में चुपचाप बैठा है। ये सारे पक्षी चिन्ता में पड़े हुए जहां-तहाँ घूम रहे हैं। हे प्रियतम ! मातृभूमि के संकट से सब जीव बहुत व्याकुल हैं ॥९०॥

युद्धं जित्वा द्रुतमपनयेः पक्षिणां पादपानां
चिन्तामेतां शृणु मम पते प्रार्थयेऽहं भवन्तम् ।
मोघा याञ्चा प्रिय न विहिता मे कदापि त्वया हि
जित्वा शत्रून् गृहमधिगतं त्वामहं सत्करिष्ये ॥९१॥

हे पतिदेव ! मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप युद्ध को जीत कर पक्षियों और पेड़ों की चिन्ता को दूर करें। मैं जानती हूं कि आपने मेरी प्रार्थना को कभी निष्फल नहीं किया है। आप शत्रु को जीतकर घर आएंगे तो मैं आपका सत्कार करूंगी ॥९१॥

ज्योत्स्ना चेयं न धवलतमा कान्त पश्यामि मंदा-
मेषा चापि प्रिय रिपुभयान्म्लानतामेव याता ।
अस्याः कुर्याः स्वभुजतरसा मंदतां कान्त दूरे
जित्वा शत्रून् गृहमधिगतं त्वामहं सत्करिष्ये ॥९२॥

यह चांदनी भी अब उतनी चमकीली नहीं रही है, शत्रु के भय से इसकी चमक फीकी पड़ गयी है। हे प्रियतम ! आप अपनी भुजाओं के बल से इसकी म्लानता को दूर कर। आप शत्रुओं को जीतकर घर आएंगे तो मैं आपका स्वागत करूंगी ॥९२॥

स्मृत्वा शौर्यं प्रियतम च ते मानसं मोदते मे
भावावेशे चलितहृदया स्वागतं चिन्तयामि ।
किं किं कार्यं प्रियतम मया स्वागते तावकेऽत्र
युद्धश्रान्तस्त्वमुरसि पते नेष्यसे मे श्रमं स्वम् ॥९३॥

हे प्रियतम ! आपकी वीरता का स्मरण करके मेरा मन बहुत प्रसन्न हो रहा है। भावों की उत्कटता से मेरा हृदय विचलित हो रहा है और मैं आपके स्वागत के बारे में सोच रही हूं कि आपके स्वागतार्थ मुझे क्या-क्या करना होगा। हे पतिदेव ! आप अपनी युद्ध की थकावट को मेरे वक्षस्थल पर दूर करेंगे ॥९३॥

श्रान्तं युद्धे विविधविधिभिस्त्वामहं तोषयिष्ये
श्वेतास्माकं भवति महिषी सा प्रसूतास्ति कान्त।
आज्यं भर्तर् 'मन'परिमितं संचितं ते करिष्य
अल्पाहारे सुभग भवते सेतिकाः साधयिष्ये ॥९४॥

हे पतिदेव ! आप युद्ध की थकावट लिये हुए घर आएंगे। मैं अनेक प्रकार से आपको प्रसन्न करूंगी वह हमारी बूरी भैंस (Whitebuffalo) सू पड़ी है। मैं आपके लिए एक मन घी जोड़ कर रखूंगी। अल्पाहार में मैं आपको सेमियां बनाकर दिया करूंगी ॥९४॥

सर्वं गेहं विविधविधिभिर्भूषितं संकरिष्य
एवं भर्तर् हरितमजिरं गोमयेनोपलेप्स्ये।
देहल्यां मे सुहारितशुभां स्थापयिष्ये च दूर्वां
कान्तालिन्दं सुरुचिरतमैर्भूषयिष्ये च रंगैः ॥९५॥

हे प्रियतम ! मैं अपने सारे घर को अनेक प्रकार से सजाऊंगी, मैं आंगन में हरा गोबर लगाऊंगी, घर की देहली पर मंगल-दायक हरी-हरी दूब रखूंगी तथा बाहर के चबूतरे को सुन्दर सुन्दर रंगों से सजाऊंगी ॥९५॥

सन्त्युद्याने विविधविटपाः पुष्पभारैर्नता ये
दत्त्वा वारि प्रतिदिनमहं पालयामि प्रभूतम् ।
मालास्तेषां शुभसुमनसां कारयिष्ये त्वदर्थं
कंठे कृत्वा समरजयिनो गौरवं भूरि मंस्ये ॥९६॥

हमारी वाटिका में जो अनेक प्रकार के पेड़ हैं वे फूलों के भार से झुक गये हैं। मैं प्रतिदिन पर्याप्त पानी देकर उनकी पालना कर रही हूं। मैं आपके लिए उनके सुन्दर फूलों की मालाएं बनाऊंगी। जब आप युद्ध को जीतकर घर आएंगे तो आपके गले में उन मालाओं को पहनाऊंगी और अपने आपको गौरवशाली समझूंगी ॥९६॥

अन्ये वृक्षा अथ च फलदा रोपिता ये त्वयाऽऽसन्
तेषां चापि प्रिय सुविधिना पालनं सम्यगस्ति ।
वृक्षाः संपद्भवति महती राष्ट्रमुन्नेतुमुच्च-
मादेशोऽयं तव मनसि मे कान्त सत्यं दृढोऽस्ति ॥९७॥

हे प्रियतम ! और भी जो फलदार पेड़ आपने लगाए थे मैं उनका भी अच्छे ढंग से पालन कर रही हूं। राष्ट्र को ऊंचा उठाने के लिए पेड़ राष्ट्र की बड़ी भारी संपत्ति होते हैं, आप का यह आदेश मैंने अपने मन में अच्छी तरह से बिठाया हुआ है ॥९७॥

सर्वे वृक्षा उपवनगता भूषिता नामपट्टै-
राकर्षन्ति प्रिय जनमनः पुष्पभारैर्नतास्ते ।
ज्ञानं तेषां भवति सुगमं नामपट्टान् विलोक्य
दृष्ट्वाऽऽरामे मम कुशलतां स्याः पते हर्षितस्त्वम् ॥९८॥

वाटिका के सब पेड़ फूलों के भार से झुक गए हैं, मैंने इन सब पर नामपट्ट लगा दिये हैं। ये लोगों के मन को आकर्षित कर रहे हैं। नामपट्टों के देखकर इनका पहचानना आसान हो गया है। हे प्रियतम ! बगीचे में मेरी चातुरी को देखकर आप निश्चय ही प्रसन्न होंगे ॥९८॥

कोणाः सर्वे सुभग विहिता वाटिकायाः सुसज्जा
मध्ये मध्ये भ्रमणकृतये प्रस्तरैर्मार्गभूषा ।
मार्गेष्वेषु प्रियतम यदादाय मां यास्यसि त्वं
मामिन्द्राणीममरपतिना मंस्यते नाथ लोकः ॥९९॥

मैंने वाटिका के सब कोणों को अच्छी तरह सजा दिया है। घूमने के लिए बीच-बीच में पत्थरों से रास्ते सजा दिये हैं। हे पतिदेव ! जब आप इन रास्तों में मुझे साथ लेकर घूमेंगे तो लोग मुझे इन्द्र के साथ घूमती हुई इन्द्राणी समझेंगे ॥९९॥

हस्ताभ्यां मे शृणु मम पते तोडयिष्ये फलानि
कृत्वैतानि प्रिय च करयोर्मोदमाप्स्ये महान्तम् ।
श्रोष्याम्येवं समरसुकथा वाटिकायां भवद्भ्यो
जेता भूत्वा सुखदवरदो गेहमागच्छ शीघ्रम् ॥१००॥

हे पतिदेव ! मैं अपने हाथ से फलों को तोड़कर जब आपके हाथों में दूंगी तो मुझे बड़ी भारी प्रसन्नता होगी । मैं वाटिका में बैठकर आपसे युद्ध की कथाएं सुनूंगी । आप युद्ध में विजय प्राप्त करके सुखदायक और वरदायक बनकर शीघ्र ही घर आवें ॥१००॥

वीणाभ्यासं प्रतिदिनमहं सावधानं करोमि
कृत्वाङ्के तां मधुरमधुरं वादयन्ती पते त्वाम् ।
युद्धश्रान्तं नियमविधिना प्रत्यहं तोषयिष्ये
हत्वा शत्रूनधिगतयशा गेहमागच्छ मंक्षु ॥१०१॥

मैं प्रतिदिन सावधान होकर वीणा का अभ्यास कर रही हूं । हे प्रियतम ! मैं उस वीणा को अपनी गोद में लेकर मीठा-मीठा बजाती हुई, युद्ध में थके हुए आपको प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रसन्न करूंगी । आप शत्रुओं को मारकर, यश को प्राप्त करके शीघ्र ही घर आइए ॥१०१॥

वेद्म्यारोहानहमतिशुभानेवमेवावरोहाँ-
स्तालज्ञानं प्रिय भवति मे शोभनं वा लयस्य ।
भावा भर्तः शृणु तव तदा शृण्वतां मेऽथ गीतं
कूर्दिष्यन्ते विविधगतिभिर्वीचयस्ता यथाब्धेः ॥१०२॥

मैं आरोह और अवरोह को बहुत अच्छे ढंग से जान गई हूं। मुझे लय और ताल का ज्ञान भी अच्छी प्रकार हो गया है। हे प्रियतम ! मेरे गीत को सुनते हुए आप के भाव इस प्रकार नाचेंगे जैसे समुद्र की तरंगें अनेक गतियों के साथ नाचती हैं ॥१०२॥

कायो मेऽयं भवति च पते केवलं हि त्वदीयो
जित्वा शत्रून् यदि सदनमागच्छसि त्वं हि नाथ ।
स्पर्शं कर्तुं प्रभवसि पते सत्यमेतद् वदामि
भीरोः स्पर्शं नहि वपुरिदं कान्त सोढा कदापि ॥१०३॥

हे पतिदेव ! यह मेरा शरीर केवल आपका ही है, परन्तु मैं आपको यह सच बता देती हूँ कि यदि आप शत्रु को जीत कर घर आएंगे तब ही आप मेरा स्पर्श कर सकेंगे। यह शरीर डरपोक के स्पर्श को कभी सहन नहीं कर सकेगा ॥१०३॥

नेदं पत्रं भवति सुगमं कान्त जानीहि सत्यं
यन्निर्दिष्टं तदातिकठिनं खड्गधारासमानम् ।
त्वं मां स्प्रष्टुं प्रभवसि पते पूर्तिमेतस्य कृत्वा
भीरोः स्पर्शं नहि वपुरिदं कान्त सोढा कदापि ॥१०४॥

हे पतिदेव ! इस बात को समझ लं कि यह पत्र आसान नहीं हैं, इसमें जो कुछ लिखा गया है उसका पूरा करना बड़ा कठिन है । मानो तलवार की धारा पर चलने के समान है । हे प्रियतम ! आप इस पत्र की बात को पूरा करके ही मेरा स्पर्श कर सकते हैं । यह शरीर भीरु के स्पर्श को कभी सहन नहीं कर सकेगा ॥१०४॥

शस्त्रागारे भवतु हि पते संग्रहश्चायुधानां
कीर्तिर्यायात्सकलभुवने वीरतायाः सदा नः ।
स्वातंत्र्यं नो गिरिवदटलं स्यादिदं प्रार्थयामि
शत्रुः कश्चित्पुनरिह पते दृष्टिपातं न कुर्यात् ॥१०५॥

हे पतिदेव ! मेरी यही प्रार्थना है कि हमारे शस्त्रभंडार में शस्त्रों का भारी संग्रह हो । हमारी वीरता की कीर्ति सारे संसार में फैल जाय । हमारी स्वाधीनता पहाड़ के समान अटल हो । भविष्य में कोई भी शत्रु हमारी मातृभूमि पर दृष्टिपात न करे ॥१०५॥

इति प्रथमः सर्गः समाप्तः

अथ द्वितीयः सर्गः

मत्पश्चात् किं भविष्यति

What after me.



सांप्रतं घटनामेकां त्यागस्य वर्णयाम्यहम् ।
स्मरिष्यते सदा लोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।१।।

अब मैं त्याग की एक घटना का वर्णन करता हूं । यह घटना जब तक आकाश में सूर्य और चांद हैं तब तक याद की जायेगी ।।१।।

भवन्ति जागरूका न कर्तव्यं प्रति ये नराः ।
तेषां कृतापराधेन म्रियन्ते बहवो जनाः ।।२।।

जो लोग अपने कर्तव्य के प्रति सावधान नहीं होते हैं उन के अपराध से बहुत से निरपराध लोग मारे जाते हैं ।।२।।

स्वपत्न्या वारितः सोऽपि कांटेदारो दुराग्रही ।
प्रभूतं पीतवान् मद्यं व्यसनिनां न सद्गतिः ।।३।।

अपनी भार्या के निषेध करने पर भी उस हठी कांटे वाले ने बहुत-सारी शराब पी ली। व्यसनी आदमियों की अच्छी गति नहीं होती है ।।३।।

अस्तव्यस्तपदाभ्यां स चचाल स्टेशनं प्रति ।
नासीत्संतुलनं तस्य मनसो निजहस्तयोः ।।४।।

वह लड़खड़ाते पैरों से स्टेशन की ओर चल पड़ा। उसके मन का सन्तुलन उसके हाथों में नहीं था ।।४।।

पश्यन्ती पृष्ठतः पत्नी मनस्येवमतर्कयत् ।
निश्चितं घटना काचिद् भवित्राद्य न संशयः ।।५।।

पीछे से देख रही पत्नी मन में सोच रही थी कि आज अवश्य ही कोई घटना घटित होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।।५।।

वशे भवति भार्याणां पतीनां न प्रबोधनम् ।
प्रार्थनाया ऋते तासां पार्श्वे किंचिन्न दृश्यते ।।६।।

पतियों को समझाना स्त्रियों के वश की बात नहीं होती है। भला प्रार्थना करने के अतिरिक्त उनके पास होता भी क्या है ? ।।६।।

वारयितुं बलात्काचिद् भर्तारं स्वं समीहते ।
कुकर्मणस्तदा नारी भर्त्सनाभागिनी भवेत् ॥७॥

जब कोई नारी बलपूर्वक अपने पति को बुरे काम से हटाना चाहती है तो उसकी भर्त्सना की जाती है॥७॥

भर्त्सना केवलं नास्ति ताडनापि प्रदीयते ।
अतश्चित्तं निजं नारी प्रबोध्यैवावतिष्ठते ॥८॥

केवल भर्त्सना ही नहीं की जाती अपितु ताडना भी की जाती है । इसलिए नारी अपने मन को समझा कर ही बैठी रहती है ॥८॥

आगत्य दाक्षिणस्याश्च दिशस्तत्रावतिष्ठत ।
स्टेशने बाष्पयानं तदैक्सप्रैसं यदुच्यते ॥९॥

वहां स्टेशन पर दक्षिण दिशा से आकर ऐक्सप्रैस गाड़ी ठहरी हुई थी ॥९॥

विरामश्चार्धहोराया आसीत्तत्र सुनिश्चितः ।
वरुणस्तत्र पानीयमाददाति स्म सर्वदा ॥१०॥

उस गाड़ी का वहां आधे घण्टे का पड़ाव निश्चित था । वरुण (इंजन का नाम) वहां सदा ही पानी लेता था ॥१०॥

यात्रिणः सकलास्तास्मिन् गंतव्यलग्नमानसाः ।
अभवन् व्यापृताः सर्वे जलपानादिकर्मणि ॥११॥

उस गाड़ी के सभी यात्रियों का ध्यान अपने-अपने गंतव्य स्थान में लगा हुआ था। उस समय वे जलपान आदि कर रहे थे ॥११॥

प्रफुल्लवदना बाला अदृश्यन्त मनोहराः ।
महिलाः पुरुषाश्चापि दृष्टाः प्रसन्नमानसाः ॥१२॥

बालाओं के मुख पर मुस्कराहट थी, वे बड़ी सुन्दर दिखाई देती थीं। पुरुष और स्त्रियां सब प्रसन्न थे ॥१२॥

क्रीणन्त्यः खाद्यवस्तूनि गवाक्षनिःसृताननाः ।
ललना भूषयामासुः प्लेटफार्मं भया स्वया ॥१३॥

झरोखे से निकले हुए मुखड़े वाली, खाने-पीने की वस्तुओं को खरीदती हुई स्त्रियां अपनी कान्ति से प्लेटफार्म को सजा रही थीं ॥१३॥

पपुः केचिज्जलं तत्र चायं चापि तथापरे ।
नारंगान् कदलीः केचिदत्यास्वादेन जग्रहुः ॥१४॥

कुछ लोगों ने जलपान किया तो कइयों ने चाय पी तथा कुछ-एक ने संगतरे और केले बड़े स्वाद से खाए ॥१४॥

केवलं तु शरीराणि बाष्पयाने च यात्रिणाम् ।
आसंस्तेषां परं प्राणा गन्तव्येषु न संशयः ॥१५॥

यात्रियों के केवल शरीर ही गाड़ी में थे, उनके प्राण तो अपने-अपने गंतव्य स्थान में थे। इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥१५॥

भार्याः काश्चिन्निजान् भर्तॄन् भर्तारोऽर्धाङ्गिनीस्तथा ।
मिलितुमुत्सुका आसन् क्षणास्तेभ्योऽयुगायत ॥१६॥

पत्नियां अपने पतियों को तथा पति अपनी पत्नियों से मिलने के लिए बहुत उत्कंठित थे। उनका एक-एक क्षण युग के बराबर बीत रहा था ॥१६॥

पंच सप्त नवोढ़ा या बाष्पयानं समाश्रिताः ।
मनसस्तु गतिस्तासां विचित्रैवावलोक्यत ॥१७॥

उस गाड़ी में जो पांच-सात नवोढाएं बैठी थीं उनके मन की गति तो बहुत ही विचित्र दिखाई देती थी ॥१७॥

तेषां कोऽपि न चाबोधदासन्ना सांप्रतं विपद् ।
विधातुः खेलितं लोके न कोऽपि ज्ञातुमर्हति ॥१८॥

उनमें से कोई भी इस बात को नहीं जानता था कि अब शीघ्र ही आपत्ति आने वाली है। संसार में विधाता के खेल को कोई भी नहीं जान सकता ॥१८॥

उत्तरस्या दिशस्तत्र वाष्पयानं द्वितीयकम् ।
आगमनाय तत्रासीद् विद्युत्संचालितं तदा ॥१९॥

वहां उत्तर दिशा से एक दूसरी गाड़ी आने वाली थी। वह बिजली से चलाई जाने वाली थी ॥१९॥

कांटेदारस्तदा मूढो मद्यविभ्रान्तमानसः ।
सिगनलमधःकृत्वा मार्गं निष्कंटकं ददौ ॥२०॥

मद्य से भ्रान्त मन वाले उस मूर्ख कांटे वाले ने सिगनल को नीचे करके (गाड़ी को) रास्ता दे दिया ॥२०॥

चालको मेघदूतस्य ददर्श पुरतो यदा ।
वाष्पयानं स्थितं तत्र हृदयं शीततां गतम् ॥२१॥

मेघदूत (इंजन) के चालक ने जब सामने गाड़ी को खड़ा हुआ देखा तो उसका हृदय ठंडा हो गया ॥२१॥

निरोद्धुं मेघदूतं स यत्नं चकार साहसी ।
परं लेभे न साफल्यं प्रतिकूलतया विधेः ॥२२॥

उस साहसी ड्राइवर ने मेघदूत को रोकने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया परन्तु भाग्य की प्रतिकूलता के कारण उसे सफलता न मिली ॥२२॥

आहतो मेघदूतेन वरुणोऽसौ यदाभवत् ।
युगान्तकारिमेघानां गर्जना सर्वतः श्रुता ॥२३॥

जब मेघदूत की वरुण के साथ टक्कर हुई तो सब ओर से प्रलयकारी बादलों की गर्जना सुनाई दी ॥२३॥

हाहाकारो महानासीदुभयोर्बाष्पयानयोः ।
क्रंदनस्य ध्वनिं श्रुत्वा हृदयं शतधाभवत् ॥२४॥

दोनों गाड़ियों में हाहाकार मच गया। रोने की चीखें सुनकर हृदय सौ-सौ टुकड़े होने लगा ॥२४॥

दुर्घटनासमाचारः प्राप्तो यदैव शास्त्रिणा ।
साधुना देशभक्तेन तदानीं रेलमंत्रिणा ॥२५॥

धगिति हृदयं जातं श्रुत्वा वार्तां दधाव सः ।
जाता दुर्घटनाऽपूर्वा यस्मिन् स्थाने भयावहा ॥२६॥

ज्यों ही इस दुर्घटना का समाचार देशभक्त, साधु स्वभाव वाले, उस समय के रेलमन्त्री श्री लाल वहादुर शास्त्री को मिला तो उनका हृदय धड़कने लगा। वे इस समाचार को सुन कर के शीघ्र ही उस स्थान को दौड़ गए जहां यह अनोखी दुर्घटना हुई थी ॥ २५ ॥ २६ ॥

मर्मस्पर्शि ततो दृष्ट्वा दृश्यं बीभत्सपूरितम् ।
भग्नमनास्तदा शास्त्री निषसाद महीतले ॥२७॥

लानि पैदा करने वाले, हृदय को छूने वाले उस दृश्य को

देखकर शास्त्री के मन को बड़ी चोट लगी, वह धरती पर बैठ गए ॥२७॥

क्षणं च चिन्तयामास चित्ते ग्लानिसमायुते ।
मम मंत्रित्वकालस्य कालोऽयं कालिमान्वितः ॥२८॥

ग्लानि से भरे हुए मन में शास्त्री जी ने सोचा कि यह घटना मेरे मन्त्रित्वकाल पर काला धब्बा है ॥२८॥

सहसा तत उत्थाय क्षतोपचारमाचरत् ।
शास्त्री चिकित्सकैः सार्धं विक्षतानां त्वरान्वितः ॥२९॥

फिर शास्त्री जी उठे और उन्होंने डाक्टरों के साथ मिलकर घायलों का उपचार किया ॥२९॥

क्षतानि स स्वहस्ताभ्यां विक्षतानामशोधयत् ।
स्पर्शेन करयोस्तस्य प्रापुस्ते शान्तिमद्भुताम् ॥३०॥

उन्होंने घायलों के घावों को अपने हाथों से साफ किया। घायलों को उनके हाथों के स्पर्श से बड़ी शान्ति मिली ॥३०॥

गतासूनेकतो दृष्ट्वा नेत्राभ्यामश्रुबिन्दवः ।
शास्त्रिणः सुस्रुवुस्तत्र द्रवति हृदयं सताम् ॥३१॥

एक ओर मरे हुए लोगों को देखकर शास्त्री जी के नेत्रों से आंसू बहने लगे। सज्जन लोगों का हृदय शीघ्र ही पिघल जाता है ॥३१॥

विक्षतमानवानां स व्यवस्थां तुष्टिकारिणीम् ।
विधाय त्वरितं दिल्लीमागतः खिन्नचेतसा ॥३२॥

फिर वे घायलों की सन्तोषजनक व्यवस्था करके खिन्न-चित्त से शीघ्र ही दिल्ली आ गये ॥३२॥

गृहमागत्य कक्षे स तस्थौ विरक्तमानसः ।
ललिता प्रार्थयामास भोजनार्थं बहादुरम् ॥३३॥

घर आकर विरक्त मन के साथ वह अपने कमरे में बैठ गए। ललिता जी ने उनसे भोजन करने के लिए प्रार्थना की ॥३३॥

ललिते मे क्षुधा नास्ति गमिष्यामि जवाहरम् ।
कार्यं महत्तरं मेऽस्ति तेन प्रधानमंत्रिणा ॥३४॥

शास्त्री जी ने ललिता से कहा कि मुझे भूख नहीं है। मैं श्री जवाहरलाल जी के पास जाऊंगा। मुझे उन प्रधानमन्त्री से आज बहुत बड़ा काम है ॥३४॥

आनय लेखनीं शीघ्रं कर्गलं चापि देहि मे ।
ललिता पालयामास तस्यादेशं मनस्विनी ॥३५॥

मेरा पैन लाओ और पैड भी लाओ। ललिता जी ने वैसे ही उनकी आज्ञा का पालन किया ॥३५॥

लिखितं कर्गले किञ्चिच्छास्त्रिणा त्वरया तदा ।
शीघ्रं जगाम कारेणावासं प्रधानमंत्रिणः ॥३६॥

शास्त्री जी ने कागज़ पर जल्दी कुछ लिखा और फिर शीघ्र ही कार के द्वारा प्रधानमन्त्री की कोठी पर चले गये ॥३६॥

श्री जवाहर उवाच

आगच्छागच्छ भोः शास्त्रिन् मानसं बहु खिद्यते ।
जाता दुर्घटना पूर्वे दिवसे या भयावहा ॥३७॥

श्री जवाहर बोले कि शास्त्री जी आइये, कल जो भयानक दुर्घटना हुई है उस से मन को बहुत खेद हो रहा है ॥३७॥

प्रयतिष्यामहे रोद्धुं दुर्घटना भयानकाः ।
प्रयोक्ष्यामो विधाः सर्वा नैत्रेमाः स्युः पुनः पुनः ॥३८॥

श्री जवाहरलाल जी बोले कि हे शास्त्रिन्! हम इन दुर्घटनाओं को रोकने का प्रयत्न करेंगे, हम सभी विधियों का प्रयोग करेंगे जिस से ये बार-बार न हों ॥३८॥

परं जगाद किञ्चिन्न शास्त्री स्वमुखतस्तदा ।
जवाहरः पुनः प्राह शास्त्रिणं तप्तचेतसम् ॥३९॥

परन्तु शास्त्री जी अपने मुख से कुछ भी नहीं बोले। तब जवाहर जी ने संतप्त हृदय वाले शास्त्री जी को फिर कहा ॥३९॥

एवं खेदस्त्वया शास्त्रिन् नाधेयो निजमानसे ।
भवामो मंत्रिणः सर्वे तुल्यमुत्तरदायिनः ॥४०॥

हे शास्त्रिन्, आप को अपने मन में इस प्रकार खेद नहीं करना चाहिये। हम सब मंत्री सब कामों के लिए बराबर ही उत्तरदायी हैं ॥४०॥

परन्तु शास्त्रिणा शीघ्रं कर्गलं स्वकराश्रितम् ।
प्रदत्तं सौम्यभावेन जवाहरस्य हस्तयोः ॥४१॥

परन्तु शास्त्री जी ने अपने हाथ में लिया हुआ वह कागज बड़ी सौम्यता के साथ श्री जवाहरलाल जी के हाथ में दे दिया ॥४१॥

निमिषमात्रमालोक्य पंक्तित्रयं जवाहरः ।
बभाषे विस्मयापन्नः शास्त्रिन् किं क्रियते त्वया ॥४२॥

श्री जवाहरलाल जी ने उन तीन पंक्तियों को पल भर के लिये देखा और फिर अचम्भे के साथ बोले कि हे शास्त्रिन्! आप यह क्या कर रहे हैं ॥४२॥

श्री जवाहर उवाच

नाहमङ्गीकरिष्यामि त्यागपत्रं कदापि ते ।
भवतामस्ति को दोषो घटना घटिता यदि ॥४३॥

श्री जवाहर जी बोले कि हे शास्त्रिन्! मैं आप के त्यागपत्र

को कभी स्वीकार नहीं करूंगा। यदि दुर्घटना हुई है तो इसमें आपका क्या दोष है ॥४३॥

परं शास्त्री महाप्राज्ञो जगाद वचनं तदा ।
सम्बन्धो बाष्पयानैर्मे रेलमंत्री भवाम्यहम् ॥४४॥

परन्तु बुद्धिमान् शास्त्री जी ने कहा कि रेलों से मेरा ही सम्बन्ध है, मैं रेलमंत्री हूं ॥४४॥

श्री शास्त्री उवाच

अवश्यं भाविनी निन्दा देशे मे यत्र तत्र च ।
न सोढुं प्रभविष्यामि जनापवादताडनाम् ॥४५॥

श्री शास्त्री बोले कि देश में जहां-तहां मेरी अवश्य ही निन्दा होगी। मैं लोकनिन्दा की ताड़ना को सहन नहीं कर सकूंगा ॥४५॥

कच्चिद्वा मम ताराया: प्रभावो नास्ति शोभनः ।
न स्यान्मम निमित्तेन यातना देशवासिनाम् ॥४६॥

हो सकता है मेरे नक्षत्र का ही कोई अच्छा प्रभाव न हो। मेरे कारण से देशवासियों को कोई संकट नहीं होना चाहिए ॥४६॥

श्री जवाहर उवाच

एतस्मिन् भवतो दोषः शास्त्रिन् किञ्चिन्न लक्ष्यते ।
व्यर्थमेव भवानेवं क्लेशयति स्वमानसम् ॥४७॥

जवाहर जी बोले कि हे शास्त्रिन्, इसमें आपका क्या दोष है ! आप व्यर्थ ही अपने आपको क्लेश पहुंचा रहे हैं ॥४७॥

आदर्शवादनिष्णातः शास्त्री प्रधानमंत्रिणम् ।
उवाच वचनं सत्यं सद्भिर् भूरिप्रशंसितम् ॥४८॥

तब आदर्शवाद में निपुण श्री शास्त्री जी ने प्रधानमंत्री को सज्जनों से बार-बार प्रशंसा किया हुआ सत्य वचन कहा ॥४८॥

श्री शास्त्री उवाच

श्रीमन्तो नाहमिच्छामि पदं च रेलमंत्रिणः ।
दुर्घटनाभिरेताभिर्भवति दुःखितं मनः ॥४९॥

शास्त्री जी श्री नेहरू जी से बोले कि मैं रेलमन्त्री के पद को नहीं चाहता हूं । इन दुर्घटनाओं से मेरा मन दुःखी हो रहा है ॥४९॥

भवतु कारणं किञ्चिद् दोषो ममैव गण्यते ।
सर्व एव विजानन्ति रेलमंत्री भवाम्यहम् ॥५०॥

कारण चाहे कुछ भी हो दोष तो मेरा ही गिना जाता है । सब लोग यह जानते हैं कि मैं रेलमन्त्री हूं ॥५०॥

जनापवादभीत्यैव रामस्तत्याज मैथिलीम् ।
वने गर्भवतीं साध्वीं निष्कलंकां तपस्विनीम् ॥५१॥

मंत्रित्वं किमहं त्यक्तुं शक्नोमि न जवाहर ।
लोकनिन्दाभयादेवं जानाति सकलं भवान् ॥५२॥

शास्त्री जी बोले कि हे जवाहर जी ! श्रीराम ने लोकनिन्दा के भय से पतिव्रता, निष्कलंक तपस्विनी गर्भवती सीता को बन में त्याग दिया था तो क्या मैं लोकनिन्दा के भय से मन्त्री के पद को नहीं छोड़ सकता ? आप सब बातों को जानते ही हैं ॥५१ ॥५२॥

मंत्रित्वं कामये नाहं सत्यं भाषे जवाहर ।
लोकसेवां करिष्यामि त्यागपत्रं गृहाण मे ॥५३॥

मैं सत्य कहता हूं कि मैं मंत्री नहीं बनना चाहता । मैं लोकसेवा करूंगा, मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लें ॥५३॥

शास्त्रिणश्चेतसो वार्तां जज्ञौ धीमान् जवाहरः ।
क्षणात्स प्रथमादेव चक्रे वार्तां तथापि सः ॥५४॥

गांभीर्यं मनसो ज्ञातुं वार्तालापं चकार सः ।
तथापि शास्त्रिणा सार्धं सुनीतिज्ञो जवाहरः ॥५५॥

नीतिज्ञ तथा बुद्धिमान् श्री जवाहर जी पहले क्षण से ही शास्त्री जी के मन की बात को जान गये थे । परन्तु फिर भी उनके मन को गहराई से देखने के लिए श्री जवाहर जी ने शास्त्री जी के साथ अपनी बातचीत को चालू रखा ॥५४ ॥५५॥

अप्राप्यमस्ति किं बुद्धेर् भुवि बुद्धिमतां सताम् ।
जानन्ति परभावाँस्ते चान्तर्यामी यथेश्वरः ॥५६॥

संसार में कोई भी बात बुद्धिमानों की बुद्धि की पहुँच से बाहर नहीं होती है। वे दूसरे के भावों को इसी प्रकार जान लेते हैं जैसे अन्तर्यामी प्रभु सब कुछ जानते हैं ॥५६॥

गते शास्त्रिणि सद्म स्वं भावमग्नो जवाहरः ।
चिन्तयामास चित्ते स्वे त्यागादर्शं तु शास्त्रिणः ॥५७॥

शास्त्री जी जब अपने घर को चले गए तो श्री जवाहर भावमग्न होकर अपने मन में शास्त्री जी के त्याग के आदर्श के बारे में सोचने लगे ॥५७॥

धन्यधन्योऽसि हे शास्त्रिन् त्यागस्ते कीर्तयिष्यते ।
भारते सर्वदा सत्यं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥५८॥

लालबहादुर, आप धन्य हैं। आपका यह त्याग, जब तक सूर्य और चांद हैं, भारत में सदा स्मरण किया जाएगा ॥५८॥

केचिद् वदन्ति मे पश्चाद् भारते किं भविष्यति ।
अल्पज्ञास्ते न जानन्ति राष्ट्रं नो रत्नपूरितम् ॥५९॥

कुछ लोग कहते हैं कि मेरे पीछे क्या होगा। वे अल्पज्ञ हैं उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि हमारा राष्ट्र अद्भुत रत्नों से भरा हुआ है ॥५९॥

केवलं पुरुषा नैव महिला अपि सक्षमाः ।
वोढुं राष्ट्रस्य भारं हि चिन्ता मां पीडयेत्कथम् ॥६०॥

इस देश के पुरुष ही नहीं अपितु स्त्रियां भी राष्ट्र का भार उठाने में समर्थ हैं, फिर मुझे चिन्ता कैसे हो सकती है ? ॥६०॥

शास्त्रिणा सदृशा यत्र त्यागिनः सन्ति भारते ।
प्रश्नो व्यर्थोऽस्ति तत्रायं 'मत्पश्चात्किं भविष्यति' ॥६१॥

जिस भारत में श्री लालबहादुर शास्त्री के समान त्यागी पुरुष बैठे हुए हैं वहां यह प्रश्न करना व्यर्थ है कि मेरे पीछे क्या होगा ॥६१॥

सत्यं स्थास्यति मत्पश्चात्पदे प्रधानमंत्रिणः ।
शास्त्री नीतिविदां श्रेष्ठो भारतस्य धुरंधरः ॥६२॥

लाल बहादुर शास्त्री नीति जानने वालों में श्रेष्ठ हैं, भारत की धुरा को धारण करने वाले हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि मेरे बाद यही प्रधानमन्त्री के पद पर बैठेंगे ॥६२॥



अथ तृतीयः सर्गः

श्वश्रूः पात्राणि मार्जति

Cynicism of a mother-in-law.



एवंविधा वधूरस्ति सुन्दरीणां शिरोमणिः ।
शरीरं विमलं तस्याः स्पर्शेन मलिनं भवेत् ॥१॥

वधू इस प्रकार की है कि मानों सुन्दरियों की शिरोमणि हो।
उसका शरीर इतना निर्मल है कि छूने से भी मैला हो जाय ॥१॥

तरुण्यः प्रातिवासस्य तस्या रूपेण मोहिताः ।
अङ्गानां कुर्वते मूल्यं यत्र तत्र च संगताः ॥२॥

पड़ोस की युवतियां उसके रूप पर इतनी मोहित हैं कि
जहाँ-तहां इकट्ठी होकर उसके अंगों का मोल डालती हैं ॥२॥

एका वदति दन्तानां मूल्यं वक्तुं न शक्यते ।
अपरा प्राह नैवालि कपोलावतिसुन्दरौ ॥३॥

एक कहती है कि इसके दांतों का मोल नहीं बताया जा सकता तो दूसरी कहती है कि नहीं सखी ! इसके कपोल बहुत सुन्दर हैं ॥३॥

तृतीया प्राह जानीथो युवां नाङ्गपरीक्षणम् ।
बिम्बफलं न शक्नोति तुलनां कर्तुमोष्ठयोः ॥४॥

तीसरी बोलती है कि तुम दोनों को अङ्गों की परीक्षा ही नहीं करनी आती । इसके होठों की तुलना बिम्बफल भी नहीं कर सकता ॥४॥

अनभिज्ञाः प्रतीयन्ते यूयं गुणनिरीक्षणे ।
सौन्दर्यं वस्तुतो नार्या नेत्रयोर्निहितं सदा ॥५॥

ज्ञायते लोचने तस्या विधात्रा निर्मिते स्वयम् ।
विस्मृत्य सकलाश्चिन्ताः संसारस्य परात्पराः ॥६॥

एक कहती है कि तुम सब को गुणों की परीक्षा करने का कुछ भी पता नहीं है । वास्तव में नारी की सुन्दरता तो उसके नेत्रों में ही होती है । ऐसा प्रतीत होता है कि विधाता ने संसार की सब चिन्ताओं को भुला कर उसके नेत्रों को स्वयं बनाया है॥ ५ ॥६॥

प्रशंसते करावेकाऽपरा तस्याः करांगुलीः ।
पादौ प्रशंसते काचित्काचित्तस्या नखांस्तथा ।।७।।

कोई उसके हाथों की प्रशंसा करती है तो कोई हाथ की अंगुलियों की । कोई पैरों की प्रशंसा करती है तो कोई नाखूनों की ।।७।।

भवत्यो नैव जानन्ति नासिका भूषणं स्त्रियाः ।
शुकस्य नासिकामस्यास्तिरस्करोति निश्चितम् ।।८।।

एक कहती है कि तुम सब कुछ भी नहीं जानती । स्त्री का भूषण तो नाक ही होती है । इसकी नाक निश्चय तोते की नाक का भी तिरस्कार करती है ।।८।।

श्वश्र्वा अग्रे परं सर्वं सौंदर्यं निष्फलं मतम् ।
सुदायेन विनाऽऽयाता वधूस्तस्यै न रोचते ।।९।।

परन्तु सास के आगे वह सारी सुन्दरता निष्फल है । दहेज के बिना आई हुई बहू उसे अच्छी नहीं लगती ।।९।।

माता पुत्रमुवाच

पुत्र प्रतारणा जाता वंचिताः स्म वयं खलु ।
अनया सह नायातं यथाचिन्तितयौतुकम् ।।१०।।

माता अपने पुत्र को कहती है कि हे पुत्र, निश्चय ही हम

तो ठगे गए हैं। जो दहेज हमने सोचा था वह इसके साथ नहीं आया ॥१०॥

केवलं सुन्दरी नासीदासीत्सा गुणिनी वधूः ।
कुटुम्बं सेवते सर्वं यथाशक्यश्च सर्वदा ॥११॥

वह वधू केवल सुन्दरी ही नहीं थी गुणवती भी थी। जहाँ तक हो सकता था वह सारे परिवार की सेवा करती थी ॥११॥

पादौ क्षालयति श्वश्रवाः श्वशुरस्य तथैव च ।
विस्तरारोहणात्पूर्वं नियमेनैव सा वधूः ॥१२॥

वह वधू रात्रि को सोने से पहले नियमपूर्वक सास और ससुर के पैरों को धोती थी ॥१२॥

यदैव श्वशुरस्तस्या धूम्रपानं चिकीर्षति ।
मार्जयित्वा प्रदत्ते सा धूमपात्रे नवं जलम् ॥१३॥

जब भी उसका ससुर हुक्का पीना चाहता तो वह हुक्के को साफ करके उसमें ताजा पानी डाल देती ॥१३॥

चिल्मं धूमलवर्णं तच्छोभते करयोस्तथा ।
हिमस्य पिंडयोर्मध्ये कृष्णपात्रं यथा स्थितम् ॥१४॥

उसके हाथों में काले रंग की चिलम इस प्रकार शोभा देती कि मानों बर्फ के दो पिंडों के बीच में कोई काला पात्र रखा हुआ हो ।।१४।।

गच्छन्ति देवरास्तस्याः पाठशालां ननान्दरः ।
पचति भोजनं तेभ्यो विलम्बं कुरुते न सा ।।१५।।

उसके देवर और ननदें स्कूल को जातीं तो वह उनको समय पर भोजन पका देती, तनिक भी देर नहीं करती ।।१५।।

तया मार्जितपात्रेषु मुखं द्रष्टुं च शक्यते ।
मार्जनीशोधितस्थाने रजोरेणुर्न लभ्यते ।।१६।।

उसके साफ किये हुए पात्रों में मुंह देखा जा सकता था। वह जिस स्थान को झाड़ू से साफ करती थी वहाँ धूली का एक कण भी नहीं मिलता था ।।१६।।

करोति विस्तराण्येषा वलिरेका न दृश्यते ।
साम्यं तस्याश्च कार्यस्य तस्याः कार्येण शक्यते ।।१७।।

वह बिस्तर इतने अच्छे ढंग से करती थी कि उसके बिछाये हुए बिछौने में एक सिलवट भी दिखाई नहीं देती थी। उसके काम की तुलना केवल उसी के काम से की जा सकती थी ।।१७।।

कार्यभारः कियानस्तु कामं तस्मिन्निकेतने ।
मस्तके वलयस्तस्या अलक्ष्यन्त कदाऽपि न ॥१८॥

चाहे उस घर में काम का कितना भी बोझ हो उसके मस्तक पर कभी त्योरियां नहीं दिखाई देती थीं ॥१८॥

लुब्धया निजया श्वश्र्वा भर्त्सितापि पुनः पुनः ।
मन्दस्मितेन गेहस्य शोभां वर्धयते सदा ॥१९॥

अपनी लोभी सास के बार-बार झिड़कने पर भी वह मुस्कराहट से सदा ही घर की शोभा को बढ़ाती रहती थी ॥१९॥

परमेते गुणाः सर्वे निष्फलाः श्वशुरालये ।
सुदायेन विनाऽऽयाता न वधूर्मानभागिनी ॥२०॥

परन्तु सुसराल में उसके ये सब गुण निष्फल थे। दहेज के बिना आई हुई वधू को मान नहीं मिलता ॥२०॥

परितुष्टः पतिस्तस्या आसीन्मानसे निजे ।
नैवास्तु यौतुकं कामं सौंदर्यं सुखदं मम ॥२१॥

उसका पति अपने मन में प्रसन्न था। वह सोचता था कि दहेज भले ही न हो इसकी सुन्दरता मेरे लिए परम सुखदायक है ॥२१॥

सयौतुकां कुरूपां चेदलप्स्ये रमणीमहम् ।
वस्तूनि मस्तके कृत्वाऽनर्तिष्यं किं गृहे गृहे ॥२२॥

दहेज के साथ यदि कोई कुरूप पत्नी मुझे मिल जाती तो क्या मैं उन वस्तुओं को सिर पर रख कर घर-घर नाच करता ? ॥२२॥

कुप्रेरणां करोति स्म परं माता यदा कदा ।
संगमो नास्ति किं लोके रूपयौतुकयोः क्वचित् ॥२३॥

परन्तु माता को जब कभी अवसर मिलता वह अपने पुत्र को कुप्रेरणा देती रहती । क्या संसार में सुन्दरता और दहेज का कहीं आपस में मेल ही नहीं है ? ॥२३॥

मातोवाच

त्वं यश्य यादवेन्द्रस्य विवाहोऽब्दे गतेऽभवत् ।
पारावारो न वस्तूनां प्राप्तानां श्वशुरालयात् ॥२४॥

माता ने कहा कि हे पुत्र ! देखो यादवेन्द्र का विवाह पिछले ही वर्ष हुआ है । उसे सुसराल से इतनी चीजें मिली हैं कि गिनती भी नहीं की जा सकती ॥२४॥

प्रदत्तं स्कूटरं तस्मै विद्युतो व्यजनं तथा ।
गृहस्य सर्ववस्तूनि दत्तानि विविधानि च ॥२५॥
मुद्राः पंच सहस्रं च प्रदत्ता 'नकदं' तथा ।
तेन व्यापार आरब्धो लाभस्तस्माद्दिने दिने ॥२६॥

उसको दहेज में स्कूटर, बिजली का पंखा तथा अन्य भी

घर के उपयोग में आने वाली कई प्रकार की वस्तुएं मिली हैं। इसके अतिरिक्त उसे पांच हज़ार रुपया नक़द भी मिला है। उससे उसने व्यापार आरम्भ किया है और उसे दिन प्रतिदिन लाभ ही लाभ हो रहा है ।। २५ ।।२६।।

वधूरपि च नैतस्याः सौंदर्येऽल्पतरा मता ।
नाहं भवामि संतुष्टा खिन्नं मे वर्तते मनः ।।२७।।

वधू भी इससे कोई कम सुन्दर नहीं है। हे पुत्र ! मैं इस तुम्हारे विवाह से प्रसन्न नहीं हूं, मेरा मन बहुत खिन्न है ।।२७।।

ज्येष्ठो भवासि मे पुत्रश् 'चावो' मम न पूरितः ।
सम्बन्धिभिर्न दत्तं मे 'सूटं' यत्समयोचितम् ।।२८।।

तुम मेरे बड़े पुत्र हो, मेरा चाव पूरा नहीं हुआ। संबन्धियों ने मुझे समय के अनुकूल एक सूट तक भी नहीं दिया ।।२८।।

पुत्रो दृढमनास्तस्या यद्यपि सोऽभवद् युवा ।
आरभन्त समाहर्तुं मातुर्वचांसि मानसम् ।।२९।।

यद्यपि उसका वह युवा पुत्र पक्के मन वाला था तो भी माता के वचनों का धीरे-धीरे उस पर प्रभाव होने लग पड़ा ।।२९।।

आकृष्टिर्न यथापूर्वं भार्यायां तस्य लक्ष्यते ।
उदासीना वधूरासीद् वत्सो यथा मृतप्रसूः ।।३०।।

अब स्त्री में उसका पहले की तरह आकर्षण न था। वह वधू इस प्रकार उदास रहती थी जैसे मरी हुई माता वाला बछड़ा होता है ॥३०॥

पानीयं पातुमिच्छुः स आददाति स्वयं जलम् ।
पंचवारं तया पृष्ट एकवारं च भाषते ॥३१॥

अब जब उसकी पानी पीने की इच्छा होती है तो वह अपने-आप ही पानी ले लेता है। वह कोई बात यदि पाँच बार पूछती है तो कहीं एक बार उत्तर देता है ॥३१॥

नैवानयति ताम्बूलं यथा पूर्वं समानयत् ।
याचितं च तया वस्तु चिरं कृत्वा ददाति सः ॥३२॥

अब वह पहले की तरह उसके लिए पान नहीं लाता है। यदि वह और भी कोई वस्तु माँगती तो देर करके देता है ॥३२॥

एकवारं यदा मासे भवति सा रजस्वला ।
लभतेऽवसरं श्वश्रूर्वचोबाणैः प्रपीडितुम् ॥३३॥

महीने में एक बार जब वह ऋतुधर्म में आती है तो सास को उसे व्यंग्यों से पीड़ित करने का अवसर मिल जाता है ॥३३॥

मलिनेष्वेव पात्रेषु तस्यै ददाति भोजनम् ।
नाहं भवामि दासी ते गच्छ त्वं पितुरालयम् ।।३४।।

वह गन्दे पात्रों में ही उसे भोजन दे देती है और कहती है कि मैं तेरी दासी नहीं हूं, तू अपने मायके चली जा ।।३४।।

तस्या उच्छिष्टपात्रं सा स्प्रष्टुं हस्तेन नेहते ।
मस्तके त्रिवलीः कृत्वा पादेन कुरुते परम् ।।३५।।

उसके जूठे बर्तन को वह हाथ से नहीं छूना चाहती। माथे में त्योरियाँ चढ़ा कर पैर से ही परे कर देती है ।।३५।।

व्यञ्जनं पुटके कृत्वा पत्रेषु करपाटिकाः ।
धारयति पुरस्तस्या अर्धं भूमौ च गच्छति ।।३६।।

कभी-कभी तो वह पत्तों पर रोटियां और दोने में सब्ज़ी डाल कर उसे दे देती तो आधी सब्ज़ी धरती पर ही चली जाती ।।३६।।

ईदृश्यसि धनाढ्या त्वं भोक्तुं पात्राणि नानयः ।
आक्षिपति सदा व्यंग्यं वध्वां तस्यां पदे पदे ।।३७।।

सास पग-पग पर कटाक्ष करती है कि तू इतनी धनाढ्य है कि भोजन खाने के लिए अपने साथ पात्र भी नहीं लाई ।।३७।।

श्वशुरः सज्जनः किञ्चिन्मितभाषी तथाऽभवत् ।
परितुष्टः परं सोऽपि वध्वां तस्यां न लक्ष्यते ॥३८॥

ससुर का स्वभाव कुछ अच्छा है, वह कम बोलता है। परन्तु उस वधू पर वह भी प्रसन्न नहीं है ॥३८॥

भ्राता वध्वाः समायातो नेतुं तां सदनं निजम् ।
अपरेऽह्नि द्वितीयासीद् भ्रातुस्तिलकदायिनी ॥३९॥

एक दिन वधू का भाई उसे अपने घर ले जाने के लिए आया क्योंकि दूसरे दिन भाईदूज (टिक्का) थी ॥३९॥

श्वश्रूः क्रूरस्वभावाऽऽसीद् यद्यपि सा पदे पदे ।
परमेको गुणस्तस्याम् न रुन्धे गमनाद् वधूम् ॥४०॥

यद्यपि वह सास पग-पग पर क्रूरता दिखाती थी परन्तु उस में एक गुण था कि वह वधू को मायके जाने से नहीं रोकती थी ॥४०॥

भगिनीभ्रातरौ सायं ग्राममवाप्नुतां निजम् ।
जननी तनयां दृष्ट्वा हर्षेण पूरिताऽभवत् ॥४१॥

भाई-बहन दोनों सायंकाल अपने ग्राम में पहुंच गये। माता पुत्री को देखकर बहुत प्रसन्न हुई ॥४१॥

दीपावल्याश्च मिष्टान्नमग्रे पुत्र्या अधारयत् ।
हस्तं शिरसि कृत्वा च स्नेहं व्यज्ञापयन्निजम् ॥४२॥

माता ने पुत्री को दीपमाला की रखी हुई मिठाई खाने के लिए दी तथा उसके सिर पर हाथ फेर कर अपना प्यार जतलाया ॥४२॥

मातोवाच

माता पृच्छति भोः पुत्रि मुखं ते परिशुष्यति ।
ब्रूहि मे कारणं स्पष्टं किमस्ति श्वशुरालये ॥४३॥

माता पूछती है कि हे पुत्री ! तुम्हारा मुखड़ा दिन-प्रतिदिन सूखता ही चला जा रहा है, इसका क्या कारण है ? तुम्हारे सुसराल में क्या-कुछ बन रहा है ॥४३॥

कपोलौ रक्तवर्णौ ते जातौ श्वेतौ हिमं यथा ।
अन्तरं गच्छतो नेत्रे गवाक्षौ वेश्मनो यथा ॥४४॥

तुम्हारे लाल रंग के कपोल बर्फ के समान सफेद हो गये हैं। नेत्र इस प्रकार अन्दर को धंस गये हैं मानो किसी घर के झरोखे हों ॥४४॥

सौवर्णी देहयष्टिस्ते क्षीणक्षीणा च जायते ।
संकोचं त्वं परित्यज्य ब्रूहि दुःखस्य कारणम् ॥४५॥

तुम्हारा यह सोने के समान चमकीला शरीर दिन प्रति दिन क्षीण होता जा रहा है। हे पुत्री! तुम संकोच को छोड़ कर अपने दुःख का कारण बताओ ॥४५॥

जननि नाऽस्ति दुःखं मे सुखिन्येव भवाम्यहम् ।
कन्यानामभिशापोऽस्ति पित्रोर्निर्धनता भुवि ॥४६॥

हे माता! मुझे कुछ भी दुःख नहीं है, मैं बहुत सुखी हूं। संसार में कन्याओं के माता-पिता का निर्धन होना उनके लिए अभिशाप होता है ॥४६॥

पप्रच्छ नाग्रतो माता पुत्रीं किञ्चिदपि स्वयम् ।
बुबुधे सकलं भावं तनयामानसे स्थितम् ॥४७॥

माता ने पुत्री से आगे कुछ भी नहीं पूछा। वह पुत्री के मन के भाव को अपने-आप ही समझ गई ॥४७॥

पुत्री पुनरुवाच

श्वशुरौ मे न संतुष्टौ प्रदत्ताऽहं धनं विना ।
क्षिपति व्यंग्यबाणान्मे श्वश्रूर्मातः पदे पदे ॥४८॥

पुत्री ने फिर कहा कि हे माता! आप ने दहेज में मेरे साथ बहुत सारा धन नहीं दिया इसलिए मेरी सास और ससुर मुझ पर प्रसन्न नहीं हैं और सास मुझे पग-पग पर ताने देती रहती है ॥४८॥

जामाता भवतां मातर् भवति बधिरो यथा ।
नीतिं तस्य न जानामि मुखात् किञ्चिन्न भाषते ॥४९॥

हे माता ! आपका दामाद तो जैसे बहरा ही हो गया है। उसकी नीति को मैं नहीं समझती, वह तो मुंह से कुछ बोलता ही नहीं ॥४९॥

मातर्मम विवाहस्य शतं मुद्राः सुरक्षिताः ।
ताभिर्वस्त्राणि कार्याणि श्वश्र्वै मनोहराणि मे ॥५०॥

हे माता ! मैंने अपने विवाह के सौ रुपये बचा कर रखे हैं उनसे मेरी सास के लिए सुन्दर वस्त्र बनवा दीजिए ॥५०॥

बालपाश्या मदीयास्ति कर्तव्यं खंडनं द्रुतम् ।
श्वश्र्वै मे कुंडले कार्ये श्वशुरायांगुलीयकम् ॥५१॥

मेरी सिंगारपट्टी को तुड़वा दीजिए। उसके सोने से मेरी सास के लिए कानों की बालियां तथा ससुर के लिए अंगूठी तैयार करवा दें ॥५१॥

द्वाभ्यामेव प्रदास्यामि मिषेण केनचिच्छृणु ।
संतोषेण तयोरेवं संतुष्टिर्मे भविष्यति ॥५२॥

मैं कोई बहाना बना कर उन दोनों को ये भूषण दे दूंगी। इस प्रकार उनके सन्तोष से मेरी संतुष्टि हो जायेगी ॥५२॥

मातोवाच

पुत्रि ब्रूषे किमेवं त्वं शकुनकृतभूषणम् ।
तोडयिष्याम्यहं कच्चिद् वक्तव्यं न त्वया पुनः ॥५३॥

माता बोली कि हे पुत्री ! तू ऐसा क्यों कहती है ? भला मैं सगुन के साथ बनवाये हुए तुम्हारे भूषणों को कभी तुड़वा सकती हूं ! तुम फिर ऐसा कभी मत कहना ॥५३॥

ग्रैवेयकं ममेदं यत्कार्यमेतेन संत्स्यति ।
चिन्तां मा कुरु पुत्रि त्वं प्रच्छामः पश्यतोहरम् ॥५४॥

हे पुत्री ! यह जो मेरी कंठी है इससे काम सिद्ध हो जायेगा, तुम चिन्ता मत करो, हम सुनार से पूछते हैं ॥५४॥

वाटपूजामिषं कृत्वा दास्यामस्तनये शृणु ।
श्वश्र्वे वस्त्राणि दीयन्ते भूषणानि तथैव च ॥५५॥

हे पुत्री ! रास्ते की पूजा का बहाना बना कर दे देंगे। इस प्रथा में सास को वस्त्र तथा भूषण दिये जाते हैं ॥५५॥

टिप्पणी—लड़कियाँ विवाह के बाद एक वर्ष तक रास्ते की पूजा करती हैं और अन्त में लड़की के मायके की ओर से सास के लिए वस्त्र-भूषण आदि भेजे जाते हैं। यह प्रथा भारत के पर्वतीय प्रान्तों में विशेष कर प्रचलित है।

संप्ताहानन्तरं सुभ्रूरायाता श्वशुरालयम् ।
आशया परया युक्ता श्वशुरालयतुष्टये ।।५६।।

एक सप्ताह के बाद वह युवती सुसराल आ गई। इस बार उसको बड़ी आशा थी कि मेरे ससुरगृह के सब लोग प्रसन्न हो जाएंगे ।।५६।।

वधूरुवाच

समाप्ता वाटपूजा मे वर्षाय धारिता मया ।
प्रदत्तानि भवत्यै मे मात्रा वस्तूनि सादरम् ।।५७।।

वधू सास को बोली कि मैंने एक वर्ष के लिए जो मार्गपूजन का व्रत लिया था वह समाप्त हो गया। उसके उपलक्ष में मेरी माता ने आपको ये वस्तुएं भेजी हैं ।।५७।।

मंजूषां पुरतः कृत्वा श्वश्रूं प्रोवाच सा वधूः ।
भवत्यै कुंडले मातः पित्रे तथांगुलीयकम् ।।५८।।

डिबिया को आगे करती हुई वधू सास को बोली कि माता जी, आपके लिए ये बालियां हैं और पिता जी के लिए यह अंगूठी है ।।५८।।

सुगूढमवलोक्याऽह श्वश्रूरादाय हस्तयोः ।
वंचितुमीहसे त्वं मामेवं कृत्रिमभूषणैः ।।५९।।

सास ने भूषणों को हाथ में लेकर गहराई से देखा और कहा। अरी, क्या मुझे बनावटी भूषणों से ठगना चाहती है ?

प्रसिद्धं कांचनं लोके यच्चतुर्दशकैरटम् ।
एतानि हि प्रतीयन्ते तेनैव निर्मितानि च ॥६०॥

संसार में चौदह कैरट का सोना प्रसिद्ध है, ये भूषण उसी से बने हुए मालूम होते हैं ॥६०॥

आरकूटस्य वैतानि भासन्ते निर्मितानि मे ।
अस्माकं पुरतो जाता त्वमस्मानेव वंचासि ॥६१॥

अथवा मुझे ऐसा मालूम होता है कि ये पीतल के बने हुए हैं। तू हमारे आगे जन्म लेकर हमको ही ठगना चाहती है ॥६१॥

आगताऽसि किमर्थं त्वं परिणेष्यामि मे सुतम् ।
त्वरितं पुनरेवाहं गच्छ त्वं पितुरालयम् ॥६२॥

तू चली क्यों आई ? मैं तो अपने पुत्र का शीघ्र ही दूसरा विवाह कर लूंगी। तू अपने बाप के घर ही चली जा ॥६२॥

तस्माद्दिनात्समारभ्य यातना दातुमुद्यता ।
श्वश्रूर्न केवलं तस्या अपरेऽपि कुटुंबिनः ॥६३॥

उस दिन से लेकर केवल सास ही नहीं अपितु परिवार के दूसरे सदस्य भी उसे पीड़ाएं देने लगे ॥६३॥

तर्जयति ननान्दा तां भर्त्सयति च देवरः ।
कटाक्षान्कुरुते श्वश्रूर्वधूमेतामहर्निशम् ॥६४॥

ननद उसे डराती है, देवर उसे झिड़कता है और सास दिन-रात कटाक्ष करती है ॥६४॥

श्वश्रूरुवाच

अप्राज्ञौ पितरौ ते स्तो जानीतो मिलितुं न च ।
संबंधिनस्तथा दृष्टौ कृपणौ तौ पदे पदे ॥६५॥

सास ने कहा कि तेरे माता-पिता मूर्ख हैं, वे सम्बंधियों को मिलना भी नहीं जानते, वे पग-पग पर कृपणता दिखाते हैं ॥६५॥

श्वशुरो गतमासे ते तत्र जगाम योगतः ।
उपायनं विनाऽऽयातो लज्जा ताभ्यां न दर्शिता ॥६६॥

तेरे ससुर पिछले महीने संयोगवश वहां गये तो वे बिना भेंट के ही लौट आए। तेरे माता-पिता को शर्म नहीं आई ॥६६॥

वधूप्राप्त्या च लोकानां गृहाणि यान्ति पूर्णताम् ।
त्वं नो वेश्म समायाता भवसीव दिगम्बरा ॥६७॥

लोगों के घर में वधुएं आती हैं तो उनके घर भर जाते हैं। तूं तो हमारे घर में ऐसी आई कि मानो तुम नंगी हो ॥६७॥

पृच्छन्ति बहवो लोकाः कौबेरधनधारिणः ।
कारमपि प्रदास्यन्ति कन्यया सह निश्चितम् ॥६८॥

कुबेर के समान धनाढ्य लोग हमें पूछ रहे हैं; वे लड़की के साथ मोटरकार देने को भी तैयार हैं ॥६८॥

एवंविधानुपालंभान् ददाति सा पुनः पुनः ।
भिया रोदिति निःश्वस्य कक्षकोणे स्थिता वधूः ॥६९॥

वह बार-बार इसी प्रकार के ताने वधू को देती है। वह बेचारी डर की मारी कमरे के कोनों में छिप कर सिसकियां भरती हुई रोती है ॥६९॥

नीशार एकदा वध्वा शय्यायां स्थापितोऽभवत् ।
उत्थापितवती श्वश्रूर्न दत्तस्तव बान्धवैः ॥७०॥

एक बार वधू ने अपने बिछौने पर रजाई रखी हुई थी, सास ने उसे यह कहते हुए उठा ली कि इसे तेरे बाप-दादा ने नहीं दिया है ॥७०॥

एवंविधानि कष्टानि भुंजाना सा वधूः सती ।
निजभविष्यसंबन्धे चिन्ताग्रस्ता ततोऽभवत् ॥७१॥

वह वधू इस प्रकार के कष्टों को झेलती हुई अपने भविष्य के बारे में चिन्ता करने लगी ॥७१॥

मम नास्त्यत्र निर्वाहो मारयिष्यन्ति मामिमे ।
भवन्ति सकला एते गृध्रा हि यौतुकार्थिनः ॥७२॥

मेरा यहां निर्वाह नहीं होगा, ये मुझे मार देंगे । ये सब दहेज की चाहना वाले गीध हैं ॥७२॥

कन्या भारतवर्षस्य क्लिश्यन्ति प्रथयैतया ।
बह्व्यो विससृजुः प्राणान् धिगेनां यौतुकप्रथाम् ॥७३॥

भारतवर्ष की कन्याएं इस प्रथा से क्लेश भोग रही हैं । कइयों ने इस क्लेश के कारण अपने प्राण त्याग दिये । इस दहेज की प्रथा को धिक्कार है ॥७३॥

गतदिने मयाऽधीतं पत्रे च दैनिके त्विदम् ।
स्वभार्या जीविता दग्धा कान्तेन यौतुकार्थिना ॥७४॥

कल ही मैंने एक दैनिक समाचारपत्र में पढ़ा था कि दहेज चाहने वाले एक पति ने अपनी पत्नी को जीवित ही जला दिया ॥७४॥

एते मामपि धक्ष्यन्ति लब्ध्वा कालानुकूलताम् ।
येन केन प्रकारेण यास्यामि पितुरालयम् ॥७५॥

ये लोग अवसर हाथ आने पर मुझे भी जला देंगे । मैं जिस-किसी प्रकार अपने मायके चली जाऊंगी ॥७५॥

महत्येव प्रभोरेषाऽनुकंपा मयि वर्तते ।
दत्तं न बंधनं मह्यमन्यथा संकटो भवेत् ॥७६॥

भगवान् की मुझ पर यह बहुत बड़ी दया है कि अभी मुझे कोई बन्धन नहीं डाला है नहीं तो मेरे लिए बड़ा संकट होता ॥७६॥

कार्यं किंचित्करिष्यामि कर्तुमुदरपालनाम् ।
सूचीकर्मणि दक्षाऽहं निर्वाहस्तेन सेत्स्यति ॥७७॥

मैं अपना पेट पालने के लिए कोई काम कर लूंगी । मुझे सिलाई का काम अच्छा आता है, उससे मेरा निर्वाह हो जाएगा ॥७७॥

कुप्रथा यौतुकस्येयं मानवभाललाञ्छनम् ।
क्रान्तिमहं करिस्यामि समाजं परिवर्तितुम् ॥७८॥

यह दहेज की प्रथा मानव के मस्तक पर कलंक का टीका है, मैं समाज को बदलने के लिए क्रान्ति लाऊंगी ॥७८॥

जन्मादिनस्य मे भ्रातुरुत्सवः श्वो हि वर्तते ।
मिषेण तेन यास्यामि त्वरितं पितुरालयम् ॥७९॥

कल मेरे भाई के जन्मदिन का उत्सव है। मैं उस बहाने से शीघ्र ही मायके चली जाऊंगी ॥७९॥

वधूरुवाच तां श्वश्रूं जिगमिषाम्यहस्त्रयम् ।
शीघ्रं प्रत्यागमिष्यामि जाते जन्मदिनोत्सवे ॥८०॥

वधू ने सास को कहा कि माता जी, मैं तीन दिन के लिए मायके जाना चाहती हूं। जन्म-दिवस का उत्सव होने के बाद मैं लौट आऊंगी ॥८०॥

श्वश्रूरुवाच

निर्गच्छत्यपराह्णे यन्मोटरं पंचवादने ।
त्वया तेनैव गन्तव्यं मदनो न गमिष्यति ॥८१॥

सास ने कहा कि दोपहर के बाद पांच बजे जो मोटर जाती है तुम उससे चली जाना। परन्तु मदन तुम्हारे साथ नहीं जा सकेगा ॥८१॥

प्रयाणसमये तस्यास्तत्र केनापि छिक्कितम् ।
परं नोपेक्षितायाश्च चिन्ताऽबाधत वेश्मनि ॥८२॥

जब वह चलने लगी तो वहां किसी ने छींक मारी परन्तु, क्योंकि वह उस घर में उपेक्षिता थी इसलिए किसी को भी इस बात की चिन्ता नहीं हुई ॥८२॥

पुरतः काष्ठविक्रेता वहन् भारं च मूर्धनि ।
दात्रहस्तः समागच्छन्नपृच्छत्कुत्र गम्यते ॥८३॥

आगे से एक लकड़ियां बेचने वाला, भार को सिर पर

उठाए हुए और दरांती हाथ में लिए हुए आता हुआ पूछने लगा "आप कहाँ जा रही हैं" ॥८३॥

एकश्च पुरतः व्यालः सहसा दृष्टिमागतः ।
मार्गं तस्याः स निष्कृत्य जगाम यत्र कुत्रचित् ॥८४॥

सामने से एक साँप दिखाई दिया, वह शीघ्र ही उसके रास्ते को काट कर जहां-कहीं चला गया ॥८४॥

श्वश्रूवाश्चित्ते स्थितो भूतो दृष्ट्वाऽपशकुनानि च ।
विश्वासमकरोदेवं नैषा प्रत्यागमिष्यति ॥८५॥

सास के चित्त में जो भूत बसा हुआ था उसने इन अपशकुनों को देखकर विश्वास कर लिया कि अब यह नहीं लौटेगी ॥८५॥

मद्यं संवाहकः पीत्वा चालयामास मोटरम् ।
लोका अन्वभवन् सर्वे "उत्पतामोऽम्बरे वयम्" ॥८६॥

ड्राइवर ने मद्यपान करके मोटर को इतनी तीव्र गति से चलाया कि लोग अनुभव करने लगे कि हम आकाश में उड़ रहे हैं ॥८६॥

वृक्षस्य संहतिं प्राप्य गंत्री सोर्ध्वाधरं गता ।
चीत्कारेण च हा हेति गगनं पूरितं द्रुतम् ॥८७॥

पेड़ की टक्कर लगने से मोटर उलट गई । 'हाय हाय' की चीखों से आकाश भर गया ॥८७॥

यात्रिणो ये मृतास्तत्र चंपाऽगण्यत तेषु च ।
मार्गे विसर्जिताः प्राणा न प्राप्ता पितुरालयम् ।।८८।।

वहां जो यात्री मरे उनमें चंपा भी गिनी गई । बेचारी ने रास्ते में ही प्राण त्याग दिये, पिता के घर तक भी न पहुंची ।।८८।।

मासस्यानन्तरं तत्र चंपायाः श्वशुरालये ।
पुनर्वाद्यान्यवाद्यन्त समानेतुं वधूं नवाम् ।।८९।।

एक महीने के बाद चंपा के सुसराल में नई वधू लाने के लिए फिर बाजे बजने लगे ।।८९।।

स्थानपूर्तिश्च चंपाया नवोढया तया कृता ।
आसीन्न मदनस्तुष्टो व्यजानात्कारणं स्वयम् ।।९०।।

उस नई दुल्हन ने चंपा का स्थान पूरा कर दिया परन्तु मदन प्रसन्न नहीं था, इसका कारण उसे ही ज्ञात था ।।९०।।

पारावारो न यस्यास्ति तादृशं यौतुकं तया ।
आनीतं पूरितुं वेश्म परं चंपागुणाः कुतः ।।९१।।

वह सुसराल का घर भरने के लिए इतना दहेज साथ लाई कि जिसका कोई अन्त ही नहीं था परन्तु चंपा के गुणों को कहां से लाती ।।९१।।

वधूः पठति पत्राणि श्वश्रूः पात्राणि मार्जति ।
आज्ञां करोति कार्याय भवति स्वामिनी यथा ।।९२।।

वधू तो समाचारपत्र पढ़ती है और सास बर्तन साफ करती है। वह सास को काम करने के लिए इस प्रकार आदेश देती है मानों वह स्वयं ही घर की स्वामिनी हो ।।९२।।

पचति भोजनं श्वश्रूः परिवेष्टि वधूः स्वयम् ।
वेत्रासनं समानेतुमादिशति तथैव च ।।९३।।

सास भोजन पकाती तो वधू स्वयं परोसती है। सास को कुर्सी लाने के लिए भी आज्ञा करती ।।९३।।

गुणान् संस्मृत्य चंपायाः श्वश्रूः कोणे च रोदिति ।
यस्मिन्नेव स्थिता चंपा रोदिति स्म सगद्गदम् ।।९४।।

सास चंपा के गुणों को याद करके कमरे के उसी कोने में खड़ी होकर रोती है जहां चंपा रुके हुए गले के साथ रोया करती थी ।।९४।।

पर्यङ्क एकदा सुप्ता श्वश्रूः सा यौतुकागते ।
वधूस्तां भर्त्सयामास "मलिनं कुरुषे कथम्" ।।९५।।

एक दिन सास दहेज आए हुए पलंग पर सो गई तो वधू ने उसे झिड़क दिया कि तुम इसे मैला क्यों करती हो ? ।।९५।।

प्रदत्तमेतदावाभ्यां तुभ्यं नैतत्समर्पितम् ।
नैव स्पर्शस्त्वया कार्यो जानीहि त्वं पुनः पुनः ॥९६॥

मेरे माता-पिता ने यह हम दोनों के लिए दिया है, तुम्हारे लिए नहीं दिया है। तुम इस बात को बार-बार समझ लो कि तुम्हें इसका स्पर्श नहीं करना है ॥९६॥

श्वश्रूरचिन्तयच्चित्ते मनसि धारितं मया ।
अहं वस्तूनि दास्यामि शैलायाः पाणिपीडने ॥९७॥

आदाय यौतुकादस्या लघुर्भारो भविष्यति ।
कर्कशा मां परन्त्वेषा जीवितां भक्षयिष्यति ॥९८॥

सास सोचने लगी कि मैंने तो अपने मन में सोचा था कि इसके दहेज की कुछ वस्तुएं शैला के विवाह में दे दूंगी, हमारा भार हल्का हो जाएगा। परन्तु यह तो बड़ी कर्कशा है। यदि मैं ऐसा करूं तो यह मुझे जीवित ही खा जाएगी ॥ ९७-९८ ॥

यौतुकस्य मया लोभे वधूश्चंपा विनाशिता ।
धिगस्तु केवलं मां न धिगेनां यौतुकप्रथाम् ॥९९॥

मैंने दहेज के लोभ में चंपा को नष्ट कर दिया। केवल मुझे धिक्कार नहीं, इस दहेज की प्रथा को ही धिक्कार है ॥९९॥

हुक्कां प्रतीक्षते 'लाला' मार्जित्वाऽऽनेष्यते वधूः ।
नेहते स्म परं कृष्णा कर्तुं कृष्णतरौ करौ ॥१००॥

लाला जी प्रतीक्षा करते हैं कि वधू हुक्का साफ करके लायेगी। परन्तु कृष्णा अपने हाथों को अधिक काला नहीं करना चाहती थी ॥१००॥

प्रविष्टा सांप्रतं शैला हायने विंशतौ शुभे ।
चिन्ता तस्या विवाहस्य पितरौ पर्यपीडयत् ॥१०१॥

अब शैला ने भी बीसवें वर्ष में प्रवेश कर दिया। उसके विवाह की चिन्ता माता-पिता को पीड़ित करने लगी ॥१०१॥

स्थानेषु त्रिषु शैलायास्ताभ्यां सत्यापनं कृतम् ।
क्रमशः क्रमशः काले नेति नेति त्रिभिः कृतम् ॥१०२॥

उन्होंने शैला की तीन स्थान पर सगाई की परन्तु बारी-बारी से तीनों ने इन्कार कर दिया ॥१०२॥

मोटरं याचते कश्चित्कश्चित्तु स्कूटरं तथा ।
मुद्रा दशसहस्रं च 'नकदं' याचतेऽपरः ॥१०३॥

कोई दहेज में मोटर मांगता है तो कोई स्कूटर। कोई तीसरा दस हजार रुपया नकद माँगता है ॥१०३॥

पंचवर्षाणि यावत्तु प्रयत्नं चक्रतुर्भृशम् ।
भाग्यं परन्तु शैलाया विवृतं कुत्रचिन्नहि ॥१०४॥

शैला के माता-पिता ने पांच वर्ष तक लगातार प्रयत्न किया परन्तु शैला के भाग्य कहीं भी नहीं खुले ॥१०४॥

प्रतीयते न शैलाया विवाहो हि भविष्यति ।
अनूढैव च मे पुत्री जीवनं यापयिष्यति ॥१०५॥

ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी शैला का विवाह होगा ही नहीं। मेरी पुत्री अविवाहित ही अपना जीवन बितायेगी ॥१०५॥

कृतिर्यौतुकशब्दस्य व्यर्थं च शास्त्रिभिः कृता ।
शब्दो द्रागेव निष्कास्यः कोशादयं मनीषिभिः ॥१०६॥

शैला की माता सोचती है कि शास्त्री लोगों ने यौतुक शब्द की रचना ही क्यों की । पंडित लोगों को चाहिए कि वह इस शब्द को शीघ्र ही कोष से निकाल दें ॥१०६॥

तस्मिन्नेव दिने सायं संलग्ना स्टोवदीपने ।
दह्यमानाग्निकीलासु लोकैः शैलाऽवलोकिता ॥१०७॥

उसी दिन सायंकाल को शैला स्टोब जलाने लगी । पल भर में लोगों ने उसे आग की लपटों में जलता हुआ देखा ॥१०७।

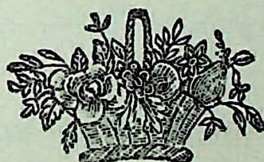
शैलायाः सकलाः स्मृत्वा रुरुदुरालयो गुणान् ।
अयि शैले विहायास्मान् गताऽसि कुत्र हे सखि ॥१०८॥

शैला की सब सखियाँ उसके गुणों को याद करके रोने लगीं, हे सखी शैला, तू हमें छोड़ कर कहां चली गई ! ॥१०८॥

धन्नी स्मरति चंपाया हे चंपे नय मामपि ।
यत्र वससि पुत्रि त्वं तत्र जिगमिषाम्यहम् ॥१०९॥

धनवती चंपा को याद करती हुई विलाप करने लगी कि हे चंपे ! मुझे भी ले जा । हे पुत्री ! मैं वहीं पर जाना चाहती हूं जहां तू निवास कर रही है ॥१०९॥

इति तृतीयः सर्गः समाप्तः

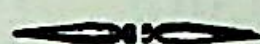




अथ चतुर्थः सर्गः

विघ्नं मा कुरु मा कुरु

O cock, don't make an impasse for me.



प्रवीणा गृहकार्येषु दक्षा कुटुम्बपालने ।
सच्चरित्रा सती नारी भर्तारमाह सादरम् ॥१॥

घर के काम में निपुण तथा परिवार के पालन में चतुर अच्छे चरित्र वाली नारी पति को आदर के साथ बोली ॥१॥

कार्यालयाद् यदा गेहं प्रत्यागच्छसि हे पते ।
सदैव कुरुषे कोपं हेतुर्भवति तत्र कः ॥२॥

हे पतिदेव ! जब आप कार्यालय से घर आते हैं तो सदा क्रोध करते हैं, इसका क्या कारण है ? ॥२॥

बालैः सह मया वापि हृष्टो भूत्वा न भाषसे ।
भयापन्ना इमे बाला नायान्ति भवदग्रतः ॥३॥

न तो आप मेरे साथ प्रसन्न होकर बोलते हैं और न ही बच्चों के साथ। डर के मारे ये बच्चे आपके सामने नहीं आते ॥३॥

यामिन्या द्वादशो होरा वर्तते समयेऽधुना ।
पते त्वं गृहमायासि विलम्बेनैव सर्वदा ॥४॥

इस समय रात के बारह बज चुके हैं। आप सदा देर करके ही घर आते हैं ॥४॥

प्रतिदिनं मया पक्वं भोजनं शीतलायते ।
भुंजसि समये नैव गृहमागत्य कान्त मे ॥५॥

हे पतिदेव ! मुझ से बनाया हुआ भोजन प्रतिदिन ठंडा हो जाता है। आप समय पर घर आकर भोजन भी नहीं करते ॥५॥

भवतां प्रापणात्पूर्वं बालाः स्वपन्ति सर्वदा ।
कियत्समयपर्यन्तं कार्यक्रमश्चलिष्यति ॥६॥

आपके घर पहुंचने से पहले ही बच्चे सो जाते हैं। यह कार्यक्रम कब तक चलता रहेगा ? ॥६॥

कालो द्वादशवर्षाणामावयोः परिणीतयोः ।
व्यतीतोऽस्ति परं भर्तर् न साधु भाषितं मम ॥७॥

हमारे विवाह को हुए बारह वर्ष बीत चुके हैं परन्तु आपने मेरे बारे में कभो अच्छा नहीं कहा ॥७॥

रहस्यं सा विलम्बस्य व्यजानाद् भामिनी चिरात् ।
नोत्सेहे भाषितुं पत्युः पुरतस्तस्य सा भिया ॥८॥

वह नारी बिलम्ब के कारण को बड़ी देर से जानती थी परन्तु भय की मारी अपने पति के सामने बोल नहीं सकती थी ॥८॥

दुश्शीलोऽसौ पतिस्तस्या अकरोच्छ्रुतमश्रुतम् ।
तवाज्ञापाशबद्धो न भवामि शृणु भामिनि ॥९॥

उस दुराचारी पति ने उसकी बात का अनसुनो कर दिया और बोला कि मैं तेरी आज्ञा में बंधा हुआ नहीं हूं ॥९॥

बहूनि सन्ति मित्राणि मिलितुं यामि तान्यहम् ।
आलिभिः सह किं त्वं न मिलितुं यासि कोपने ? ॥१०॥

हे क्रोध करने वाली नारी ! मेरे कई मित्र हैं, मैं उनसे मिलने जाता हूं । क्या तू अपनी सखियों से मिलने नहीं जाती है ? ॥१०॥

अश्रुसिक्तकपोला सा आविशद् भोजनालयम् ।
स्थालीमानीय तस्याग्रे संस्थापितवती ततः ॥११॥

नारी के कपोल आंसूओं से भीग गये, वह रसोई घर में गई और थाली लाकर उसके आगे रख दी ॥११॥

संभुज्य भोजनं भर्ता पर्यङ्कं गतवाँस्ततः ।
भार्या तेन न पृष्टासौ खादितं किं न खादितम् ॥१२॥

पति भोजन खा कर पलंग पर चला गया, उसने पत्नी को पूछा तक नहीं कि तुमने खाया है या नहीं ॥१२॥

मनसि तद्दिने तस्या व्यथा प्राणान्तकारिणी ।
उदपद्यत कान्ताया वर्णनं सुकरं न हि ॥१३॥

उस दिन उस नारी के मन में प्राणों का अन्त करने वाली ऐसी पीड़ा हुई कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥१३॥

आस्तरणेन हीनायां खट्वायां च लुलोठ सा ।
गणयितुं तदारेभे कष्टानि जीवनस्य च ॥१४॥

वह बिना बिस्तर के ही खाट पर लेट गई और फिर अपने जीवन के कष्टों को गिनने लगी ॥१४॥

नारीभिः सकला एव सह्यन्ते तीव्रवेदनाः ।
दुश्शीलता परं पत्युः सोढुं ताभिर्न पार्यते ॥१५॥

नारियां सब प्रकार की बड़ी से बड़ी पीड़ाओं को सहन कर लेती हैं परन्तु पति की आचारहीनता उनसे सहन नहीं की जा सकती ।।१५।।

दृष्टिस्तस्या गताऽकस्माद् गृहाच्छादनदारुषु ।
अपश्यल्ललना तेभ्यः पतच्चूर्णं च भूतले ।।१६।।

उसकी दृष्टि अचानक घर की छत की कड़ियों की ओर चली गई। उसने उन कड़ियों से धरती पर गिरती हुई धूल देखी ।।१६।।

खादति स्म घुणं काष्ठं चिन्ता तस्या वपुस्तथा ।
ततश्चूर्णमितोऽश्रूणि जेतुमैच्छन्परस्परम् ।।१७।।

घुन लकड़ी को खा रहा था और चिन्ता उसके शरीर को खा रही थी। उधर से धूलि गिर रही थी तो इधर से आँसू। मानों ये एक दूसरे को जीतने की इच्छा कर रहे थे ।।१७।।

घुणैः कृतानि छिद्राणि सा काष्ठेषु व्यलोकयत् ।
तुलनां चाकरोन्नारी छिद्रैः स्वान्तःस्थितैस्तदा ।।१८।।

उसने लकड़ियों में घुणों द्वारा किये हुए छेदों को देखा और फिर उनकी तुलना अपने अन्तःकरण के छेदों से करने लगी ।।१८।।

क्लिश्यन्त्यचेतना लोके केवलं न सचेतनाः ।
एषाऽपि धारणा तस्या नाकरोत्क्लेशलाघवम् ।।१९।।

जड़ पदार्थ भी संसार में दुःखी होते हैं केवल चेतन ही नहीं।

इस धारणा (विचार) से भी उसके मन का क्लेश कम न हुआ ॥१९॥

अपतन्नयने तस्याः किंचिच्चूर्णं तदोर्ध्वतः ।
वेदनां लोचने तस्या अकरोत्तत्स्वभावतः ॥२०॥

ऊपर से कुछ धूलि उसकी आंख में गिर गई। स्वभावतः ही वह उसके नेत्र में पीड़ा करने लगी ॥२०॥

कंचुकस्य च कोणेन मार्जयन्ती स्वलोचनम् ।
मनसि ललना प्राह काष्ठरेणो न पीडय ॥२१॥

स्वहृदयस्य पीडाभिः पीड्यमाना प्रतिक्षणम् ।
भवामि पूर्वमेवाहं त्वं पीडयसि मां वृथा ॥२२॥

चोली के कोने से अपने नेत्र को साफ करती हुई नारी मन में बोली कि अरी लकड़ी की धूली ! तूं मुझे पीड़ित मत कर। मैं अपने हृदय की पीड़ा से पहले ही पल-पल दुःखी हो रही हूं। तू मुझे व्यर्थ पीड़ा क्यों देती है ॥२१॥२२॥

एतेनैव च कालेन बालो रोदितुमास्थितः ।
चूचुकं पाययित्वा तं स्वापयामास भामिनी ॥२३॥

इतने में उसका छोटा बच्चा रोने लग पड़ा, उसने उसे दूध पिला कर सुला दिया ॥२३॥

बालानां बन्धनं मे नाभविष्यद्भाग्ययोगतः ।
आत्महत्यां तदा कृत्वा परलोकं गताऽभवम् ॥२४॥

वह सोचने लगी कि यदि भाग्ययोग से मुझे बच्चों का बन्धन न होता तो मैं आत्महत्या करके परलोक चली जाती ॥२४॥

जानामि नात्महत्याया विचारः कुत आगतः ।
तस्या मनसि कान्ताया यामिन्याः प्रहरेऽन्तिमे ॥२५॥

प्रतीत नहीं, रात के अन्तिम पहर में उस नारी के मन में आत्महत्या का विचार कहां से आ गया ॥२५॥

घातयेयं किमात्मानं सर्वथा पत्युपेक्षितम् ।
संघर्षमथवा कुर्यां मानुषं जन्म दुर्लभम् ॥२६॥

क्या मैं पति द्वारा हर प्रकार से उपेक्षा किए हुए अपने आप की हत्या करलूं या संघर्ष करूं ? यह मानव शरीर बड़ी कठिनाई से मिलता है ॥२६॥

अन्तर्द्वन्द्वो महानासीत्तस्या मनसि तत्क्षणे ।
हत्यां कुर्यां न वा कुर्यां वारम्वारमाचिन्तयत् ॥२७॥

उसके मन में भारी अन्तर्द्वन्द्व मच गया, वह बार-बार सोचने लगी कि क्या मैं आत्महत्या करूं या न करूं ॥२७॥

कूपे यदि पतिष्यामि कृत्वाऽहं कूर्दनं बलात् ।
लगिष्यति कियान्कालः प्राणानिस्सरणे मम ॥२८॥

यदि मैं छलांग लगाकर कुएं में गिर जाऊं तो मेरे प्राण कितनी देर में निकलेंगे ? ॥२८॥

बध्वा पाशं गले बाऽथ लम्बेयं वेणुनाऽमुना ।
सुविधया तदा प्राणा यास्यन्ति वदनाद् बहिः ॥२९॥

अथवा यदि मैं गले में फंदा लगाकर उस बांस से लटक जाऊं तो क्या प्राण आसानी से निकल जाएंगे ? ॥२९॥

दृष्टिरत्रान्तरे तस्या गता कक्षालमारिकाम् ।
गुटिका मूषिकघ्नाश्च तस्यामासन् सुरक्षिताः ॥३०॥

गुटिका भक्षयेयं चेत्कार्यं किं मे न सेत्स्यति ।
परं न प्राणहानिश्चेल्लज्जाऽधिका भविष्यति ॥३१॥

इतने में उसकी दृष्टि कमरे की अलमारी में गई तो उसमें उसने चूहों को मारने वाली गोलियां देखीं। वह सोचने लगी कि यदि मैं इन गोलियों को खा लूं तो क्या मेरा काम सिद्ध नहीं होगा ? परन्तु यदि इनके खाने से मेरे प्राण नहीं निकले तो बड़ी लज्जा की बड़ी बात होगी ॥३०॥३१॥

कूर्दनं केवलं कूपे भविताऽभीष्टसिद्धिदम् ।
शीघ्रमेव गमिष्यामि कच्चित्स्याद् भास्करोदयः ॥३२॥

कूंएं में छलांग लगाना ही मेरे लिए अच्छा रहेगा। अब मुझे जल्दी ही जाना चाहिए, कहीं सूर्य न चढ़ जाए ॥३२॥

ललना आगमिष्यन्ति पतीनां प्राणवल्लभाः ।
कूपात्पानीयमादातुं विलम्बः क्रियते यदि ॥३३॥

यदि मैं देर करूंगी तो पतियों की प्यारी नारियां कूंएं से पानी लेने आ जायेंगी ॥३३॥

चिह्नानि गूहयन्त्यस्ताः सौंदर्यस्य कृतानि च ।
प्रीणायितुं प्रियान् भर्तॄन् विभावर्यां विचक्षणाः ॥३४॥

वे रात्रि के समय अपने पतियों की प्रसन्नता के लिए बनाये हुए सुन्दरता के चिन्हों को छिपाती हुई आयेंगी ॥३४॥

सोपहासं करिष्यन्ति कटाक्षांस्ताः परस्परम् ।
कटाक्षान् केवलं नैव व्यङ्ग्यपातमपीदृशम् ॥३५॥

वे मजाक के साथ एक-दूसरी पर कटाक्ष करेंगी। केवल कटाक्ष ही नहीं, व्यंग्य भी फैंकेंगी ॥३५॥

तेऽस्ति लोचनयोरालि शोभनं कृष्णमञ्जनम् ।
ओष्ठौ तवापि लक्ष्येते लाक्षारागेण रंजितौ ॥३६॥

कपोलौ रक्तवर्णौ भो वयस्ये साधितौ कथम् ।
व्याधिस्तुदति कच्चित्त्वां भेषजालेपनं कृतम्! ॥३७॥

अरी सखी ! तेरे नेत्रों में यह काला अंजन बहुत अच्छा दिखाई दे रहा है। अरी ! तेरे होठ भी तो सुर्खी से कैसे लाल-लाल हुए हैं। दूसरी बोलेगी कि अरी सखी ! तुमने अपने इन गालों को लाल क्यों किया है ? क्या तुम्हें कोई रोग सताता है कि तुमने उसे दूर करने के लिए यह कोई दवाई का लेप किया हुआ है ? ॥३६॥३७॥

केवलं मन्दभाग्यैका संसारेऽस्मिन् भवाम्यहम् ।
आलीभिः परिहासाय न कालो मे करागतः ॥३८॥

वह सोचती है कि संसार में मैं ही एक ऐसी अभागिन हूं जिसे अपनी सहेलियों से परिहास करने के लिए कभी अवसर नहीं मिला ॥३८॥

नाहं जीवितुमिच्छामि सांप्रतं दिवसद्वयम् ।
अधुनैव गमिष्यामि द्रुतगत्या च कूपकम् ॥३९॥

मैं अब दो दिन भी जीना नहीं चाहती हूं, मैं अब शीघ्र ही कूंएं पर चली जाऊंगी ॥३९॥

तस्मिन्नेव क्षणे तस्या मोहो मनस्यजायत ।
पंचत्वमुपयातायां शिशूनां किं भविष्यति ॥४०॥

उसी क्षण उसके मन को मोह ने दबा लिया। वह सोचने लगी कि मेरे मरने पर बच्चों का क्या बनेगा ॥४०॥

पालयिष्यति मे बालान् किं वोपेक्षां करिष्यति ।
अस्य मे नास्ति विश्वासः कर्तव्यं स्वमजानतः ॥४१॥

क्या यह मेरे बच्चों को पाल लेगा या ठुकरा देगा ? यह अपने कर्त्तव्य को नहीं पहचानता है इसलिए इस पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा है ॥४१॥

त्रीनेव जननी कच्चिन्नेष्यति स्वगृहं प्रति ।
निर्धनत्वात्कथं साऽपि पालयितुं च शक्ष्यति ॥४२॥

क्या मेरी माता इन तीनों को घर ले जाएगी ? परन्तु वह भी तो निर्धन है, इनको कैसे पाल सकेगी ? ॥४२॥

बालानामस्तु यत्किञ्चिन्नाहं जीवितुमुत्सहे ।
प्राग्रवेरुदयादद्य होष्यामि जीवनं मम ॥४३॥

मेरे बच्चों का चाहे कुछ भी हो, मैं अब जी नहीं सकती। मैं सूर्य निकलने से पहले अपने प्राणों का बलिदान कर दूंगी ॥४३॥

यदि मे बलिदानेन समेष्यन्त्यपराः सुखम् ।
सार्थकं मरणं लोके भविता मे न संशयः ॥४४॥

यदि मेरे बलिदान से दूसरी नारियों का उद्धार हो जाये

तो मेरा मरना संसार में सफल हो जाएगा, इसमें कोई संदेह नहीं ॥४४॥

चूलिका या मया क्रीताः परिधातुं प्रकोष्ठयोः ।
चावपूर्तिर्मयाऽऽधाय कृताऽस्ति नैव सांप्रतम् ॥४५॥

मैंने अपने हाथों में पहनने के लिए जो चूड़ियां खरीदी हैं अभी उन्हें पहन कर मैंने अपना चाव भी पूरा नहीं किया ॥४५॥

एतं प्रणम्य यास्यामि कृत्वा चान्तिमदर्शनम् ।
साधुर्भवतु वाऽसाधुर् भर्ता भवति धर्मतः ॥४६॥

मैं इसका अन्तिम दर्शन करके तथा इसे प्रणाम करके जाऊंगी। यह चाहे भला है या बुरा, धर्म से तो मेरा पति ही है ॥४६॥

पर्यभ्राम्यन्मनस्तस्या विद्युद्गत्या द्रुतं द्रुतम् ।
असंख्येषु विचारेषु यथा भ्राम्यति लट्टुकम् ॥४७॥

उसका मन बिजली की गति से जल्दी-जल्दी असंख्य विचारों में इस प्रकार घूमने लगा जैसे लट्टू घूमता है ॥४७॥

गमिष्याम्यवतार्याहं सर्वाणि भूषणानि मे ।
विवाहे मम कन्यायाः करिष्यन्ति सहायताम् ॥४८॥

मैं अपने सब भूषणों को उतार कर जाऊंगी, मेरी कन्या के विवाह में ये सहायता करेंगे ॥४८॥

भूषणं नासिकाया मे नैव मोक्ष्याम्यहं परम् ।
नापशकुनमाधास्ये म्रियमाणा धवस्य मे ॥४९॥

परन्तु मैं अपने नाक के भूषण को नहीं उतारूंगी। मैं अब मरती बार अपने पति का अपशकुन नहीं करूंगी ॥४९॥

गत्वा सा देहलीं यावत् प्रत्यागच्छत्पुनः पुनः ।
'पैंडुलमं' यथा धत्ते घटिकाया गतागतम् ॥५०॥

वह नारी देहली (देहल) तक जाती थी और बार-बार लौटती थी जैसे घड़ी का पैंडुलम एक तरफ से दूसरी तरफ आता-जाता रहता है ॥५०॥

तनया पंचवर्षीया युग्मौ तस्यास्तथात्मजौ ।
सुप्ता नैव विजानन्ति प्रभाते किं भविष्यति ॥५१॥

उसकी पांच साल की पुत्री तथा युगल (एक साथ पैदा हुए) पुत्र यह नहीं जानते थे कि प्रातःकाल क्या होगा ॥५१॥

ललना चुम्बनं कर्तुमैच्छद् द्वावपि बालकौ ।
निद्राभंगस्य भीत्या सा तथा कर्तुं शशाक न ॥५२॥

उस नारी ने अपने दोनों पुत्रों का चुम्बन करना चाहा परन्तु नींद खुल जाने के भय से ऐसा न कर सकी ॥५२॥

चूचुकाभ्यां पयस्तस्या दृग्भ्यामश्रूणि चानिशम् ।
सुस्रुवुः स्पर्धया भूमावन्योन्यविजिगीषया ॥५३॥

उसके स्तनों से दूध और नेत्रों से आँसू लगातार इस प्रकार बहने लगे मानों एक दूसरे को जीतने की इच्छा लिये हुए हों ॥५३॥

एतेनैव च कालेन कुक्कुटो ध्वनिमुज्जहौ ।
विघ्नस्य शंकया साध्ये सा चिन्तां परमां ययौ ॥५४॥

श्रोष्यामि नाहमन्येद्युर्ध्वनिं ते शृणु कुक्कुट ।
परलोकप्रयाणे मे विघ्नं मा कुरु मा कुरु ॥५५॥

इतने ही समय में मुर्गे ने बांग दे दी तो अपने उद्देश्य में विघ्न हो जाने की शंका से उस नारी को चिन्ता होने लगी। उसने कहा कि हे मुर्गे! मैं कल तेरी आवाज़ को नहीं सुनूंगी। मैं अब परलोक में जा रही हूं, तूं मेरे रास्ते में विघ्न मत डाल ॥५४॥५५॥

तस्या वेणीस्थितो मृत्युः क्रीडति स्म तया सह ।
रहस्यं को विजानाति कालस्यैतस्य भूतले ॥५६॥

उसकी वेणी में छिपी हुई मौत उसके साथ खेल रही थी। इस काल के रहस्य को संसार में कौन जान सकता है ? ॥५६॥

ततश्चकर्ष कालस्तां कूपं प्रति च सत्वरम् ।
हिमबिन्दुमिषेणेव रोदिति स्म विभावरी ॥५७॥

फिर काल शीघ्र ही उसे कूएं के प्रति खींच कर ले गया। रात्रि ओस की बून्दों के बहाने से मानो उसकी दशा पर रो रही थी ॥५७॥

अन्तिमं समयं ज्ञात्वा तस्या नभसि तारकाः ।
उदासीना यथा भूत्वा प्रस्थानाय पदं दधुः ॥५८॥

उसका अन्तिम समय जानकर आकाश में तारे भी मानों उदास होकर घर जाने के लिए तैयार हो गए ॥५८॥

गत्या विचित्रया यान्ती कूपं प्राप्तवती द्रुतम् ।
अद्य नासीत्कटिस्तस्या घटेनालंकृता शुभा ॥५९॥

वह विचित्र गति से जाती हुई शीघ्र ही कूएं पर पहुंच गई। आज उसके सुन्दर कटि-तट पर घड़ा शोभा नहीं दे रहा था ॥५९॥

वीनाहे सा क्षणं स्थित्वा सर्वा दिशोऽवलोकयत् ।
चुकूर्द साहसं कृत्वा मध्ये कूपस्य कोपना ॥६०॥

कूएं के मुखबन्धन पर पल भर खड़ी होकर उसने सब दिशाओं की ओर देखा और फिर साहस करके कूएं के बीच छलांग लगा दी ॥६०॥

आधारात्स्खलितौ पादौ सोवाच किं मया कृतम् ।
नाभवद्धस्तयोस्तस्याः सांप्रतं प्राणरक्षणम् ॥६१॥

ज्यों ही आधार से उसके पैर छूटे, वह बोली कि हाय ! मैंने क्या किया। परन्तु अब उसके प्राणों की रक्षा उसके हाथों से निकल चुकी थी ॥६१॥

सुप्तः सोऽपि तदा स्वप्नं दृष्टवान् बहुभीषणम् ।
आरुह्य गर्दभं भार्या प्रयाति दक्षिणां दिशम् ॥६२॥

उसका पति सोया हुआ भयानक स्वप्न देखने लगा। उसने देखा कि उसकी पत्नी गधे पर सवार होकर दक्षिण दिशा को जा रही है ॥६२॥

दूताः कर्षन्ति भीमास्तां लम्बकेशनखास्तथा ।
क्रन्दति ललना भीतेः पते त्रायस्व मां द्रुतम् ॥६३॥

लम्बे-लम्बे केश और नाखूनों वाले भयानक दूत उसे अपनी ओर खींच रहे हैं। नारी भय से चीखती है कि हे पति! मुझे जल्दी बचाओ ॥६३॥

त्रातुं धावति यावत्स पादस्कंभोऽभवत्तथा ।
पदमात्रं न सेहे स चलितुं विवशोऽग्रतः ॥६४॥

ज्यों ही वह उसे बचाने के लिए दौड़ता है, उसके पैर धरती पर जम जाते हैं और वह इतना विवश हो जाता है कि एक कदम भी आगे नहीं चल सकता ॥६४॥

विधूननं शरीरेऽभूद् वारिणाऽनुडुहो यथा ।
निस्सृतं तन्मुखादेवं हा मे भार्ये क्व गच्छसि ॥६५॥

उसके शरीर में ऐसा कम्पन हुआ जैसे पीठ पर पानी पड़ने से बैल काँपता है। उसके मुंह से निकला कि हाय, प्रिये! तूं कहां जा रही है? ॥६५॥

स्वप्नभंगो यदा जातो हस्ताभ्यां चक्षुषी तदा ।
उन्मील्य जागृतः शीघ्रं व्यग्रः स्वप्नभयेन सः ॥६६॥

जब उसका स्वप्न टूटा तो उसने अपने हाथों के बल से आंखों को खोला और जाग पड़ा। वह स्वप्न के भय से बहुत घबराया हुआ था ॥६६॥

पत्नीशयनमालोक्य शून्यं पश्यति तद् यदा ।
हृदयं चातिवेगेन प्रारेभे कंपितुं तदा ॥६७॥

जब उसने भार्या के बिस्तर को खाली देखा तो उसका हृदय तीव्र गति से धड़कने लगा ॥६७॥

उदकं पीतवान् किञ्चित् स्तंभितुं हृदयं द्रुतम् ।
जलं ददाति दुःखिभ्यः शरणं समभावतः ॥६८॥

उसने अपने हृदय को थामने के लिए शीघ्र ही थोड़ा-सा पानी पी लिया। जल सब दुःखियों को समदृष्टि से शरण देता है ॥६८॥

भयावनासु शंकासु पतितं तस्य मानसम् ।
यथा यथा क्षणा यान्ति संदेहो वर्धते तथा ॥६९॥

उसका मन भयंकर शंकाओं में पड़ गया। जैसे-जैसे क्षण बीतने लगे, उसका सन्देह भी बढ़ने लगा ॥६९॥

कविकया यथाऽऽरोही वशे कर्तुं चिकीर्षति ।
व्यर्थं तुरंगमुन्मत्तं प्रायतत तथैव सः ॥७०॥

जैसे कोई घुड़सवार उन्मत्त घोड़े को लगाम के द्वारा वश में करने का व्यर्थ प्रयत्न करता है इसी प्रकार वह भी अपने मन को वश में करने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था ॥७०॥

कुरुते नांकुशः कार्यं हस्तिपकाहतो यथा ।
गजराजे मदोन्मत्ते प्रयत्नास्तस्य निष्फलाः ॥७१॥

जैसे हाथीवान का मदमस्त गजराज पर चलाया गया अंकुश कुछ भी काम नहीं करता है इसी प्रकार उसके मन को समझाने के सब प्रयत्न निष्फल हो रहे थे ॥७१॥

भ्राम्यति च यथा जालः कुकुरग्रस्तनेत्रयोः ।
एवं सकलदोषाणां जालो बभ्राम मानसे ॥७२॥

जैसे कुकुरों वाली आंखों के आगे एक प्रकार का जाला (धुन्द) घूमता रहता है उसी प्रकार उसके सब दोषों का जाला उसके मन में घूमने लगा ॥७२॥

सा पारयति मर्तुं किं परित्यत्य निजार्भकान् ।
न हि न हि मृता साऽस्ति गतिर्मे का भविष्यति ॥७३॥

क्या वह अपने बच्चों को छोड़ कर भला कभी मर सकती है ? दूसरे ही क्षण वह सोचता है 'नहीं नहीं' वह तो मर गई है, अब मेरी क्या दशा होगी ? ॥७३॥

संशयैर्विविधैर्ग्रस्ते मृत्योः शंका पुनः पुनः ।
आगच्छन्मानसे तस्य रोद्धमपारयन्न सः ॥७४॥

अनेक प्रकार के संशयों से भरे हुए उसके मन में पत्नी के मरने की शंका बार-बार उठने लगी, वह उस शंका के रोकने में असमर्थ हो गया ॥७४॥

त्यक्तुं प्रायतत भ्रान्तिं हत्यायाः स यथा यथा ।
तथा तथा स दुःस्वप्नो वायुरग्निमिवैधयत् ॥७५॥

वह जैसे-जैसे आत्महत्या के भ्रम को दूर करने का प्रयत्न करता था वैसे-वैसे वह बुरा स्वप्न उसके भ्रम को इस प्रकार बढ़ा रहा था जैसे वायु आग को भड़काती है ॥७५॥

समीक्ष्य पाकशालायां गतोऽशौचालयं प्रति ।
कपाटरेखयाऽपश्यत् कच्चिद् भार्याऽत्र मे स्थिता ॥७६॥

रसोईघर में देखने के बाद वह अशौचालय में गया। वहां किवाड़ की दरार से देखने लगा कि मेरी पत्नी यहां तो नहीं है ! ॥७६॥

क्षणा यथा यथाऽगच्छन् शंकैधत तथा तथा ।
अकरोन्निश्चयं चित्त आत्महत्या तया कृता ॥७७॥

जैस-जैसे क्षण बीतने लगे उसकी शंका भी बढ़ती गई। उसको निश्चय हो गया कि उसने आत्महत्या कर ली है ॥७७॥

दुश्चरितं समाश्रित्य स्वगृहं नाशितं मया ।
आसीत्प्राप्तं गृहे सर्वं धिग् धिङ् मां पापसेविनम् ॥७८॥

मैंने दुराचरण का आश्रय लेकर अपना घर चौपट कर लिया। मुझे घर पर ही सब कुछ प्राप्त था, मुझ पापी को धिक्कार है ॥७८॥

नाद्याहं जागृतोऽभूवं केनापि हेतुना निशि ।
आपत्तिरन्यथा घोरा चागमिष्यन्न मां प्रति ॥७९॥

आज मैं रात को किसी कारण से जागा भी नहीं। नहीं तो शायद यह घोर आपत्ति मेरे सिर पर न आती ॥७९॥

इदं हि मानुषं जन्म प्राप्यते श्रेष्ठकर्मभिः ।
लब्ध्वैतदाचरं पापं हा हा मां पशुना समम् ॥८०॥

यह मनुष्य का चोला कई श्रेष्ठ कर्मों से प्राप्त होता है। इसे प्राप्त करके भी मैंने पाप किया। मुझ पशु को धिक्कार है ॥८०॥

ग्लानिरेतादृशी जाता व्याकुले तस्य मानसे ।
प्राताडयच्छिरो भित्त्या वारंवारं बलेन सः ॥८१॥

उसके व्याकुल मन में ऐसी ग्लानि हो गई कि वह अपने सिर को जोर-जोर से दीवार के साथ पटकने लगा ॥८१॥

एतेनैव च कालेन प्रारेभे रोदितुं शिशुः।
आभीलं रोदनेनास्य बभूव शतवर्धितम् ॥८२॥

इसी बीच बच्चा रोने लग पड़ा। इसके रोने से उसका दु:ख सौ गुना बढ़ गया ॥८२॥

ओ शोभे क्व गताऽऽगच्छ कुरुषेऽक्षिनिमीलिकाम्।
क्षमस्व मेऽपराधाँस्त्वं पणं प्रातः करोम्यहम् ॥८३॥

वह विलाप करने लगा, अरी शोभे! तू कहां चली गई, जल्दी आ। क्या तू मेरे साथ आंखमिचौनी करती है? मुझे क्षमा कर दे। मैं प्रभातकाल में प्रतिज्ञा करता हूं ॥८३॥

सदाचारेण वत्स्यामि द्रक्ष्यामि मातृवत्सदा।
परांगना भविष्येऽहं विश्वासं कुरु मानिनि ॥८४॥

मैं सदाचार से रहूंगा, पराई स्त्रियों को माता के समान देखूंगा, तुम मुझ पर विश्वास करो ॥८४॥

पश्चात्तापं परं कर्तुं समयस्तस्य हस्तयोः।
सांप्रतं नाभवद् दुर्गं कर्तुमैच्छत्स रेणुभिः ॥८५॥

परन्तु अब पश्चात्ताप करने का समय उसके हाथों से निकल गया था। अब वह रेत से किला खड़ा करना चाहता था ॥८५॥

लालिमाऽथ प्रभातस्य नभसि दर्शनं ददौ ।
भयस्य लाञ्छनं तस्मै दर्शयति स्म निश्चितम् ॥८६॥

अब प्रभात की लाली आकाश में आ गई। वह निश्चय ही उसे भय का चिन्ह दिखा रही थी ॥८६॥

अस्तं गच्छन्ति चर्क्षाणि वदन्ति गुप्तभाषया ।
अस्तस्तवापि भाग्यस्य भवति निकटेऽधुना ॥८७॥

अस्ताचल को जाते हुए तारे गुप्त भाषा में कह रहे थे कि अरे मानव, तेरे भाग्य का अस्त भी अब निकट ही है ॥८७॥

सुंदरी प्रथमा कूपमुदकाय समागता ।
कटितटे स्थितं कुंभं वहन्ती रम्यबाहुना ॥८८॥

अब कुँएं पर पानी लेने के लिए पहली सुन्दरी आई। वह कमर पर रखे हुए घड़े को अपने सुन्दर बाहु से पकड़े हुए थी ॥८८॥

सिंदूरं केशवेशेऽस्या नभसि लालिमा यथा ।
शाटकायां दुकूले च तारकाः सिल्कबिन्दवः ॥८९॥

इसके केशों में सिंदूर ऐसा मालूम हो रहा था मानो आकाश में लाली हो। उसकी साड़ी और दुपट्टे में सिल्क के बिन्दु तारे मालूम हो रहे थे ॥८९॥

स्पर्धमानं च चन्द्रेण मुखं प्रकाशवत्तथा ।
उषा यथा स्वयं याति कूपं पानीयहेतवे ॥९०॥

उसका प्रकाशमान मुखड़ा ;चांद से स्पर्धा कर रहा था । उसकी शारीरिक रचना से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उषा स्वयं ही पानी के लिए कुंएं पर जा रही है ॥९०॥

दुकूलेन कटिं बध्वा रज्जुः कुंभगले कृता ।
कूपान्तः पातितः कुंभः कृतो नीचैः शनैः शनैः ॥९१॥

उसने कमर दुपट्टे से बांध ली और रस्सी घड़े के गले में बांध दी । फिर घड़े को कुँएं में गिराया और धीरे-धीरे नीचे किया ॥९१॥

नीचैरुपरि कर्तुं सा प्रारेभेऽथ घटं स्वकम् ।
मत्वेव दूषितं नीरं न कुंभस्तज्जिघृक्षति ॥९२॥

वह अपने घड़े को ऊपर-नीचे करने लगी। परन्तु घड़ा मानों उस पानी को दूषित समझ कर ग्रहण नहीं करना चाहता था ॥९२॥

पुनः पुनस्तया रज्जुर्दोलिता करमध्यगा ।
निष्फलेषु प्रयत्नेषु द्रष्टुं मध्ये मनोऽकरोत् ॥९३॥

उसने अपने हाथ में ली हुई रस्सी को बार-बार हिलाया परन्तु घड़ा नहीं भरा । अपने प्रयत्नों के निष्फल होने पर उस ने कुंएं के बीच झांकने का विचार किया ॥९३॥

तरन्तं सा शवं दृष्ट्वा मध्ये कूपस्य सुंदरी ।
रज्जुं मुक्तवती हस्ताच्चीत्कारं च तथाकरोत् ।।९४।।

जब उस सुन्दरी ने कुंएं के बीच तैरते हुए मुर्दे को देखा तो उसके हाथ से रस्सी छूट गई और डर के मारे उसकी चीख निकल गई ।।९४।।

आपादमस्तकं क्लिन्ना स्वेदेन सा भियाभवत् ।
स्रंसनं च दुकूलस्य बुबोध वनिता न हि ।।९५।।

वह डर की मारी सिर से पैर तक पसीने से भीग गई। उस सुन्दरी को यह भी पता न चला कि उसका दुपट्टा कहां गिर गया ।।९५।।

प्रत्यावर्तितुमारेभे गृहं स्वं रभसा तदा ।
चतस्र आलयो मार्गे मिलितास्तां तथाऽऽकुलाम् ।।९६।।

वह बड़ी तीव्र गति से घर को लौटने लगी तो इस प्रकार घबराई हुई उस सुन्दरी को रास्ते में चार सखियां मिलीं ।।९६।।

शवो दृष्टो मया कूपे प्रमदायाः प्रतीयते ।
भवत्यस्तत्र पश्यन्तु हृदयं मे विकंपते ।।९७।।

वह बोली, मैंने कुंएं में मुर्दा देखा है, वह किसी नारी का प्रतीत होता है। आप चल कर देखें, मेरा तो हृदय काँप रहा है ।।९७।।

अधावन् सकलाः सख्यः कूपं प्रति ससाध्वसम् ।
कमला विमलां प्राह शोभामनुमिनोम्यहम् ॥९८॥

सारी सखियां भय के साथ कुंएं के प्रति दौड़ीं। कमला विमला को बोली कि मेरे अनुमान में यह शोभा ही है ॥९८॥

अन्वमोदन्त ताः सर्वा वचनं तत्तयेरितम् ।
भ्रमस्य कारणं तासां ताभ्यो ज्ञातं भविष्यति ॥९९॥

उन सब ने कमला के वचन का समर्थन किया। उनके भ्रम का कारण उनको ही मालूम होगा ॥९९॥

क्षणमात्रे समाचारो दावाग्निः प्रासरद्यथा ।
येषां भार्या गृहे नासँश्चिन्तिताः पतयोऽभवन् ॥१००॥

पल भर में यह समाचार जंगल की आग की तरह सारे मुहल्ले में फैल गया। जिन पतियों की पत्नियां उस समय घर पर नहीं थीं वे चिन्ता में डब गये ॥१००॥

एकः पृच्छति पुत्रीं स्वां 'मुन्नि' ! माता क्व ते गता ।
अन्यः पृच्छति बालं स्वं "बिट्टो" ! मातरमाह्वय ॥१०१॥

एक अपनी पुत्री से पूछता है, "अरी पुत्री ! तेरी माता कहां है ?" दूसरा अपने बेटे से पूछता है, "ओ बिट्टु ! अपनी माता को बुला" ॥१०१॥

येषां पाणिगृहीत्यश्च रुष्टास्तास्मिन्दिनेऽभवन् ।
व्याकुलं मानसं तेषामासीत्तत्र विशेषतः ॥१०२॥

जिन-जिन की पत्नियां उस दिन किसी कारण रुष्ट थीं उनका मन विशेष करके व्याकुल हो गया ॥१०२॥

बचेरामः समाचारं निशम्यैतं भयानकम् ।
विललापातिदुःखेन शोभे विनाशितस्त्वया ॥१०३॥

बचेराम को जब इस भयानक समाचार का पता लगा तो वह बड़े दुःख से विलाप करने लगा। अरी शोभा ! तुमने मेरा विनाश कर दिया ॥१०३॥

अधुना किं करिष्येऽहं हा हा दुःखमुपार्जितम् ।
शून्यं मम गृहं जातं तरिष्याम्यापदं कथम् ॥१०४॥

अब मैं क्या करूं, हाय ! मैंने तो स्वयं ही दुःख पैदा कर लिया। मेरा घर सूना पड़ गया, अब इस आपत्ति से मेरा कैसे उद्धार होगा ॥१०४॥

पालयिष्यति बालान् का का मे दास्यति भोजनम् ।
समायातं बहिःस्थानात् का वा मां सत्कारिष्यति ॥१०५॥

अब मेरे बच्चों को कौन पालेगी, मुझे भोजन कौन देगी। जब मैं बाहर से आऊंगा तो मेरा सत्कार कौन करेगी ॥१०५॥

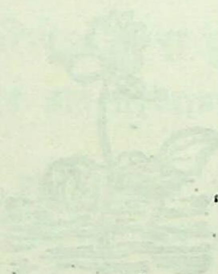
मया पापेन सा साध्वी मर्तुं हि विवशीकृता।
सच्चारित्रा सती भार्या भाग्येनाप्ता विनाशिता ॥१०६॥

मुझ पापी ने उस पतिव्रता नारी को मरने के लिए विवश कर दिया। वह चरित्रशील पत्नी मुझे भाग्य से मिली थी, मैंने उस को नष्ट कर दिया ॥१०६॥

इति चतुर्थः सर्गः समाप्तः







अथ पंचमः सर्गः

तालौ तैलं कुरु प्रिये

Could you massage my head darling !



विवादः प्रत्यहं गेहे चलति स्म द्वयोरपि ।
गच्छति भरणं कुत्र पृच्छति स्म कुटुम्बिनी ॥१॥

दोनों का घर में यह झगड़ा चलता ही रहता था। घर की स्वामिनी पूछती थी कि तुम्हारी कमाई आखिर कहाँ चली जाती है ॥१॥

जानासि न प्रिये मे त्वं बहुमित्रो भवाम्यहम् ।
भवति सकलं क्षीणं मित्राणां मधुसंगमे ॥२॥

हे प्रिये ! तूं नहीं जानती है, मेरे बहुत से मित्र हैं। उनके मीठे समागम में सब कुछ समाप्त हो जाता है।।२।'

तनया सप्तवर्षीया प्रकृत्या प्रेरिता स्वया ।
अतर्किता समागच्छद् जगाद मातरं द्रुतम् ॥३॥

उनकी सात वर्ष की कन्या अपने स्वभाव से प्रेरित की हुई अचानक वहाँ आ गई और माता को बोली ॥३॥

अद्य मातर्मया दृष्टः पिता तत्रापणे स्थितः ।
'शर्बतं' रक्तवर्णस्य पिबति स्म शनैः शनैः ॥४॥

हे माता जी ! आज मैंने पिता को एक दुकान में बैठा हुआ देखा था। वहां यह लाल रंग के शर्बत को धीरे-धीरे पी रहा था ॥४॥

अघूरयत्पिता तस्यास्तिर्यक् कृतेन चक्षुषा ।
'पगलि' गच्छ गच्छेतश्चपेटं लप्स्यसेऽन्यथा ॥५॥

पिता ने उसे टेढ़ी आंख से घूर कर देखा और कहा—ओ पागल लड़की, यहां से चली जा नहीं तो मैं तुझे चपेड़ लगाऊंगा ॥५॥

भर्त्सिता बालिकाऽबोधा गता कक्षान्तरं द्रुतम् ।
सखीभिः सह संलग्ना गुडिकाखेलने तदा ॥६॥

झिड़की हुई वह अबोध लड़की शीघ्र ही दूसरे कमरे को चली गई और अपनी अन्य सखियों के साथ गुड़ियां खेलने में व्यस्त हो गई ॥६॥

व्यजानात्सा सुता नैव स्फुलिङ्गः पातितो मया ।
एतेन सदने नूनं कलहाग्निरुदेष्यति ॥७॥

उस पुत्री को यह प्रतीत नहीं था कि मैंने जो चिनगारी फैंकी है इससे घर में झगड़े की आग लग जाएगी ॥७॥

किंचित् किंचिद् व्यजानात्सा भामिनी तस्य तादृशम् ।
स्वभावं मद्यपानस्य वर्धमानं दिने दिने ॥८॥

वह नारी कुछ-कुछ जानती थी कि इसे मद्यपान की आदत पड़ गई है और यह दिन-दिन बढ़ रही है ॥८॥

दुर्गन्धश्च मुखात्तस्य निस्सरन् भाषते स्वयम् ।
आगच्छति सुरां पीत्वा वेश्मायं कुटिलो नरः ॥९॥

उसके मुँह से आने वाली दुर्गन्धि अपने आप ही यह बताती थी कि यह कुटिल आदमी शराब पी कर आता है ॥९॥

किंतु शशाक पत्नी न वक्तुं किंचित्तदग्रतः ।
क्रूर आसीत्स्वभावेन ददौ "गालीः" पदे पदे ॥१०॥

परन्तु उसकी पत्नी उसके सामने कुछ कह नहीं सकती थी क्योंकि उसका स्वभाव बड़ा क्रूर था और वह पग-पग पर गालियां देता था ॥१०॥

तथापि साहसं कृत्वा प्रोवाच कुपिता सती ।
भवद्‌भ्यः शोभते नैतन्मद्यपानादिकर्म यत् ।।११।।

तो भी वह क्रुद्ध होकर हौसला करके बोली कि आपको यह शराब आदि पीना शोभा नहीं देता ।।११।।

श्रुत्वा मद्यस्य नामासौ कोपानलप्रदीपितः ।
ववर्ष वचनांगारान् जिह्वया सर्पतुल्यया ।।१२।।

मद्य के नाम को सुनकर उसकी क्रोध की आग भड़क उठी और वह सांप की जीभ जैसी जीभ से गालियों के अंगार बरसाने लगा ।।१२।।

मिथ्या वदसि दुष्टे त्वं प्रत्यायितासि बालया ।
कदापि स्पृष्टवान्नाहं मदिरां मम जन्मनि ।।१३।।

अरी दुष्ट, तूं झूठ बोलती है, तूंने लड़की के कहने पर ही विश्वास कर लिया । मैंने तो अपने जीवन में शराब को कभी छुआ तक भी नहीं ।।१३।।

भार्योवाच

पिबसि नैव मद्यं चेद् भरण्यं कुत्र गच्छति ।
आये सत्यपि कौबेरे शून्यहस्ता वयं सदा ।।१४।।

पत्नी बोली—यदि आप मद्यपान नहीं करते तो आपकी

कमाई कहां जाती है। हमारी आय बड़े धनवानों के समान है तो भी हम सदा खाली हाथ हो रहते हैं ॥१४॥

प्रत्यहं वेश्म युष्माकमायान्ति बिलवाहकाः ।
दीयते रजकस्यापि कर्मण्या कालतो न च ॥१५॥

प्रतिदिन लोग बिल लेकर आपके घर दौड़े रहते हैं। धोबी की मजदूरी भी समय पर नहीं दी जाती ॥१५॥

पतिरुवाच

ओ चंडिके विवादं त्वं स्वभर्त्रा कुरुषे कथम् ।
वाच्यावाच्यं न जानासि भाषसे यन्मुखागतम् ॥१६॥

पति बोला—अरी चंडिके (क्रोधी स्वभाव की नारी)! तूं अपने पति के साथ झगड़ा कैसे करने लग जाती है? तूं तो यह भी नहीं देखती कि पति को क्या बात कहनी है और क्या नहीं कहनी है। जो कुछ तेरे मुंह में आता है, तूं कह देती है ॥१६॥

भार्योवाच

सत्यमेव भवत्येतद् भवन्तः पतयो मम ।
पूज्यौ स्तो भवतां पादौ शिरोधार्यौ च सर्वदा ॥१७॥

पत्नी बोली कि यह ठीक है कि आप मेरे पति हैं, आपके चरण मेरे पूज्य तथा सिर पर धारण करने योग्य हैं॥१७॥

परं वदन्तु सत्यं मे भवाद्भिः पाल्यते क्वचित् ।
पत्युर्भवति यद्धर्म वेदशास्त्रेषु पावनम् ॥१८॥

परन्तु आप मुझे सच बताएं कि पति का जो धर्म वेद-शास्त्रों में पवित्र बताया गया है क्या आप कभी उसका पालन करते हैं ? ॥१८॥

अहं तु पूजयिष्यामि भवतां चरणौ सदा ।
आचरन्तु भवन्तो वा नाचरन्तु स्वधर्म वः ॥१९॥

मैं तो आपके चरणों की सदा ही पूजा करूंगी । आप अपने धर्म का चाहे पालन करें या न करें ॥१९॥

पितृभ्यां शिक्षिता चास्मि पतिधर्मस्य पालने ।
भवन्तो नैव जानन्ति कर्तव्यमबलां प्रति ॥२०॥

मुझे माता-पिता ने पतिधर्म के पालन करने की शिक्षा दी है, परन्तु आप नारी के प्रति अपने कर्त्तव्य को नहीं समझते हैं ॥२०॥

भवामि कुलजा नारी नाङ्गनाहं च तादृशी ।
या भर्तारमनादृत्य न्यायालयं प्रधावति ॥२१॥

मैं अच्छे कुल की नारी हूं, मैं कोई ऐसी-वैसी महिला नहीं हूं जो अपने पति का तिरस्कार करके न्यायालय को दौड़ती है ॥२१॥

संस्कृतिं वेद्मि देशस्य सीतादिपरिपालिताम् ।
परिच्छिनत्ति या देशं संसारात्सकलादिमम् ॥२२॥

मैं सीता-सावित्री आदि से पालन की गई देश की संस्कृति को जानती हूं जो संस्कृति सारे संसार से हमारे देश को पृथक् करती है ॥२२॥

एवञ्च भाषमाणाया योषितश्चन्द्रमंडलात् ।
द्वाभ्यामेव पपातासौ दयापूर्णा सुरापगा ॥२३॥

इस प्रकार कहती हुई उस नारी के चन्द्रमंडल के दोनों स्रोतों से दया को उभारने वाली गंगा बहने लग पड़ी ॥२३॥

उभाभ्यामेव धाराभ्यां कपोलौ पावनीकृतौ ।
शनैः शनैश्च धारे ते चिबुकमागते तदा ॥२४॥

उन दोनों धाराओं ने उसके गालों को पवित्र कर दिया। फिर वे धीरे-धीरे उसकी ठोडी तक आ गईं ॥२४॥

आगत्य च हनुं तत्र विश्रामं चक्रतुः क्षणम् ।
अजायत यथा मोह उभयोश्च कपोलयोः ॥२५॥

वहां ठोडी पर आकर उन धाराओं ने पल भर विश्राम किया। मानों उन्हें उसके गालों से मोह हो गया हो ॥२५॥

कुचयोर्मध्यमागत्य त एकरूपतां गते ।
द्विगुणं बलमापद्य धारा निम्नतलं गता ॥२६॥

दोनों स्तनों के मध्य में वे धाराएं आपस में मिल गईं। तब वह एक धारा दुगुने बल से नीचे की ओर चली ॥२६॥

नाभिमागत्य सा धारा लुप्तेव सागरे नदी ।
अर्धाञ्च घटिकां यावदेष एव क्रमोऽचलत् ॥२७॥

नाभि में आकर वह धारा इस प्रकार लुप्त हो गई जैसे समुद्र में जाकर नदी का नाम मिट जाता है। आधी घड़ी तक यही क्रम चलता रहा ॥२७॥

एतावत्कालपर्यन्तं बोधं सोऽपि समागतः ।
मुखे तस्य च दुर्गन्धो नैवालक्ष्यत सांप्रतम् ॥२८॥

इतने समय में वह भी चेतना में आ गया। अब उसके मुख से मद्य की दुर्गन्ध नहीं आ रही थी ॥२८॥

स उवाच

रोदनस्य स्वभावस्ते रोदिषि त्वं लघौ लघौ ।
त्वमेवमेव मां मूढं जेतुमिच्छसि सर्वदा ॥२९॥

वह बोला कि तेरा रोने का स्वभाव है और तू छोटी-छोटी

बात पर ही रोने लग जाती है। तूं मुझ मूर्ख को सदा इस तरह ही जीतती आई है ॥२९॥

एवमुक्त्वा जगामासौ भ्रमणाय बहिः क्वचित् ।
सुधापि पाठशालाया अत्रान्तरे समागता ॥३०॥

यह कह कर वह कहीं बाहर भ्रमण करने के लिए चला गया। इतने में सुधा भी स्कूल से आ गई ॥३०॥

चक्षुर्भ्यां रुदितां ज्ञात्वा मातरं चतुरा सुधा ।
बाहू तस्या गले कृत्वा प्रोवाच स्नेहविह्वला ॥३१॥

चतुर सुधा ने माता की आंखों से अनुमान लगा लिया कि आज माता रोई हुई है। उसने अपने बाहु उसके गले में डाल दिये और प्यार से भीगी हुई बोली ॥३१॥

तनयोवाच

मातर्भवति का वार्ता लक्ष्यते रुदितं त्वया ।
यावन्न कारणं वेद्मि नाहं भोक्ष्यामि भोजनम् ॥३२॥

पुत्री बोली कि हे माता जी ! आज क्या बात है? ऐसा मालूम होता है कि आप रोई हुई हैं। जब तक मुझे आपके रोने का कारण मालूम न होगा, मैं भोजन नहीं खाऊंगी ॥३२॥

स्पर्शेन तृणमात्रस्य रक्तं सूते यथा क्षतम् ।
अश्रूणि वेदना सूते स्पृष्टा केनापि बन्धुना ॥३३॥

जैसे घाव से तिनका छू जाय तो उसमें से रक्त बहने लग जाता है इसी प्रकार यदि कोई बन्धु किसी की पीड़ा से छू जाए तो उस (पीड़ित) की आंखों से आंसू बहने लग जाते हैं ॥३३॥

पुना रोदितुमारब्धा नारी पत्या तिरस्कृता ।
वाष्पावरुद्धकंठा सा वक्तुं किंचिच्छशाक न ॥३४॥

पति से तिरस्कार पाई हुई वह नारी फिर रोने लग पड़ी । आंसुओं से उसका गला रुक गया और वह कुछ भी न बोल सकी ॥३४॥

संकोचं कुरुते चौरस्तावच्चौर्यान्न संशयः ।
यावत् कश्चिन्न जानाति तस्य कर्म मलीमसम् ॥३५॥

चोर तब तक ही चोरी करने से संकोच करता है जब तक उसके इस पापकर्म का किसी को पता नहीं लग जाता है ॥३५॥

प्रथमं स पपौ मद्यं गुप्तो भूत्वा यदा कदा ।
भार्यया सांप्रतं ज्ञातश्चचार निरवग्रहः ॥३६॥

पहले तो वह कभी-कभी गुप्त रूप से मद्यपान करता था परन्तु अब जब उसकी पत्नी को उसके व्यसन का पता लग गया तो वह बेलगाम हो गया ॥३६॥

सायंकाले यदाऽऽयातो मद्यपायी गृहं प्रति ।
अट्टहासं करोति स्म लुण्ठन्नेवमितस्ततः ॥३७॥

सायंकाल को जब वह मद्यपायी घर आया तो अट्टहास कर रहा था और इधर-उधर लुढ़क रहा था ॥३७॥

स उवाच

भवासि त्वं सुधे कुत्र 'मम्मी' ते कुत्र तिष्ठति ।
रज्जोर् मंजुस्तथा बिट्टुः सर्वे कुत्र मृता वद ॥३८॥

वह बोला ओ सुधे ! तू कहां है, तेरी मम्मी कहां है। रज्जो, मंजु और बिट्टु ये सब कहां मर गये, जल्दी बता ॥३८॥

भयार्ता बालकाः सर्वे मात्रा लिप्ता इतस्ततः ।
लघिष्ठः कंचुकं तस्या उत्थायोदरमाश्रितः ॥३९॥

बच्चे डर के मारे इधर-उधर अपनी माता के साथ लिपट गये। सब से छोटा तो इतना डरा कि माता की कमीज के बीच होकर उसके पेट से लिपट गया ॥३९॥

पिठरे वेसवारं सा भर्जयति स्म सुन्दरी ।
स्वादवद् व्यंजनं कर्तुं पाकक्रियाविचक्षणा ॥४०॥

रसोई बनाने में चतुर वह सुन्दर नारी सब्जी को स्वादिष्ट बनाने के लिए पतीलो में मसाला भून रही थी ॥४०॥

तस्याश्चित्ते समागच्छत्ताडयेयं खजाकया ।
परं सा बुबुधे शीघ्रं भवत्येष पतिर्मम ॥४१॥

उसके मन में आया कि मैं इसके सिर पर कड़छी दे मारूं परन्तु उसे शीघ्र ही भान हो गया कि यह तो मेरा पति है ॥४१॥

स पुनरुवाच

ओ सुधे पश्य पश्यात्र भुजंगोऽयं महान् स्थितः ।
आकारय स्व 'मम्मीं' त्वं क्वचिदेष गमिष्यति ॥४२॥

वह फिर बोला—ओ सुधे ! देख-देख, यहां तो बड़ा भारी साँप है। अपनी मम्मी को जल्दी बुला नहीं तो यह कहां भाग जाएगा ॥४२॥

'हो हो हो हो' विचित्रोऽयं वक्राकारेण संस्थितः ।
गलेऽहं धारयित्वैनं भविष्यामि महेश्वरः ॥४३॥

अरे अरे ! देखो, यह कितना अद्भुत है, कैसे कुंडली मार कर बैठा हुआ है। मैं इसे गले में डाल कर महादेव बन जाऊंगा ॥४३॥

यष्टिं कदाचिदादत्ते क्षिपति तां पुनः पुनः ।
विविधाः कुरुते चेष्टा भूयो भूयश्च नर्तनम् ॥४४॥

वह कभी लाठी को उठाता है और कभी उसे फ़ैंकता है, अनेक प्रकार की चेष्टाएं करता है और बार-बार नाचता है॥४४॥

नर्तनं मद्यपश्चक्रे भ्रूकुंसः कुरुते यथा ।
ईक्षितुं कौतुकं तस्य चाजग्मुः प्रतिवासिनः ॥४५॥

वह शराबी इस प्रकार नाचने लगा जैसे स्त्रीवेषधारी नर्तक नाचता है। उसका तमाशा देखने के लिए कुछ पड़ोसी भी आ गए ॥४५॥

सर्पभ्रमेण तत्पत्नी समागता तदन्तिकम् ।
रज्जुं दृष्टवती तत्र पत्या भुजंगकल्पिताम् ॥४६॥

उसकी पत्नी साँप की शंका से उसके पास आई तो उसनें देखा कि वहाँ रस्सी पड़ी हुई है जिसको उसके पति ने सांप समझ लिया है ॥४६॥

कोणेन सा दुकूलस्य छादयन्ती मुखं स्वकम् ।
मद्यगन्धमपाकर्तुं प्रयेते गुप्तरूपतः ॥४७॥

दुपट्टे के कोने से अपने मुंह को ढांपती हुई वह गुप्त रूप से मद्य की दुर्गन्ध से बचने का प्रयत्न कर रही थी ॥४७॥

रज्जुमुत्थाप्य हस्तेन चिक्षेप परतोऽङ्गना ।
अट्टहासं ततः कृत्वा भर्ता बाहुं गृहीतवान् ॥४८॥

उस नारी ने रस्सी को हाथ से उठा कर परे फैंक दिया। पति ने ठहाका मार कर उस के बाहु को पकड़ लिया ॥४८॥

एतया चेष्टया तस्य स्तंभिता सा व्यलोक्यत ।
रक्तवर्णं मुखं जातं कायकंपः क्षणं तथा ॥४९॥

उस की इस चेष्टा से वह सहम गई, उस का मुंह लाल हो गया और शरीर कांपने लगा ॥४९॥

भार्योवाच

भवन्तः पशवः सन्ति बाला अभ्यन्तरे स्थिताः ।
बाहुमुन्मोच्य यत्नेन पाकशालां समाययौ ॥५०॥

पत्नी बोली—क्या आप पशु हैं, देखते नहीं कि बच्चे अन्दर बैठे हुए हैं ? उसने बड़े प्रयत्न से अपनी बांह को छुड़ाया और रसोईघर में चली गयी ॥५०॥

पीत्वा सत्यं सुरामेतामसुरो जायते नरः ।
कृत्याकृत्यं न जानाति राक्षसीं बुद्धिमाश्रितः ॥५१॥

इस सुरा को पी कर मनुष्य सचमुच असुर ही बन जाता है, वह कृत्य व अकृत्य को नहीं जानता है और उसकी बुद्धि राक्षसों जैसी हो जाती है ॥५१॥

यथा यथा स मद्यस्य प्रभावान्मुक्तिमाप्तवान् ।
कायः शनैः शनैस्तस्य शैथिल्यमभजत्तथा ॥५२॥

जैसे जैसे मद्य का प्रभाव कम होता गया वैसे-वैसे ही धीरे-धीरे उसका शरीर शिथिल होने लग पड़ा ॥५२॥

भोजनस्यावशिष्टांशः पक्वस्तयावहेलया ।
नाकारितस्तया भर्ता भोक्तुमभ्यन्तरं भिया ॥५३॥

रसोई का बाकी काम उसकी पत्नी ने लापरवाही से ही किया। उसने डर के कारण पति को भोजन करने के लिए अन्दर नहीं बुलाया ॥५३॥

माता पुत्रीमुवाच

स्थालीं सुधे त्वमायच्छ देहि ताताय भोजनम् ।
आज्ञायाः पालनं पुत्री विधातुं प्रस्तुताऽभवत् ॥५४॥

माता पुत्री को बोली—सुधे ! तूं थाली ले और अपने पिता को भोजन दे आ। पुत्री माता की आज्ञा का पालन करने के लिये तैयार हो गई ॥५४॥

पदद्वयं सुधाऽगच्छन्माता द्रुतं न्यषेधयत् ।
गच्छामि स्वयमेवाहं धेहि स्थालीं करे मम ॥५५॥

सुधा अभी दो ही पैर गई थी कि माता ने उसे रोक लिया और बोली कि तू थाली मुझे दे दे, मैं स्वयं ही जाती हूं ॥५५॥

पुत्री केन निमित्तेन मात्रा तस्या निवारिता ।
सैव जानाति शंकायाः कारणं नापरो नरः ॥५६॥

पुत्री को माता ने किस कारण से जाने से रोक लिया, इस शंका का कारण माता को ही प्रतीत होगा, दूसरा कोई कैसे जान सकता है ॥५६॥

स्थाल्या सह यदाऽऽयाता पत्युः कक्षं शुभानना ।
नाभवन्मद्यपस्तत्र स्थाली वेत्रासने कृता ॥५७॥

जब वह सुन्दरी थाली लेकर पति के कमरे में आई तो वह शराबी वहाँ नहीं था । उसने थाली को कुर्सी पर रख दिया ॥५७॥

इतस्ततश्च पश्यन्ती गताऽशौचालयं प्रति ।
अधोमुखः पतिस्तस्याः शेते लिप्तश्च विष्ठया ॥५८॥

वह इधर-उधर देखती हुई अशौचालय में गई । उसने देखा कि वहां वह औंधे मुँह पड़ा है और विष्ठा से लिबड़ा हुआ है ॥५८॥

लिप्तौ हस्तौ पुरीषेण विवशो मद्यमूर्च्छया ।
अर्धं निमीलिते नेत्रे स्वपित्यर्धमृतो यथा ॥५९॥

वह मद्य की मूर्छा से विवश है, उसके हाथ विष्ठा से लिबड़े हुए हैं, नेत्र आधे बंद हैं और वह अधमरा जैसे पड़ा है ॥५९॥

पित्रोः स्मरणमायातं चित्ते तस्यास्तदा स्त्रियाः ।
परीक्षा न कृता ताभ्यां दत्ताऽहं मद्यपायिने ॥६०॥

तब उस नारी के मन में माता-पिता का ध्यान आया। वह सोचने लगी कि उन्होंने विना परीक्षा किये ही मुझे इस शराबी को दे दिया ॥६०॥

पाखंडिनस्तथा धूर्ता पिबन्ति मानवाः सुराम् ।
दर्शयन्ति परं दंभं पत्नीनां पुरतस्तदा ॥६१॥

ये पाखंडी और धूर्त लोग मद्यपान करते हैं और फिर अपनी पत्नियों के आगे बड़ा ढोंग दिखाते हैं ॥६१॥

नीवीं बबन्ध हस्ताभ्यामक्षालयत्करौ तथा ।
साहाय्यं ददती किञ्चिदानयत्कक्षकं प्रति ॥६२॥

उसने उसके नाड़े को अपने हाथों से बांधा और उस के हाथों को धुलाया फिर कुछ सहारा देती हुई उसे कमरे में ले आई ॥६२॥

विष्ठया लिप्तवस्त्राणि कृतानि परतस्तया ।
धारयित्वा नवीनानि स्वस्थं चक्रे तमङ्गना ॥६३॥

उसने विष्ठा से लिबड़े हुए उस के वस्त्रों को उतारा और दूसरे नये वस्त्र पहना कर उसे स्वस्थ बनाया ॥६३॥

निर्लज्जा मानवा एते सुरां पीत्वा विमोहिताः ।
पत्नीभिः परिचर्यन्ते मातृभिर्बालका यथा ॥६४॥

ये निर्लज्ज मनुष्य जब मद्यपान करके बेहोश हो जाते हैं तो पत्नियों को इन की इस प्रकार सेवा करनी पड़ती है जैसे माताएं बच्चों की सेवा करती हैं ॥६४।

यथा माता तथा पत्नी समाने मद्यपायिने ।
अत एव बुधा लोके वर्जयन्ति सुरामिमाम् ॥६५॥

मद्य पीने वाले के लिए माता और पत्नी समान ही होती हैं इसीलिए संसार में बुद्धिमान् लोग मद्यपान नहीं करते हैं ॥६५॥

भोजनं कर्तुमारब्धः शून्ये हस्तं करोति सः ।
करोति कर्णयोरक्ष्णो घ्राणयोरन्तरान्तरा ॥६६॥

जब वह भोजन करने लगा तो अपने हाथ को शून्य स्थान में ही ले जाता है। कभी कानों में, कभी आंखों में तो कभी नाक की ओर ही ले जाता है ॥६६॥

सन्निधाने स्थितौ बालौ पश्यन्तौ तस्य कौतुकम् ।
हास्यं कर्तुं यदारब्धौ मात्रा क्रोधेन वार्जितौ ॥६७॥

पास बैठे हुए दो बच्चे उसके तमाशे को देखकर जब हंसने लगे तो माता ने क्रोध से उनको रोका ॥६७॥

असमर्थो यदा दृष्ट आदातुं भोजनं तया ।
ग्रासं ग्रासं तदादाय मुखे तस्य व्यमेलयत् ॥६८॥

जब पत्नी ने देखा कि यह भोजन करने में असमर्थ है तो एक-एक ग्रास लेकर उसके मुंह में देने लगी ॥६८॥

स उवाच

शिरसि वेदना मेऽस्ति तालौ तैलं कुरु प्रिये ।
नैवं पुनः करिष्यामि सत्यं वदामि तेऽग्रतः ॥६९॥

वह बोला कि हे प्रिये ! मेरे सिर में पीड़ा हो रही है, तूं मेरे तालु पर तेल की मालिस कर। मैं तेरे आगे सच कहता हूं कि आगे के लिए ऐसा कभी नहीं करूंगा ॥६९॥

तालुं सा मर्दयामास तैलाभ्यक्तेन पाणिना ।
चूडिकानां ध्वनी रम्योऽसांत्वयत्तस्य मानसम् ॥७०॥

वह अपने हाथ को तेल में भिगो कर उसके तालु की मालिस करने लगी। उसकी चूड़ियों की मीठी आवाज उसके मन को सांत्वना देने लगी ॥७०॥

कालानुकूलतां दृष्ट्वा चक्रे तस्य प्रबोधनम् ।
एवं यदि करिष्यामो निर्वाहो नः कथं भवेत् ॥७१॥

समय की अनुकूलता को देखकर वह उसे समझाने लगी। यदि हम ऐसा करेंगे तो निर्वाह कैसे होगा ? ॥७१॥

भार्योवाच

परिणेया सुधा जाता यौतुकं दास्यते कुतः ।
भवतां व्यसनासक्त्या क्षयत्यर्थो दिनं दिनम् ॥७२॥

पत्नी बोली कि अब हमारी सुधा विवाह के योग्य हो गई है, हम दहेज कहां से देंगे ? आपके इस मद्यपान के व्यसन से हमारी हालत दिन-दिन पतली होती जा रही है ॥७२॥

निन्दन्ति सकला लोका भवन्तं मद्यपायिनम् ।
उपहासं च कुर्वन्ति ललना मम सर्वदा ॥७३॥

आपके इस मद्यपान के कारण लोग आपकी निन्दा करते हैं और स्त्रियाँ सदा ही मेरा उपहास करती हैं ॥७३॥

स उवाच

वदामि शपथं कृत्वा भवत्याश्च शुभानने ।
स्प्रक्ष्यामि मदिरां नाहं यावज्जीवं प्रिये मम ॥७४॥

वह बोला कि हे सुन्दरी ! मैं तेरी शपथ (कसम) करके कहता हूं कि मैं मरण पर्यन्त कभी शराब का स्पर्श भी नहीं करूंगा ॥७४॥

कालस्याननुकूलाश्च चेष्टा विज्ञाय सुन्दरी ।
कृत्वा किञ्चिन्मिषं गत्वा सुष्वाप सुधया सह ॥७५॥

उस सुन्दरी ने जब उसकी समय के विपरीत चेष्टाएं देखीं तो वह कोई बहाना बना कर वहाँ से चली गई और सुधा के साथ सो गई ॥७५॥

गर्भमष्टममासस्य कुक्षौ दधार सुन्दरी ।
पारावारो न चिन्तानामासीत्तस्याश्च योषितः ॥७६॥

उसके पेट में आठवें महीने का गर्भ था। उस नारी की चिन्ताओं का कोई अन्त नहीं था ॥७६॥

प्रथमं प्रातरुत्थाय 'बोतल'मगवेषयत् ।
गोपितं तेन कंथासु निशायां मद्यपायिना ॥७७॥

उस मद्यपायी ने प्रातःकाल उठ कर पहले उस बोतल को ही ढूंढा जो उसने रात के समय गुदड़ियों में छिपाई थी ॥७७॥

वीणाया वादने सर्पो नृत्यति विविधं यथा।
तथानृत्यन्मनस्तस्य विलोक्य 'बोतलं' प्रियम् ॥७८॥

वीणा के बजाने पर जैसे साँप अनेक प्रकार से नाचता है उसी प्रकार उसका मन प्यारी बोतल को देखकर नाचने लगा ॥७८॥

'गटगटेन' सद्यः स रक्तिमं पीतवान्जलम्।
पूर्वेद्युशपथाः सर्वे विलीना मद्यपायिनः ॥७९॥

उसने गट-गट करके शीघ्र ही उस लाल जल को पी लिया। उस मद्यपायी ने पहले दिन जो कसमें खाई थीं वे सब धूल में मिल गईं ॥७९॥

प्रलपन्नेव गेहात्स जगाम भ्रमणाय च।
यष्टिकां भ्रामयन् व्योम्नि चकार विविधाः क्रियाः ॥८०॥

वह प्रलाप करता हुआ भ्रमण के लिए घर से बाहर निकल गया। लाठी को आकाश में घुमाता हुआ वह कई प्रकार की क्रियाएं कर रहा था ॥८०॥

किष्कुचतुःशतं गत्वा पपात भूतलेऽवशः।
कुर्वश् 'चीं चीं' ध्वनिं गृध्रो विष्ठां तस्य मुखेऽकरोत् ॥८१॥

कोई चार सौ हाथ के अन्तर पर जाकर वह विवश हो कर धरती पर गिर पड़ा। एक गीध चीं-चीं करता हुआ आया और उसके मुंह में बीठ कर दी ।।८१।।

द्विहोरानन्तरं प्राप्तश्चैतन्यं मद्यपस्ततः ।
प्रत्याजगाम वेश्म स्वमशौचादिक्रियां विना ।।८२।।

दो घंटे के बाद उस शराबी को होश आई तो वह अशौचादि क्रिया के बिना ही घर को लौट आया ।।८२।।

क्षालितं न मुखं तेन शोधितौ न करौ तथा ।
भोजनं पशुवद् भुक्त्वा निजे कार्ये जगाम सः ।।८३।।

न उसने हाथ धोये और न मुंह धोया। पशु के समान भोजन खाकर अपने काम पर चला गया ।।८३।।

तनयोवाच

पंचाहं कामये मुद्राः सुधा प्रोवाच मातरम् ।
विद्यालयेऽद्य पाकार्थमादेशो गुरुभिः कृतः ।।८४।।

पुत्री सुधा माता से बोली—हे माता जी! मुझे पांच रुपये दो। आज स्कूल में भोजन (खानादारी) के लिए गुरुओं ने मंगवाए हैं ।।८४।।

मंजूषोद्घाटिता मात्रा प्रदातुं पंच मुद्रिकाः ।
अयि सुधे मृतैवाहं नास्ति ममाङ्गुलीयकम् ।।८५।।

माता ने सुधा को पांच रुपये देने के लिए जब संदूक खोला

तो हक्की-बक्की रह गई और बोली ओ सुधा ! मैं मारी गई, मेरी अंगूठी तो इस में है ही नहीं ।।८५।।

सकलान्येव वस्तूनि कृतानि च बहिस्तया ।
कृत्वा गवेषणं श्रान्ता नावाप्तमङ्गुलीयकम् ।।८६।।

उसने सन्दूक की सारी वस्तुओं को बाहर निकाला, खोज करके थक गई परन्तु अंगूठी नहीं मिली ।।८६।।

मातोवाच

सुधे गच्छ विलम्बं न कुरु विद्यालयं प्रति ।
अन्वेषणं करिष्यामि प्रक्ष्यामि पितरं तव ।।८७।।

माता बोली—हे सुधे ! तूं देर मत कर, स्कूल को चली जा । मैं ढूंढ लूंगी, तुम्हारे पिता से भी पूछूंगी ।।८७।।

भोजनार्थं स मध्याह्न आयातः सदनं यदा ।
पृष्टः पत्न्या भवाद्भिः किं दृष्टा कच्चिन्ममोर्मिका ।।८८।।

वह दोपहर के समय जब भोजन करने आया तो पत्नी ने पूछा—आपने मेरी अंगूठी तो नहीं देखी ? ।।८८।।

पतिरुवाच

स्पृशामि ते न मंजूषां न जानामि तवोर्मिकाम् ।
भोजनार्थं यदाऽऽयामि समस्योत्पाद्यते त्वया ।।८९।।

पति बोला—मैं 'तेरे सन्दूक को हाथ लगाता हूं और न

तेरी अंगूठी को जानता हूं, जब मैं भोजन करने आता हूं तब तूं कोई न कोई झंझट मेरे सिर पर खड़ा कर देती है ॥८९॥

खाद्यं प्रेषय तत्रैव नागमिष्यामि ते गृहम् ।
त्वं लागयसि चौर्यं मां नाहं भवामि तस्करः ॥९०॥

तूं मुझे खाना वहीं पर भेज दिया कर, मैं तेरे घर नहीं आऊंगा । तूं मुझे चोरी लगाती है, मैं चोर नहीं हूं ॥९०॥

ननान्दा ते समायाता दिनानि पंच सावसत् ।
कच्चिद्धृत्वा गता सैव स्वकीयं श्वसुरालयम् ॥९१॥

तेरी ननद भी पिछले दिनों पांच दिन रह कर गई है । हो सकता है वही चुरा कर सुसराल ले गई हो ॥९१॥

सैव बाला झटित्येत्य नृत्यन्ती प्राह मातरम् ।
पिता मातर् मया दृष्टश्चोरयँस्तेऽङ्गुलीयकम् ॥९२॥

वही लड़की झटपट नाचती हुई आई और अपनी माता को बोली—माता जी, मैंने पिता को तेरी अंगूठी चुराते हुए देखा था ॥९२॥

वेणीं प्रगृह्य पित्रा सा क्षिप्ता विष्कुचतुष्टयम् ।
हस्तक्षेपं करोषि त्वं सर्वत्रैव स्वभावतः ॥९३॥

पिता ने उस लड़की को गुत से पकड़ा और पटका कर

चार हाथ पर फेंका। तू बड़ी दुष्ट है, बात बात में दखल देना तेरा स्वभाव ही हो गया है ॥९३॥

पत्न्या मनसि शंकाऽभूद् विक्रीतं मद्यहेतवे ।
सुस्वभावा ननान्दा मे कथं चौर्यं करिष्यति ॥९४॥

पत्नी के मन में शंका हो गई कि इसने मद्यपान के हेतु अंगूठी को बेच लिया है। मेरी ननद का स्वभाव तो बहुत अच्छा है, वह चोरी कैसे करेगी ॥९४॥

अवतार्य स्ववासांसि भूषणानि तथैव च ।
धारयति ननान्दा मे स्निह्यति प्राणवन्मयि ॥९५॥

मेरी ननद तो मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्यार करती है। वह अपने वस्त्र-भूषणों को उतार कर मुझे पहना देती है ॥९५॥

भाग्यवती ननान्दा मे पतिर्लब्धो महाजनः ।
गुणवान् सुन्दरश्चास्ति मद्यपः श्यालवन्न सः ॥९६॥

मेरी ननद बड़ी भाग्यवाली है। उसे एक गुणवान् तथा सुन्दर महाजन पति मिला हुआ है। वह साले की तरह शराबी नहीं है ॥९६॥

ननान्दृगृहे

ननान्दा स्वपतिं प्राह गन्तव्यं नगरं प्रति ।
उत्सवो भ्रातृजायाया सीमन्तस्य भविष्यति ॥९७॥

ननद के घर में

ननद अपने पति को बोली कि हम बाजार को चलेंगे। भरजाई का सीमन्त उत्सव आ रहा है ॥९७॥

क्रेष्यामि भूषणं तस्यै वसनानि शुभानि च ।
भावर्या गुणिनी मेऽस्ति सुन्दरी साऽतिसुन्दरी ॥९८॥

मैं उसके लिए भूषण और अच्छे अच्छे वस्त्र खरीदूंगी। मेरी भावज गुणों का भंडार है, वह बहुत ही सुन्दरी है ॥९८॥

टिप्पणी—भारत के कई प्रान्तों में यह प्रथा है कि जब गर्भिणी का आठवां महीना आता है तो बड़ा उत्सव मनाया जाता है। सम्बन्धी लोग गर्भिणी का बहुत आदर सत्कार करते हैं और कई प्रकार की भेंटें उसे देते हैं।

स्निह्यति सा मयात्यन्तं करोति भवदादरम् ।
पृच्छति मां गतां तत्र नावुत्तः कथमागतः ॥९९॥

वह मुझ से बड़ा प्यार करती है। आपका भी बड़ा आदर करती है। जब मैं अकेली जाऊं तो पूछती है कि जीजा जी (ननदोई) क्यों नहीं आए ॥९९॥

आबुत्त उवाच

सत्यवती न संदेहो गुणिनी महिला प्रिये ।
देहि तस्यै सुवस्तूनि भवती यानि दित्सति ॥१००॥

ननदोई अपनी पत्नी को बोला—हे प्रिये ! इस में कोई संदेह

नहीं कि सत्यवतो में बहुत गुण हैं। तुम उसे जो अच्छी से अच्छी वस्तुएं देना चाहती हो, अवश्य दो ॥१००॥

दंपती जग्मतुर्हाटं क्रेतुं वस्तूनि 'चावतः' ।
विक्रेतुर्भूषणानां तौ प्रथममापणं गतौ ॥१०१॥

पति-पत्नी वस्तुएं खरीदने के लिए बड़े चाव से बाजार को गये। पहले वह सराफ की दुकान पर गये ॥१०१॥

सुन्दरी प्राह भर्तारं क्रेतुमिच्छामि हे पते ।
निर्मितं हाटकेनेदं सुन्दरमंगुलीयकम् ॥१०२॥

पत्नी ने पति को कहा कि हे पतिदेव ! जो यह सामने सोने की सुन्दर अंगूठी दिखाई दे रहो है मैं इसको खरीदना चाहती हूं ॥१०२॥

लाभं विंशतिमुद्राणामादाय दत्तवानसौ ।
'सराफो' धनियारामस्ताभ्यां तदंगुलीयकम् ॥१०३॥

धनियाराम सराफ ने बीस रुपये का लाभ कमा कर वह अंगूठी उन को बेच दी ॥१०३॥

क्रीत्वा वस्तूनि सर्वाणि समायातौ गृहं प्रति ।
सीमन्तः सत्यवत्याश्च द्वितीयेऽह्नि समागतः ॥१०४॥

वे सब वस्तुएं खरीद कर अपने घर चले आये। अब दूसरे दिन सत्यवतो का सीमन्त उत्सव भी आ गया ॥१०४॥

पुनर्मद्यपगृहे

अतिथयः समायाता ननान्दापि समागता ।
"धूमधामो" गृहे तस्य मद्यपस्य व्यलोक्यत ॥१०५॥

उस शराबी के अतिथि आ गये, सत्यवती की ननद भी आ गई । उसके घर में धूमधाम दिखाई देने लगी ॥१०५॥

कुलाचारान् स्त्रियोऽकुर्वन् गायन्त्यो मंगलानि ताः ।
सर्वे सम्बन्धिनस्तत्र व्यापृताः स्वस्वकर्मणि ॥१०६॥

मंगलगीतों को गाती हुई स्त्रियां कुलाचार करने लगीं । सम्बन्धी भी वहां अपने-अपने काम में लगे हुए थे ॥१०६॥

सुधाऽपि कार्यलग्नाऽऽसीद् भ्राम्यन्ती बहिरन्तरम् ।
ज्येष्ठापत्या गृहे तस्य निपुणा कार्यसाधने ॥१०७॥

सुधा भी बाहर—अन्दर घूमती हुई काम में व्यस्त थी । घर में सब से बड़ी संतान वह ही थी और काम करने में भी बड़ी चतुर थी ॥१०७॥

क्रमशः ललनाश्चक्रुः सत्यवत्याः समादरम् ।
उपहारान् ददुस्तस्यै महार्घान् विविधाँस्तथा ॥१०८॥

बारी बारी से सब स्त्रियां सत्यवती का आदर कर रही थीं । उसको अनेक प्रकार की कीमती भेंटें दे रही थीं ॥१०८॥

अतिप्रेम्णा ननान्दासौ तस्या अनामिकां करे ।
अधारयद् गृहीत्वा तद्रुचिरमंगुलीयकम् ॥१०९॥

ननद ने बड़े प्यार से उसकी अनामिका (अंगुली) को अपने हाथ से पकड़ा और वह सुँदर अंगूठी पहना दी ॥१०९॥

यदैवासौ गता कक्षात्सत्यवती समैक्षत ।
उर्मिकामवधानेन भवत्येषा न सैव किम् ? ॥११०॥

ज्यों ही ननद कमरे से बाहर गयी, सत्यवती बड़े ध्यान से अंगूठी को देखने लगी । वह मन में सोचने लगी क्या यह वही अंगूठी नहीं है ? ॥११०॥

अपीडयदयं प्रश्नः सत्यवतीं मुहुर्मुहुः ।
अनयोरुभयोर्मध्ये भवति कश्च तस्करः ॥१११॥

सत्यवती को यह प्रश्न बार-बार सताने लगा कि इन दोनों (भाई-बहन) के बीच में चोर कौन है ॥१११॥

वस्तूनि पाकशालार्थं क्रेतुं स नगरीं ययौ ।
मद्यपायी गतस्तत्र प्राविशन्मदिरालयम् ॥११२॥

वह शराबी रसोई घर के लिए कुछ वस्तुएं खरीदने के हेतु नगर को गया तो वह शराब की दुकान में घुस गया ॥११२॥

समानेयानि वस्तूनि विस्मृतवानसौ क्षणात् ।
प्रलपन् स्खलनं कुर्वन् प्रत्यागच्छद् गृहं प्रति ॥११३॥

वह घर को लाई जाने वाली वस्तुएं पल भर में भूल गया और फिर बकवास करता हुआ तथा लड़खड़ाता हुआ घर को लौटने लगा ॥११३॥

पतितो मूर्छितो मार्गे केनापि नैव लक्षितः ।
प्रतीक्षन्ते गृहे सर्वे विलम्बस्तेन किं कृतः ॥११४॥

वह चेतनाहीन होकर रास्ते में गिर गया, किसी ने उसको देखा नहीं। घर पर सब उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि उसने देर क्यों कर दी ॥११४॥

धावन्ती बालिका सैव मातरं प्राह सत्वरम् ।
ओ मातः, पश्य तातस्य मुखे काकेन मूत्रितम् ॥११५॥

वही लड़की शीघ्रता से दौड़ती हुई आई और बोली—ओ माता! देख देख, पिता के मुंह में कौए ने पेशाब कर दिया ॥११५॥

जहसुर्ललनाः सर्वा ग्लानिं सत्यवती ययौ ।
कुकार्यं कुरुते भर्ता पत्नी लज्जां च गच्छति ॥११६॥

लड़की की उस बात को सुन कर सब स्त्रियां हंसने लगीं

तो सत्यवती को बड़ी ग्लानि आई। पति कुकर्म करता है और बेचारी पत्नी को लज्जित होना पड़ता है ॥११६॥

जग्मुः संबंधिनो गेहान् समाप्त उत्सवे यदा ।
आसीत्तदा गृहे तस्मिन्नौदासीन्यप्रशासनम् ॥११७॥

उत्सव के समाप्त होने पर जब सब संबंधी अपने-अपने घरों को चले गये तो उस घर में उदासीनता का राज हो गया ॥११७॥

चित्ते सत्यवती दध्यौ मातरं स्वर्गगामिनीम् ।
अहं त्वया विना मातः पतिता दुःखसागरे ॥११८॥

सत्यवती स्वर्गवासिनी माता का ध्यान करती हुई अपने मन में सोचने लगीं कि हे माता ! मैं आज तेरे बिना दुःख के सागर में डूब रही हूं ॥११८॥

प्राणधराऽभविष्यन्मे जननी भूतले यदि ।
अगमिष्यं प्रसूत्यै तां न काऽप्यत्र सहायका ॥११९॥

आज मेरी माता यदि संसार में जीवित होती तो मैं अपना प्रसवकाल काटने के लिए उसके पास चली जाती । यहाँ तो मेरी कोई भी सहायक नहीं है। ॥११९॥

यापयिष्ये कथं कालं मद्यपस्य निकेतने ।
अनभिज्ञा सुधा मेऽस्ति कथं कार्यं चलिष्यति ॥१२०॥

मैं इस शराबी के घर में अपना समय कैसे बिताऊंगी। मेरी सुधा अभी अनजान है; काम कैसे चलेगा ॥१२०॥

प्राणप्रिया ननान्दा मे करोति प्रेम सा मयि।
मद्यदुर्व्यसनं दृष्ट्वा स्थातुं नेहते परम् ॥१२१॥

मेरी ननद मुझ से बड़ा प्यार करती है परन्तु इसके मद्यदुर्व्यसन को देखकर वह यहां ठहरना नहीं चाहती है ॥१२१॥

स्वसृदुहितृपत्नीषु न भेदं वेत्ति मद्यपः।
अतश्च सकला एता बिभ्यति शीधुपायिनः ॥१२२॥

एक शराबी बहन, पुत्री तथा पत्नी में कोई भेद नहीं करता है। इसीलिए ये सब मद्यपायी से डरती हैं ॥१२२॥

सुधोवाच

दुःस्वप्नोऽद्य मया दृष्टो रात्रौ मातर् भयंकरः।
प्रातरेव सुधा प्राह जननीं प्रसवोन्मुखाम् ॥१२३॥

सुधा प्रातःकाल ही समीप प्रसव वाली अपनी माता को बोली कि हे माता जी! आज रात को मुझे बड़ा भयानक स्वप्न हुआ है ॥१२३॥

मातोवाच

आयान्ति तनये स्वप्ना मनोविकारकारणात् ।
त्वया पुत्रि न भेतव्यं बाला त्वमसि शिक्षिता ॥१२४॥

माता बोली—हे पुत्रि, मन में कोई विकार होने के कारण ही स्वप्न आते हैं, तुम्हें डरना नहीं चाहिये । तूं तो पढ़ी—लिखी लड़की है ॥१२४॥

अह्नः कार्यक्रमः सर्वः यथापूर्वञ्च निर्गतः ।
सुताऽहः पाठशालायां सत्या निन्ये गृहे तथा ॥१२५॥

दिन का कार्यक्रम यथापूर्व निकल गया । पुत्री (सुधा) ने अपना दिन पाठशाला में विताया और सत्या ने घर पर ॥१२५॥

विद्यालयात्सुधागत्य मातरं प्राह सादरम् ।
श्वो नैवाहं गमिष्यामि जननि शिक्षणालयम् ॥१२६॥

सुधा जब स्कूल से घर आई तो उसने आदर के साथ माता से कहा कि माता जी ! मैं कल स्कूल नहीं जाऊंगी ॥१२६॥

मातोवाच

विद्यते श्वोऽवकाशः किं पुत्रि विद्यालये वद ।
ज्ञातुमिच्छाम्यहं त्वत्तः कथं त्वं न गमिष्यासि ॥१२७॥

माता बोली—हे पुत्री! क्या कल स्कूल में छुट्टी है? मुझे बताओ कि तुम क्यों नहीं जाओगी ॥१२७॥

सुधोवाच

विद्यालयेऽवकाशो न शब्दा मे निःसृता मुखात् ।
अज्ञानादेव मे मातर्नाहं जानामि कारणम् ॥१२८॥

सुधा बोली—हे माता जी! स्कूल में छुट्टी नहीं है, मेरे मुंह से अनजाने ही ये शब्द निकल गये, मैं कारण नहीं जानती हूं। १२८॥

अकस्मादुक्तशब्दानामम्बार्थं व्यावृणोदिदम् ।
अनुमिनोमि रात्रौ मे प्रसवोऽद्य भविष्यति ॥१२९॥

सुधा के मुंह से अचानक निकले हुए शब्दों का माता ने यह अर्थ लगाया कि मेरे अनुमान में आज रात को मैं प्रसूता हो जाऊंगी ॥१२९॥

मद्यप आह

ओ विट्टो, कुत्र माता ते शीघ्रमाह्वय तामिह ।
द्रुतमहं गमिष्यामि चायपात्रं समानय ॥१३०॥

शराबी बोला—ओ विट्टु, तेरी मां कहां गई, उस को जल्दी यहां बुला। मैं शीघ्र ही जाने वाला हूं, एक चाय का कप ले आ ॥१३०॥

उपविशति पर्यङ्क उत्तिष्ठति शनैः शनैः ।
भूयो भूयः करोत्येवं व्यायामं बालको यथा ॥१३१॥

वह पलंग पर बैठता है और धीरे-धीरे उठता है। इस प्रकार वह बार बार करता है मानो कोई विद्यार्थी व्यायाम कर रहा हो ॥१३१॥

अपनयति 'कोटं' स परिधत्ते पुनः पुनः ।
'बटनानि' च 'पैंटस्य' पिधत्ते मुंचते तथा ॥१३२॥

वह बार बार कोट को उतारता है और पहनता है, पैंट के बटनों को कभी खोलता है कभी लगाता है ॥१३२॥

कराभ्यां वादयत्यूरू 'ह्विसलं' च करोति सः ।
प्रकरोति चपेटं च शनैः शनैः कपोलयोः ॥१३३॥

वह हाथों से पट्टों को बजाता है, सीटी बजाता है और और अपने गालों पर हल्की हल्की चपेड़ें लगाता है ॥१३३॥

यष्टिकां सुषिरं कृत्वा करोत्यसत्यवादनम् ।
कल्पयित्वा च तां ढक्कां वादयतीव नापितः ॥१३४॥

वह लाठी को बांसुरी समझ कर झूठ ही उस को बजाता है और बीच बीच में उस (बांसुरी) में तुरही की कल्पना

करके नाई की तरह बजाता है।

टिप्पणी—विवाह-शादियों में नरसिंगा (तुरही) बजाने का काम नाई ही करता है ॥१३४॥

एकस्यामेव जंघायां भारं कृत्वा स कूर्दते ।
वशवर्ती सुरायाश्च नात्मानं बोधते नरः ॥१३५॥

वह एक टांग के भार पर नाचता है। मनुष्य जब शराब के वश में हो जाता है तो उसे अपने आप का ज्ञान नहीं रहता ॥१३५॥

'धा धा धा धा' तथा 'हो हो' प्रलापं कुरुते बहु ।
कोलाहलेन तस्यैवं क्लिश्यन्ति प्रतिवासिनः ॥१३६॥

वह धा धा तथा हो हो करता हुआ प्रलाप करता है, उसके कोलाहल से पड़ोस के लोग भी दुःखी हो जाते हैं ॥१३६॥

खल्वाट उच्चनासोऽसौ कायेन मध्यमस्तथा ।
लघुपादोऽथ पीनांसः स्फटिकोपमलोचनः ॥१३७॥

उस का सिर गंजा है, नाक ऊंची है, कद मंझोला है, कंधे स्थूल हैं और नेत्र बिल्लौर के समान हैं ॥१३७॥

पटुरासीन्निजे कार्ये बुद्धिर्मद्येन नाशिता ।
विधिः सृजति पुष्पेषु कंटकान् दुःखदायिनः ॥१३८॥

वह अपने काम में बड़ा चतुर था परन्तु मद्य से उसकी

बुद्धि मारी गयी थी। विधाता फूलों में दुःखदायी कांटे भी लगा देता है ॥१३८॥

सुधां सत्यवती प्राह चायमस्मै प्रदेहि तत् ।
आयाहि त्वरितं पुत्रि पास्यावस्तदनन्तरम् ॥१३९॥

सत्यवती सुधा को बोली कि यह चाय का कप इसे दे आ, जल्दी कर, फिर हम भी पीएंगी ॥१३९॥

सत्यामनसि यो भारो गजो वोढुं न तं क्षमः ।
मनोभारे न साहाय्यं बाहिर्भारे भवेद्यथा ॥१४०॥

सत्या के मन पर इतना बोझ था कि उसे हाथी भी नहीं उठा सकता था। मन का भार उठाने में कोई सहायता भी नहीं कर सकता जैसे बाहर का भार उठाने में होता है ॥१४०॥

सुधा यथैव संप्राप्ता समीपे जनकस्य च ।
सत्याऽशृणुत चीत्कारं तनयाया भयावहम् ॥१४१॥

ज्यों ही सुधा पिता के पास पहुंची सत्या ने पुत्री की बड़े जोर की चीख सुनी ॥१४१॥

हा मद्यपेन पापेन संस्पृष्टा दुहिता निजा ।
माता दधाव तां द्रष्टुं विद्युद्गत्या ससंभ्रमम् ॥१४२॥

हाय ! उस पापी शराबी ने पुत्री को छू लिया। माता बड़ी घबराहट के साथ दौड़ती हुई उसे देखने गई ॥१४२॥

मार्योवाच

धिग् धिग् त्वामीदृशं पापं जातस्त्वं मे कथं पतिः ।
मद्येन नाशिता बुद्धिः सर्वनाशो भविष्यति ॥१४३॥

पत्नी बोली कि तुझ पापी को धिक्कार है, तुम मेरे पति कैसे बन गए ? मद्य ने तुम्हारी बुद्धि नष्ट कर दी, अब हमारा सर्वनाश होने में कोई देर नहीं है ॥१४३॥

गृहीत्वा पादुकां सत्या तमैच्छत्सेवितुं पतिम् ।
कर्णौ यावत्प्रणीयैव विरेमे साहसात्परम् ॥१४४॥

सत्या ने जूती से उसकी सेवा करनी चाही परन्तु अभी कान तक ही ले गई थी कि इस साहस को उसने त्याग दिया ॥१४४॥

सुधायाश्च शरीरस्य रुधिरं शोषतां गतम् ।
श्वेता कार्पासवज्जाता कंपमाना मुहुर्मुहुः ॥१४५॥

सुधा के शरीर का खून सूख गया, वह कपास की तरह सफेद पड़ गई और बार-बार कांपने लगी ॥१४५॥

जनन्याऽऽश्वासिता किञ्चिदसान्त्वयन्मनो निजम् ।
सखीभिः सह पानीयं समानेतुं जगाम सा ॥१४६॥

माता के आश्वासन पर सुधा ने अपने मन को समझा

लिया। वह पानी लाने के लिए सहेलियों के साथ कूएं पर चली गई ॥१४६'।

कपोलं लभमानैका सुधायाः सख्युवाच ताम् ।
अयि भवस्युदासीना कारणं न प्रतीयते ॥१४७॥

सुधा की गाल से हाथ लगाती हुई एक सखी बोली—अरी सुधे ! आज तू उदास क्यों है, कारण तो बता ॥१४७॥

सकला आलयस्तस्या वारंवारं च येतिरे ।
वक्तुमेकं परं शब्दं विवृतौ नाधरौ तया ॥१४८॥

सब सहेलियों ने बारी-बारी से प्रयत्न किया परन्तु सुधा ने एक शब्द बोलने के लिए भी होंठ नहीं खोले ॥१४८॥

हा सुधा पतिता कूपे न जाने स्खलिता कथम् ।
ज्ञात्वा स्वयं पपातासौ पतिताऽज्ञानतोऽथवा ॥१४९॥

हाय ! सुधा तो कूएं में गिर गई, पता नहीं वह कैसे खिसक गई। वह जान बूझ स्वयं गिर गई या अज्ञान से ऐसा हुआ, यह प्रतीत नहीं ॥१४९॥

आलयो रुरुदुः सर्वा हाहाकारो महान् श्रुतः ।
तासां निशम्य चीत्कारान् पाषाणा द्रवतां गताः ॥१५०॥

सारी सहेलियां रोने लगीं, हाहाकार मच गया। उनकी चीखों को सुनकर पत्थर भी पिघलने लगे ॥१५०॥

अस्ताचलं च गच्छद्भिर्भास्करस्य गभस्तिभिः ।
सत्या संसूचिताऽभागा सुधा ते नागमिष्यति ॥१५१॥

अस्ताचल को जाती हुई सूर्य की किरणों ने सत्या को संदेश दे दिया कि अब तेरी सुधा घर नहीं आएगी ॥१५१॥

एतेन वज्रपातेन मूर्छां सत्यवती ययौ ।
दन्तपंक्तिस्तथा बद्धा न शक्यं सलिलं मुखे ॥१५२॥

सत्यवती इस वज्रपात से मूर्छित हो गई। उसके दांत ऐसे जुड़ गये कि पानी की बून्द भी मुँह में न जा सकी ॥१५२॥

वैद्यास्तत्र समाहूता धात्र्यश्चापि समागताः ।
उभयथा कृतो यत्नो रोगस्य प्रसवस्य च ॥१५३॥

वहां वैद्य बुलाये गये और दाइयां भी आईं। दोनों तरह की चिकित्सा की गई, रोग की भी और प्रसव की भी ॥१५३॥

नारीणां सकलाः यत्ना गता निष्फलतां निशि ।
चैतन्यं नाययौ सत्या दशानिष्टा क्षणं क्षणम् ॥१५४॥

स्त्रियों ने रात भर बहुतेरे प्रयत्न किये परन्तु सब निष्फल रहे। सत्यवती होश में नहीं आई। उसकी दशा पल पल में बिगड़ती ही चली गयी ॥१५४॥

चिताद्वयं श्मशाने च प्रभाते निर्मितं जनैः।
एकस्यां तनयान्यस्यां सत्या शयिष्यते स्वयम् ॥१५५॥

प्रातःकाल लोगों ने श्मशान में दो चिताएं इकट्ठी ही बनाईं। एक पर पुत्री लेटेगी और दूसरी पर सत्यवती स्वयं विश्राम करेगी ॥१५५॥

चितायां स्थापयामासुः सत्याया बान्धवाः शवम्।
पतिः करोतु गर्भिण्याः कुक्षिच्छेदं च सांप्रतम् ॥१५६॥

बन्धुओं ने सत्या के शव को चिता पर रख कर कहा कि अब पति इस के पेट को चीर कर बच्चे को निकाले ॥१५६॥

टिप्पणी—गर्भ पांच महीने का होने के बाद यदि गर्भिणी की मृत्यु हो जाय तो उसके पेट से बच्चे को निकाल घर उसका दाहसंस्कार किया जाता है।

अन्वेषयन्ति ते सर्वे गुलजारमितस्ततः।
श्रान्ता अन्वेषणं कृत्वा मद्यपायी न लभ्यते ॥१५७॥

वे सब गुलजार को इधर-उधर ढूंढ़ते हैं। खोज करते करते वे थक गये परन्तु वह शराबी कहीं भी नहीं मिला ॥१५७॥

एको वृद्धस्ततः प्राह गुलजारोऽवलोकितः।
मधुना मूर्छितस्तत्र वहन् वक्षसि "बोतलम्" ॥१५८॥

एक बूढ़ा बोला—अरे! गुलजार को मैंने देखा है। वह मद्य से बेहोश होकर बोतल को छाती पर रखे हुए वहां पड़ा है ॥१५८॥

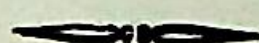
इति पंचमः सर्गः समाप्तः



अथ षष्ठः सर्गः

दण्डादण्डि ततोऽभवत्

Then they came to sticks.



श्रेष्ठिन आत्मजस्याथ विवाहाहः समागतम् ।
उत्सवा विविधास्तत्र भवन्ति स्म क्षणे क्षणे ॥१॥

अब साहूकार के पुत्र का विवाह का दिन आ गया। वहां पल पल में कई प्रकार के उत्सव मनाये जा रहे थे ॥१॥

कश्चिद् वदति कुर्वेवमन्यो ब्रूते तदन्यथा ।
एवं सम्मतिभेदाश्च जायन्ते प्रतिकर्मणि ॥२॥

कोई कहता है इस काम को ऐसा करो तो दूसरा कहता है

नहीं, इस तरह नहीं; यह काम इस प्रकार होना चाहिये। इस प्रकार हर काम में सम्मति-भेद चल रहा है ॥२॥

प्रत्येकः कुरुते यत्नं दर्शयितुं स्वकौशलम् ।
द्वितीयः प्रथमं ब्रूते न वेत्सि कार्यपद्धतिम् ॥३॥

प्रत्येक मनुष्य अपनी चातुरी दिखाने का प्रयत्न कर रहा है। दूसरा पहले को कहता है कि तुम्हें तो काम करने का ढंग ही नहीं आता ॥३॥

पाचका अभवन् व्यस्ताः शोभने पाककर्मणि ।
कर्तुं स्वादूनि भोज्यानि चिन्त्यन्ते योजना धिया ॥४॥

रसोइये रसोई बनाने के काम में व्यस्त हैं। खाद्य पदार्थों को स्वादु बनाने के लिए बुद्धि से योजनाएं सोची जा रही हैं ॥४॥

प्रधानपाचकस्तत्र प्रतीयते स्म भीमवत् ।
अकरोत्पाककार्यं यो विराटस्य गृहे वसन् ॥५॥

मुख्य रसोइया उस भीम के समान प्रतीत हो रहा था जिसने अज्ञातवास में विराट राजा के घर रहते हुए रसोई का काम किया था ॥५॥

उदरं तुन्दिलं तस्य भुजे पीने तथाऽऽयते ।
विशालं मस्तकं चाथ चरणौ गजपादवत् ॥६॥

उसका पेट बहुत बड़ा था, उसकी भुजाएं लम्बी और मोटी थीं, माथा उसका चौड़ा था और पैर हाथी के पैरों के समान मोटे थे ॥६॥

दिशति पाचकानन्यान् पाकानां सकलां विधिम् ।
पालयन्ति च तस्याज्ञां ते सर्वे विनयान्विताः ॥७॥

वह दूसरे रसोइयों को पकवानों के सब तरीके बताता है वह सब नम्र हो कर उसकी आज्ञा का पालन करते हैं ॥७॥

घर्षणं पिठरे दर्वी कृत्वा वदति भो जनाः ।
विलम्बो भोजने नास्ति सज्जा भवत सांप्रतम् ॥८॥

कड़छी देगची में रगड़ती हुई कहती है कि अरे लोगो ! अब भोजन में देर नहीं है, तुम तैयार हो जाओ ॥८॥

पाकालये लवंगानां किंजल्कस्य तथैव च ।
मनो हरति सर्वेषां सुगन्धो भोजनार्थिनाम् ॥९॥

रसोईघर में उड़ रही लौंग और केसर की सुगंध भोजन की कामना वाले लोगों के मन को हर रही है ॥९॥

एकतश्च स्थिता वृद्धा हुक्काचुम्बनपेशलाः ।
वार्ताः प्राचीनकालस्य कुर्वन्ति स्म परस्परम् ॥१०॥

एक ओर बैठे हुए, हुक्का पीने में चतुर बूढ़े आपस में प्राचीन काल की बातें कर रहे थे ॥१०॥

कश्चिद् ब्रूते महार्घाणि वस्तूनि सन्ति सांप्रतम् ।
आनन्दः पूर्वकालस्य कालेन भक्षितः कथम् ॥११॥

कोई कहता है कि आजकल तो चीजें बहुत महंगी हो गईं हैं। पहले समय के आनन्द को काल ने कैसे खा लिया ॥११॥

कश्चिद् वदति मद्यस्य साम्राज्यं वर्ततेऽधुना ।
चिह्नं विनाशकालस्य प्रत्यक्षमेव वर्तते ॥१२॥

कोई कहता है कि आज तो शराब का ही बोलबाला है। विनाशकाल का निशान तो सामने ही दिखाई दे रहा है ॥१२॥

एको वृद्धो द्रुतं प्राह नेहेदं किं भविष्यति ? ।
पूर्वमेव प्रबन्धोऽयं युवभिरुद्धतैः कृतः ॥१३॥

एक बूढा झट ही बोला तो क्या यहां ऐसा नहीं होगा ? उद्दण्ड छोकरों ने यह प्रबन्ध तो पहले ही कर रखा है ॥१३॥

लखपतोऽतिभद्रोऽस्ति शीलस्वभावसंयुतः ।
मदिराया घृणा तस्य परमद्य शृणोति कः ॥१४॥

लखपत शील स्वभाव वाला बहुत सज्जन आदमी है, उसे शराब आदि से घृणा है। परन्तु भले आदमी की बात आज सुनता ही कौन है ॥१४॥

मदिरायाः प्रयोगो न भूतो भूते कदाचन ।
उत्सवेषु विवाहादेर् व्याधिरेषाऽऽगता कुतः ॥१५॥

भूतकाल में विवाह आदि के उत्सवों में मदिरा का कभी प्रयोग नहीं होता था। प्रतीत नहीं, अब यह व्याधि कहां से आ गई ॥१५॥

कश्चिद् वदति नाशो नः सभ्यतायाः समागतः ।
तरुण्यो युवभिः सार्धं नृत्यन्ति शुभकर्मसु ॥१६॥

कोई कहता है कि हमारी सभ्यता का नाश ही होने लग पड़ा। शुभ कामों में यह युवतियां युवा लड़कों के साथ नाचती हैं ॥१६॥

कश्चिद् वदति पश्यन्तु विशन्ति भोजनालयम् ।
उपानद्भिः सहैवैते भोक्ष्यामो भोजनं कथम् ॥१७॥

कोई कहता है कि देखो, ये लोग जूतियों के साथ ही रसोई-

घर में प्रवेश कर जाते हैं, हम भोजन भी कैसे खाएंगे ॥१७॥

कश्चिद् वदति पश्यन्तु वेशभूषां च योषिताम् ।
कथं भ्रमन्ति मार्गेषु धारयित्वाऽर्धचोलिकाः ॥१८॥

कोई कहता है कि इन स्त्रियों की वेशभूषा को तो देखो। ये आधो चोलियां पहन कर किस प्रकार रास्ते में भ्रमण करती हैं ॥१८॥

पूर्णावरणमङ्गानामेताभिः क्रियते न हि ।
भूषां प्रदर्शयन्त्येवं यथास्ति प्रतियोगिता ॥१९॥

ये अपने अंगो को पूरी तरह से ढांपती नहीं है, इस प्रकार साज-सज्जा दिखाती हैं जैसे कोई प्रतियोगिता में भाग लेने की बात हो ॥१९॥

अस्थिचर्ममयं देहमावृणोति शतेन यः ।
सहस्रेणापरो यश्च को भेदस्तत्र वर्तते ॥२०॥

यह शरीर हड्डियों और चमड़ो से बना हुआ है। कोई इस शरीर को सौ से ढांपता है तो कोई हजार से। इस में भला क्या भेद है ? अर्थात् शरीर तो वही रहता है, वेषभूषा से उस में कोई अन्तर नहीं आ जाता ॥२०॥

प्रदर्शनाय कायो न साधनायै भवत्ययम् ।
यदास्ति भंगुरं वस्तु भूषया किं प्रयोजनम् ॥२१॥

यह शरीर प्रदर्शन के लिये नहीं, प्रत्युत साधना के लिये है। जो वस्तु नाशशील है उसको सजाने से क्या लाभ है॥२१॥

क्षंस्यते भारतीया न कदापि सभ्यता किल।
राष्ट्रीयतासुरक्षायां भवत्येषा सहायका॥२२॥

भारतवर्ष की सभ्यता इन को कभी क्षमा नहीं करेगी। राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए यह सभ्यता भी सहायक होती है॥२२॥

समाः स्वाधीनतायाश्च गच्छन्ति हि यथा यथा।
जहति सभ्यतामेते भारतीयास्तथा तथा॥२३॥

जैसे-जैसे स्वाधीनता के वर्ष बीत रहे हैं वैसे-वैसे ये भारत-वासी अपनी सभ्यता को छोड़ रहे हैं॥२३॥

ढोलकं वादयन्ति स्म बाला नृत्यपरायणाः।
तासां नूपुरशब्दैश्च प्रांगणं मुखरायितम्॥२४॥

लड़कियां ढोलक बजा रही थीं। उन के नूपुरों की झंकार से आंगन शब्दायमान हो रहा था॥२४॥

अपरा महिलास्तत्रागायन् गीतानि सुस्वरम्।
मध्ये मध्ये तथा गालीरगायँस्ता यथाक्रमम्॥२५॥

दूसरी स्त्रियां भी मीठे गीत गा रही थीं। बीच बीच में गालियां भी चल रहीं थी॥२५॥

मातुलानी वयस्यासौ तथैव जननीस्वसा ।
गालीनां लक्ष्य आस्तां च महिलानां तदुत्सवे ॥२६॥

उस उत्सव में स्त्रियाँ वर की मामी और मासी को ही विशेष करके गालियां गा रही थीं ॥२६॥

कालोचितं महत्त्वं स पुरोहितोऽप्यसाधयत् ।
आदेशं यजमानेभ्यो ददाति शासको यथा ॥२७॥

पुरोहित भी समय के अनुसार अपने महत्व को सिद्ध कर रहा था। वह यजमानों को इस प्रकार आज्ञा करता कि मानों कोई राजा हो ॥२७।'

वरमाताऽतिपीनाऽऽसीद् भूमिं द्रष्टुं शशाक न ।
साहाय्येनैव सोत्थातुं पारयति स्म नान्यथा ॥२८॥

वर की माता इतनी मोटी थी कि वह भूमि की ओर देख भी नहीं सकती थी। वह दूसरे की सहायता से ही उठ सकती थी ॥२८॥

आज्ञां पुरोहितस्यैवं स्वसारोऽपालयन् गृहे ।
अहं पूर्वमहं पूर्वं स्पर्धया कार्यवाहकाः ॥२९॥

इसलिए घर में वर की बहनें ही पुरोहित की आज्ञा का पालन कर रही थीं। वे स्पर्धा से एक दूसरी से पहले काम करने के लिए दौड़ रही थीं ॥२९॥

वध्वै यानि च वस्त्राणि भूषणानि तथैव च।
आगतान् दर्शयित्वा ता हर्षं च भेजिरे परम् ॥३०॥

वधू के लिए जो वस्त्र-भूषण तैयार किये गये थे वह उन्हें आने वाले लोगों को दिखा कर बड़ी प्रसन्न हो रही थीं ॥३०॥

पुरोहित उवाच

त्वर्यतां त्वर्यतां कच्चिल्लग्नवेला न चोत्क्रमेत्।
प्रयाणमस्ति कर्तव्यं पूर्वमेव द्विवादनात् ॥३१॥

पुरोहित बोला कि जल्दी-जल्दी करो, कहीं लग्न का समय न बीत जाय। दो बजे से पहले हमें यहां से चलना होगा॥३१॥

युवानस्ताशखेलायामभवन्नेकमानसाः ।
यदायाति जिह्वायामवदंस्ते निरंकुशम् ॥३२॥

युवक बड़ी लगन के साथ ताश खेल रहे थे। उनकी जीभ में जो कुछ आता था, बेरोकटोक बोल रहे थे ।३२॥

भ्रमति स्म वरश्चापि यत्र तत्र मनोहरः ।
मयूरपत्रसंयुक्तं शोभते कंकणं करे ॥३३॥

मनोहर वर भी इधर-उधर घूम रहा था, उसके हाथ में मोरपंख वाला कंकण शोभा दे रहा था ।।३३॥

अबोधयन् स्वसारस्तं श्यालीनामग्रतः कुरु ।
एवमेवं च हे भ्रातः कच्चित्स्यान्न पराजयः ॥३४॥

बहनें उसे समझा रही थीं कि हे भाई ! सालियों के आगे

ऐसे-ऐसे करना, कहीं तुम्हारी हार न हो ॥३४॥

छन्दांसि भाषितुं श्याल्यो बाधिष्यन्ते पुनः पुनः ।
ब्रूया नानुचितं किञ्चित् सावधानतया शृणु ॥३५॥

हे भाई ! सालियां छन्द बोलने के लिये तुम्हें बार-बार मजबूर करेंगी। तुम कोई अनुचित बात न कहना, हमारी बात को सावधान होकर सुन लो ॥३५॥

लवंगानां तथैलानां संग्रहं कुरु 'पौकटे' ।
याचिष्यन्ति यदि श्याल्यो भ्रातस्त्वं किं प्रदास्यसि ॥३६॥

लवंगाः केवलं देया नैलास्ताभ्यः कदाचन ।
करिष्यन्त्युपहासं ता अन्यथा ते सहोदर ॥३७॥

अपनी जेब में लौंग तथा इलायची डाल लेना। यदि सालियां तुम से मांगेंगी तो हे भाई ! तुम उन्हें क्या दोगे ? देखो हम तुम्हें बताती हैं कि आपने उन्हें लौंग ही देना, नहीं तो वे तुम्हारा उपहास करेंगी ॥३६॥३७॥

प्रक्ष्यन्ति भगिनीनाम मातुर्नाम तथैव च ।
न वाच्यं भवता किञ्चित्परिहासोऽन्यथा भवेत् ॥३८॥

वह तुम से बहन का नाम पूछेंगी और मां का नाम भी पूछेंगी तो तुमने मुँह से कुछ भी नहीं बोलना नहीं तो वे तुम्हारा मजाक उडाएंगी ॥३८॥

शुन्धति मुकुटं काचिद् दुकूलेन करोति च ।
वराय पवनं काचित्तिलकं कुरुतेऽपरा ॥३९॥

सूत्राणि मुकुटस्यैका विश्लिष्टानि विमुंचति ।
रेखास्तथैव वस्त्राणामन्या दूरीकरोति च ॥४०॥

कोई बहन उस के मुकुट को साफ कर रही है, कोई दुपट्टे से उसे हवा कर रही है, कोई तिलक लगा रही है, कोई मुकुट के उलझे हुए धागों को छुड़ा रही है और कोई वस्त्रों की सिलवटों को दूर कर रही है ॥३९॥४०॥

स्वसार ऊचुः

भ्रातरादाय भावर्यां शीघ्रमेहि गृहं प्रति ।
द्रक्ष्यामो वदनं तस्याः पूर्णचन्द्रनिभं वयम् ॥४१॥

दधि च पाययिष्यामस्तां वयमागतामिह ।
दिवसस्यान्तरं विद्मः कल्पतुल्यं सहोदर ॥४२॥

बहनें बोलीं कि हे भाई ! भावज को लेकर जल्दी घर आओ, हम पूर्ण चन्द्रमा के समान उस के मुखड़े को देखेंगी। उसे यहां आते ही हम दही पिलाएंगी। हमें एक दिन का अन्तर एक युग के बराबर प्रतीत हो रहा है ॥४१॥४२॥

नेत्रयोरञ्जनं चक्रे भावर्या हंसगामिनी ।
उपहारं ददौ तस्यै वरो मुद्रासहस्रकम् ॥४३॥

फिर हंस की गति के समान गति वाली भावज आई और

उसने वर की आंखों में काजल लगाया। वर ने उसे एक हजार रुपया भेंट में दिया ॥४३॥

भावा मातुं न शक्याश्च वरस्य मनसोऽभवन् ।
जानाति केवलं स्थित्वा तस्मिन् सिंहासने जनः ॥४४॥

उस समय वर के मन में जो भाव उठ रहे थे उनका अनुमान लगाना कठिन था। इस का अनुमान वही लगा सकता है जो उस सिंहासन पर बैठता है ॥४४॥

सर्वे एव कुलाचारा यदा संपूर्णतां गताः ।
आयातं 'मोटरं' तत्र नेतुं वरानुयायिनः ॥४५॥

जब सब कुलाचार संपूर्ण हो गये तो बरातियों को ले जाने के लिए मोटर आ गई ॥४५॥

आसनानि गृहीतानि सकलैस्तत्र वाहने ।
नारीभिः पुरुषैश्चापि सुमालाभिः सुसज्जिते ॥४६॥

सुन्दर मालाओं से सजी हुई उस मोटर में स्त्री और पुरुष सब अपने-अपने स्थान पर बैठ गये ॥४६॥

सकलान्येव भाराणि 'मोटरे' स्थापितानि तैः ।
एका तत्र च मंजूषा सुगुप्तं तरुणैः कृता ॥४७॥

उन्होंने सब भारों को मोटर पर रख दिया। कुछ युवकों ने गुप्त रूप से एक पेटी उन भारों के बीच में रख दी ।।४७।।

पेटिकायां न जानामि किमासीत्तत्र धारितम् ।
धिक्कुर्वन्ति परं वृद्धाः किञ्चित्तेनान्वमीयत ।।४८।।

प्रतीत नहीं, उस पेटी में क्या रखा था परन्तु कुछ बुजुर्ग लोग धिक्कार रहे थे इसलिए कुछ कुछ अनुमान लगाया जा रहा था ।।४८।।

ड्राइवरः प्रवीणः स द्रुतं गंत्रीमचालयत् ।
विनोदो वाहने तस्मिन् परमानन्ददोऽभवत् ।।४९।।

ड्राइवर बहुत चतुर था, उसने मोटर को बड़ी शीघ्रता से चलाया। मोटर में मनोविनोद बहुत आनन्ददायक था ।।४९।।

निश्चिते समये प्राप्ता सा च वरानुयायिनी ।
ग्रामे सम्बन्धिनां तस्मिन् रम्यहर्म्यसुशोभिते ।।५०।।

बरात निश्चित समय पर संबन्धियों के ग्राम में पहुंच गयी। उस ग्राम में बड़े सुन्दर घर थे ।।५०।।

प्रबन्धः शोभनस्तत्र सद्भिः सम्बन्धिभिः कृतः ।
वरानुयायिनस्तुष्टास्तेषामालोक्य पाटवम् ।।५१।।

संबंधियों ने बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया था। बरात के लोग उन की चतुराई को देखकर बड़े प्रसन्न हुए ।।५१।।

जलपानादिकं कृत्वा होरामेकां विशश्रमुः ।
नापितोऽथ वधूपक्षादाह्वातुं तान् समागतः ॥५२॥

जलपान करने के बाद उन्होंने एक घंटा विश्राम किया। फिर वधू के पक्ष से नाई उन को बुलाने के लिये आया ॥५२॥

श्रीमन्तः, सज्जिता सन्तु मेलापकाय सांप्रतम् ।
सम्बन्धिनः प्रतीक्षन्ते स्थितास्तत्र चतुष्पथे ॥५३॥

श्रीमान् जी ! अब मिलणी के लिए तैयार हो जाओ, सम्बन्धी वहाँ चौराहे में खड़े आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥५३॥

सज्जन्ति यावदन्ये च वसनैः शोभनैर्निजैः ।
मद्यपा आतुराः पातुमानीतां मदिरां गृहात् ॥५४॥

जब भले लोग अपने अच्छे वस्त्रों को पहन रहे थे तो शराबी घर से लाई हुई मदिरा को पीने के लिए अधीर हो रहे थे ॥५४॥

ततश्च तरुणाः केचिन्मंजूषामुद्घाटयन् ।
निष्कासयितुमारब्धा 'बोतलानि' तथाऽऽतुराः ॥५५॥

फिर कुछ छोकरों ने उस पेटी को खोला और उतावले हो कर बोतलें निकालने लगे ॥५५॥

अपमानभयाद् वृद्धा असमर्था निवारणे ।
शंकाकुलं मनस्तेषामयाचत्कुशलं प्रभुम् ॥५६॥

अपने अपमान के भय से बूढे लोग उन्हे रोकने में असमर्थ थे परन्तु उनका मन शंका से व्याकुल था, वे भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे कि हे भगवान्, कुशल ही करना ॥५६॥

चषकानि तथाऽऽदाय पातुमारेभिरे ततः ।
बहूनां दिवसानां ते यथाऽऽसँस्तृषिताः खगाः ॥५७॥

फिर उन्होंने प्याले संभाल लिये और पीने लग पड़े । ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे कई दिनों के प्यासे पक्षी हैं ॥५७॥

शृंगारं ललनाश्चक्रुरंगरागाविलेपनैः ।
सम्बन्धिनां न नारीभिः सौंदर्यं स्यात्पराजितम् ॥५८॥

स्त्रियां भी अंगरागादि के द्वारा अपना सिंगार करने लगीं । वे सोचती थीं कि संबंधियों की नारियों से हमारी सुन्दरता कहीं हार न जाय ॥५८॥

धूर्तैश्च तरुणैः कैश्चित् पातुं वरोऽपि बाधितः ।
सोऽप्येकं चषकं पीत्वा भ्रष्टबुद्धिरजायत ॥५९॥

कुछ धूर्त युवकों ने वर को भी पीने के लिये विवश कर दिया, उसने भी एक प्याला ले लिया और उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई ॥५९॥

अश्वोपरि वरं कृत्वा चेलुस्ते सक्तास्ततः ।
नृत्यन्तो बहुमुद्रासु प्रलपन्तस्तथैव च ॥६०॥

वर को घोड़े पर चढ़ा कर वे चल पड़े, अनेक मुद्राओं में नाच रहे थे और प्रलाप कर रहे थे ॥६०॥

वरः कश्ये स्थितः सर्वैर्दृष्टो लुंठन्नितस्ततः ।
स्तम्भनमश्वपालोऽस्य चोभयोः कुरुते पटुः ॥६१॥

सब ने देखा कि घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ दूल्हा इधर उधर लुढ़क रहा है। परन्तु अश्वपाल (साईस) बहुत चतुर था वह उसे दोनों ओर से थाम रहा था ॥६१॥

अदर्शयन् स्त्रियश्चाथ विविधा भावभंगिमाः ।
अनृत्यन् पुरुषैः सार्धं सकला विगतत्रपाः ॥६२॥

स्त्रियाँ अनेक प्रकार के हाव-भाव दिखा रही थीं और बिना संकोच के पुरुषों के साथ नाच रहीं थीं ॥६२॥

वधूपक्षात्तथा केचिन्मद्यं पीत्वा समागताः ।
तेऽपि नर्तितुमारब्धाः स्पृष्टा अस्पृश्यया रुजा ॥६३॥

वधू के पक्ष से भी कुछ लोग मद्यपान करके आये थे,

वे भी नाचने लग पड़े मानों उन्हें अछूत के रोग ने छू लिया हो ॥६३॥

चित्रकाराश्च चित्राणि तेषां बहूनि जग्रहुः ।
महिलानां तथा पुंसां भिन्नानि मिश्रितानि च ॥६४॥

वहां चित्रकार भी आ गये। उन्होंने स्त्रियों और पुरुषों के अलग-अलग और इकट्ठे भी बहुत से चित्र लिये ॥६४॥

अनलक्रीडकस्तत्राद्भुतक्रीडामदर्शयत् ।
स्फुलिंगा अग्निखेलाया अस्पृशन् नभसस्तलम् ॥६५॥

आतिशबाज अद्भुत खेल दिया रहा था। आग की चिनगारियां आकाश को छू रही थीं ॥६५॥

कृष्णाश्च हरिताः पीता अग्ने रेखा दिशासु च।
गच्छन्त्यो दर्शकानां हि चेतांसि सर्वथाऽहरन् ॥६६॥

भिन्न-भिन्न दिशाओं में आग की जाती हुई काली, हरी और पीली रेखाएं दर्शकों के मन को हर रही थीं ॥६६॥

क्वचिद् धावति सर्पोऽग्नेः क्वचिच्च ज्योतिरिंगणः ।
भ्राम्यति चक्रमाकाशे कृष्णस्येव सुदर्शनम् ॥६७॥

कहीं आग का सांप दौड़ रहा था तो कहीं जुगनू उड़ रहे

थे और कहीं आकाश में चक्र कृष्ण जी के सुदर्शन चक्र के समान घूम रहा था ॥६७॥

अकर्षच्छाटकां कश्चित्तरुण्यास्तत्र मद्यपः ।
संजातः कलहोऽकस्मात्तेषां सम्बन्धिनां मिथः ॥६८॥

वहां एक शराबी ने एक युवती की साड़ी को खींचा । इस पर उनका आपस में अचानक ही झगड़ा हो गया ॥६८॥

ददुः परस्परं गालीश्चक्रुरश्लीलभाषणम् ।
मतिर्मद्येन लुप्ताऽऽसीत्पुंसामुभयपक्षयोः ॥६९॥

वे आपस में एक दूसरे को गालियाँ देने लगे और गंदी बातें कहने लगे । दोनों ओर के लोगों की बुद्धि मदिरा से नष्ट हो चुकी थी ॥६९॥

सर्वे विसस्मरुस्तत्र मंगलं वर्तते गृहे ।
कलह उग्ररूपेण ववृधेऽथ प्रतिक्षणम् ॥७०॥

उन सब को यह भूल गया कि हमारे घर में मंगल कार्य है । झगड़ा पल-पल में उग्र रूप ही धारण करता गया ॥७०॥

वृद्धाश्च येतिरे केचिन्निराकर्तुं कलिं तदा ।
परं तेषां वचः श्रोतुं नासीत्कोऽपि समुद्यतः ॥७१॥

कुछ बुजुर्गों ने झगड़े को मिटाने का प्रयत्न किया। परन्तु उनकी बात सुनने के लिए कोई भी तैयार न था ॥७१॥

तेषामासीत्ततो युद्धं युध्यन्ते कर्बुरा यथा ।
प्रतीयते स्म ते सर्वे मदिरयास्रपाः कृताः ॥७२॥

फिर उनका आपस में ऐसे युद्ध होने लगा जैसे राक्षस लड़ते हैं। ऐसा प्रतीत होता था कि मदिरा ने उन्हें सचमुच राक्षस ही बना दिया था ॥७२॥

मुष्टामुष्टि ततस्तेषां दंडादंडि तथाऽभवत् ।
सुस्राव रुधिरं तत्र रक्तवर्णा धराऽभवत् ॥७३॥

मुक्कों से लड़ते-लड़ते वे फिर एक-दूसरे पर डंडे बरसाने लगे। वहां इतना खून बहने लगा कि धरती भी लाल हो गई ॥७३॥

नारीणामपमानश्च निर्लज्जैर्बहुधा कृतः ।
कृत्याकृत्यानभिज्ञास्ते नरतां सर्वथा जहुः ॥७४॥

उन निर्लज्जों ने स्त्रियों का भी बड़ा अपमान किया। कृत्य-अकृत्य को न पहचानते हुए उन्होंने मनुष्यता का सर्वथा त्याग कर दिया ॥७४॥

सुरोन्मत्तवरेणापि तुरंगात्कूर्दनं कृतम् ।
स चापि त्वरितं श्लिष्टः श्यालैर्विद्याधरोपमैः ॥७५॥

मद्य के उन्माद में दूल्हे ने भी घोड़े से छलांग लगा दी

और शीघ्र ही गंधर्व की उपमा वाले अपने सालों से उलझ गया ।।७५।।

उन्मोच्य प्रग्रहं वाजी दधाव वेगतस्तदा ।
पश्चादेव गतस्तस्य धावँश्च सोऽश्वपालकः ।।७६।।

घोड़े ने अश्वपाल के हाथ से लगाम छुड़ाई और तीव्रगति से दौड़ गया, उसको पकड़ने के लिए अश्वपाल भी पीछे ही दौड़ गया ।।७६।।

केशाकेशि च नारीणां तथा च बाहुबाहवि ।
प्रत्यक्षमभवत्तत्र भूतग्रस्ता इवाभवन् ।।७७।।

स्त्रियां एक दूसरी को बाजुओं से और केशों से पकड़ कर खींचने लगीं । मानों उन्हें भूत चिपट गया हो ।।७७।।

तासां पुष्पाणि वेणीभ्यः पेतुश्च धरणीतले ।
बाहूनां चूलिका भग्ना दुकूलाः स्रंसितास्तथा ।।७८।।

उनकी वेणियों से फूल धरती पर गिरने लगे बाजुओं की चूड़ियां टूट गईं और दुपट्टे गिर पड़े ।।७८।।

एवं च घटिकामात्रे रंगभूमी रणांगने ।
पश्यतामेव लोकानां दुःखाय परिवर्तिता ।।७९।।

इस प्रकार लोगों के देखते ही देखते एक घड़ी भर में वह रंगभूमि दुःख पंहुचाने के लिए युद्धभूमि में बदल गई ।।७९।।

अग्निक्रीडनवस्तुषु क्षिप्ता केनापि 'तीलिका' ।
विस्फोटा अभवँस्तत्र हृदयस्य विदारकाः ।।८०।।

इतने में किसी ने आतिशबाजी में माचिस की तीली फैंक दी तब वहां ऐसे धमाके हुए कि दिल दहलने लगा ।।८०।।

दधावुः सकला लोका प्राणाँश्च रक्षितुं तदा ।
रुदन्ति सज्जना एवमुत्पातः सुरया कृतः ।।८१।।

सब लोग अपने प्राण बचाने के किए इधर-उधर भागने लगे। सज्जन लोग रो रहे थे कि हाय ! इस मदिरा ने बड़ा उपद्रव कर दिया ।।८१।।

दग्धं च कस्यचिच्छीर्षं बाहुर्दग्धोऽथ कस्यचित् ।
नेत्राभ्यामर्धदग्धाभ्यां कश्चिद् रोदिति दूरतः ।।८२।।

किसी का सिर झुलस गया तो किसी का बाहु जल गया, कोई झुलसे हुए नेत्रों से दूर खड़ा रो रहा था ।।८२।।

कुप्यन्ति सर्वकाराय तत्रस्थाः सज्जनाश्च ये।
प्रतिबन्धः किमर्थं न निर्माणेऽस्य प्रदीयते ॥८३॥

वहां खड़े कुछ सज्जन लोग सरकार पर क्रोध कर रहे थे कि वह इसके निर्माण पर प्रतिबन्ध क्यों नहीं लगा देती है।।८३।।

उत्सवेषु पवित्रेषु प्रयुंजन्ति जना इदम् ।
कुर्वन्ति बह्वनाचारान् न मद्यपायिनः शुभाः ॥८४॥

लोग पवित्र उत्सवों में इस का प्रयोग कर के कई प्रकार के दुराचरण करते हैं। मदिरा पीने वाले लोग अच्छे नहीं होते हैं ।।८४।।

वरस्यान्वेषणारब्धा शान्ते कोलाहले तदा ।
तातेन पतितो दृष्टो मार्गेऽसौ गतचेतनः ॥८५॥

कोलाहल के शान्त होने पर दूल्हे की खोज आरंभ हुई। उसके पिता ने उसे रास्ते में बेहोश पड़ा हुआ देखा ।।८५।।

मुकुटं मस्तके नासीन्मालास्तस्य गले न च ।
रागोऽपि तस्य कायस्य तथाऽऽसीत्परिवर्तितः ॥८६॥

न ही उस के सिर पर मुकुट था और न गले में मालाएं थीं। उसके शरीर का रंग भी बदल गया था।।८६।।

लखपत उवाच

पापैरिह न जानामि चानीता मदिरा कथम् ।
वंशस्य मे विनाशाय जीवनं सांप्रतं वृथा ॥८७॥

लखपत बोला—ये पापी लोग प्रतीत नहीं मेरे वंश का नाश करने के लिए यहाँ मदिरा कैसे ले आए ? अब मेरा जीना तो व्यर्थ ही है ॥८७॥

कृतेषु शतयत्नेषु चेतनां नाप्तवानसौ ।
भाव्यां च प्रतीक्षन्ते स्वसारस्तस्य वेश्मनि ॥८८॥

सैकड़ों यत्नों के करने पर भी वह होश में नहीं आया। उधर उस की बहनें घर पर भावी की प्रतीक्षा कर रही थीं ॥८८॥

ध्यायति मानसे कन्या विवाहानन्तरं यदि ।
आयास्यद् घटनाऽभद्रा विधवा स्यामहं किल ॥८९॥

कन्या (दुल्हन) अपने मन में सोचने लगी कि यदि यह अशुभ घटना विवाह के बाद आती तो मैं विधवा हो जाती ॥८९॥

अनेष्यं वै कथं कालं वैधव्येन च भारते ।
गौर्या एव प्रसादेन रक्षिताऽस्मि न संशयः ॥९०॥

मैं विधवा हो कर भारत में समय को कैसे बिताती ? पार्वती देवी की बड़ी कृपा है कि मुझे वैधव्य से बचा लिया ॥९०॥

इति षष्ठः सर्गः समाप्तः

अथ सप्तमः सर्गः

नरकोऽयं समागतः

How and why this hell ?



विवदतो दिवारात्रमेकस्मिन् दंपती गृहे ।
आवयोः कस्य दोषेण नरकोऽयं समागतः ॥१॥

एक घर में पति-पत्नी दिन-रात झगड़ते हैं कि इस नरक के लिए हम दोनों में से कौन दोषी है ? ॥१॥

वस्तूनि सुलभान्यासन् न्यूनता कापि नाभवत् ।
तथापि कलहो दृष्टः शिशूनामतिसंख्यया ॥२॥

घर में किसी चीज की कमी नहीं थी प्रत्येक वस्तु सुलभ थी परन्तु बच्चों की अधिक संख्या के कारण झगड़ा रहता था ॥२॥

शिशूना'मारमी' तत्र दृश्यते स्म विलक्षणा ।
नानुमातुमिदं शक्यमनयोः सकला इमे ॥३॥

उस घर में बच्चों की एक विलक्षण सेना दिखाई देती थी। यह अनुमान लगाना भी कठिन था कि ये सब इन दोनों के ही हैं ॥३॥

प्रतिवर्षं तयोर्गेहे शिशुरेको व्यजायत ।
वर्धयितुमुभौ सृष्टिं विधात्रा प्रेषितौ यथा ॥४॥

उनके घर में हर वर्ष एक बच्चा पैदा होता था। मानों विधाता ने उन दोनों को सृष्टि बढ़ाने के लिए ही संसार में भेजा था ॥४॥

कार्यालयाद् यदा भर्ता समायाति निकेतनम् ।
विचित्रमेव दृश्यं स प्रत्यहमीक्षते तदा ॥५॥

जब सायंकाल को पति कार्यालय से घर आता था तो वह विचित्र ही दृश्य देखता था ॥५॥

स्थाने स्थाने पुरीषस्य कूटान् गृहेऽवलोकते ।
मुखमाच्छाद्य वस्त्रेण वेत्रासने च तिष्ठति ॥६॥

स्थान स्थान पर विष्ठा के ढेरों को देख कर वह अपने मुँह को वस्त्र से ढांप कर कुर्सी पर बैठ जाता था ॥६॥

पत्नीं वक्तुं न शक्नोति किंचित्स द्विविधावशात् ।
आवयोः कस्य दोषेण नरकोऽयं समागतः ॥७॥

वह अपनी पत्नी को कुछ भी नहीं बोल सकता था। उस का मन दुविधा में था कि इस नरक के लिए हम दोनों में से कौन दोषी है ॥७॥

समन्ताच्छिशवस्तस्य पर्यभ्राम्यन्नितस्ततः ।
संचेतुं मधु पुष्पेभ्यो भ्राम्यन्ति भ्रमरा यथा ॥८॥

बच्चे उसके चारों ओर ऐसे घूमते थे जैसे फूलों से मधुसंचय के लिए भौंरे घूमते हैं ॥८॥

यथा यथा यतन्ते स्म स्प्रष्टुं ते पितरं निजम् ।
येते तथा तथा तातः कर्तुं तान् परतः शिशून् ॥९॥

जैसे-जैसे बच्चे अपने पिता को छूने का प्रयत्न करते थे वैसे-वैसे वह उन्हें परे हटाने का प्रयत्न करता था ॥९॥

वस्त्राणि मे करिष्यन्ति मलिनान्यबुधा इमे ।
प्रातः कथं गमिष्यामि मलिनैर्वसनैर्मम ॥१०॥

ये अनजान मेरे वस्त्रों को मैला कर देंगे तो मैं मैले वस्त्रों से प्रातःकाल काम पर कैसे जाऊंगा ॥१०॥

भार्या पश्यति तस्येदं कौतुकं दूरतः स्थिता ।
आवयोः कस्य दोषेण नरकोऽयं समागतः ॥११॥

पत्नी दूर खड़ी उस का यह तमशा देखती हुई सोचती है कि इस नरक के लिए हम दोनों में से कौन अपराधी है ॥११॥

सिंघाणं नासिकैकस्य नेत्रमन्यस्य दूषिकाम् ।
दर्शयित्वा घृणां दत्ते गृध्रा वा बालका इमे ॥१२॥

एक की नाक में सींढ है तो दूसरी की आंख में दूषिका (नेत्रमल) है। ये घृणा पैदा करते हैं। क्या ये गीध हैं या बच्चे ? ॥१२॥

त्रिचतुर्णां शिशूनां च क्रीडतां तस्य सम्मुखे ।
स्पष्टमेव स्म लक्ष्यन्ते रेखा मूत्रस्य जंघयोः ॥१३॥

जो तीन-चार बच्चे उस के सामने खेल रहे थे उन की टांगों में मूत्र की रेखाएं स्पष्ट ही दिखाईं दे रही थीं। १३॥

कंचुकानि हि केषांचित्सूच्या चोर्ध्वीकृतानि च ।
न लिप्तानि पुरीषेण भवेयुरिति शंकया ॥१४॥

कईयों के झग्गों को माता ने पिन से ऊपर की ओर टांग दिया था ताकि विष्ठा से लिबड़ न जाएं ॥१४॥

पठितुं पंच यान्ति स्म समीपे शिक्षणालये ।
सदनं शोभयन्ते स्म सप्त तस्य गृहे स्थिताः ॥१५॥

पांच बच्चे समीप के स्कूल में पढ़ने जाते थे और सात अभी घर की ही शोभा बढाते थे ॥१५॥

भृत्यस्तिष्ठति तेषां न दत्तेऽपि बहुवेतने ।
शिशूनां शोधयेत्कश्च विष्ठामूत्रादिकं गृहे ॥१६॥

बहुत सारा वेतन देने पर भी उनके घर में कोई नौकर नहीं ठहरता था। उनके घर बच्चों की विष्ठा और मूत्र को कौन साफ करे ॥१६॥

एकदा भोजनं कर्तुमतिष्ठत् प्रातरेव सः ।
चत्वारः शिशवस्तत्रोपविष्टा लालसापराः ॥१७॥

एक बार वह प्रातः ही भोजन करने के लिए बैठा तो बच्चे ग्रास की लालसा में उस के पास बैठ गये ॥१७॥

तेनापूपस्य खंडानि चत्वार्येव कृतानि च ।
सर्वेषामेव हस्तेषु धारितानि पृथक् पृथक् ॥१८॥

उसने एक रोटी के चार टुकड़े किये और चारों के हाथों पर रख दिये ॥१८॥

भुक्तास्तेन यदा ग्रासाः कतिचिद् भोजनस्य च ।
हन्नमेकेन तत्रैव मूत्रितमपरेण च ॥१९॥

अभी उस ने भोजन के कुछ-एक ही ग्रास खाये थे कि एक ने वहीं पर विष्ठा करदी और दूसरे ने पेशाब कर दिया ॥१९॥

संकीर्णां नासिकां कृत्वा स्थालीं स परतोऽकरोत् ।
भार्यां च तर्जयामास पचन्तीं भोजनं तदा ॥२०॥

उसने नाक सिकोड़ कर थाली परे हटा ली और भोजन पका रही अपनी पत्नी को झिड़कना आरम्भ कर दिया ॥२०॥

पतिरुवाच

अविनीताऽसि दुष्टे त्वं नैतान् वै शिक्षसे कथम् ।
यत्र तत्रैव कुर्वन्ति विष्ठामूत्रे च काकवत् ॥२१॥

अरी दुष्ट ! तू बड़ी ढीठ है, क्या तू इन को शिक्षा भी नहीं दे सकती ? यह जहां-तहां ही कौए के समान विष्ठा तथा मूत्र कर देते हैं ॥२१॥

आसीत्साऽपि प्रतीक्षायां क्षेप्तुं व्यङ्ग्यवचांसि च ।
कृपेयं भवतामेव कोपोऽत्र क्रियते कथम् ॥२२॥

वह भी व्यङ्ग्यवाण फैंकने की प्रतीक्षा में ही थी । उसने कहा कि यह आप की ही तो कृपा है, क्रोध क्यों कर रहे हैं ? ॥२२॥

भार्योवाच

केवलं नरकस्यास्य भवन्त एव कारणम् ।
भवतां संयमाभावे क्लिश्याम्यहं दिनं दिनम् ॥२३॥

पत्नी बोली कि श्रीमान् जी ! इस नरक के कारण आप ही हैं, आप के संयम के अभाव से मैं प्रतिदिन क्लेश भोग रही हूं ॥२३॥

निर्बलं भवतां चेतस्तुष्टिं कदापि नाप्तवत् ।
अपराधं स्वयं कृत्वा तर्जयन्ति च मां वृथा ॥२४॥

शोधयन्त्याः पुरीषं च गच्छति सकलं दिनम् ।
लभे न समयं कर्तुं वेणीमपि च शीर्षके ॥२५॥

आपका मन बहुत दुर्बल है, यह कभी संतुष्ट नहीं हुआ। स्वयं अपराध कर के मुझे झिड़क रहे हैं । मेरा सारा दिन विष्ठा साफ करते-करते ही बीत जाता है। मुझे तो सिर में गुत करने का भी समय नहीं मिलता ॥२४॥२५॥

एतान् प्रति न कर्तव्यं किमस्ति भवतां क्वचित् ? ।
केवलं मनसस्तृप्तिमीहन्ते पुरुषाः कथम् ॥२६॥

क्या इन के प्रति आप का कोई कर्तव्य नहीं है ? पुरुष केवल मन की तृप्ति क्यों चाहते हैं ? ॥२६॥

मदीया भगिनी ज्येष्ठा धारयति शिशुद्वयम् ।
सुखं स्वर्गसमं तस्या विद्यते सदने शुभे ॥२७॥

मेरी बड़ी बहन के केवल दो ही बच्चे हैं। उसके घर में स्वर्ग के समान सुख है ॥२७॥

'लंगूरैः' सार्धमेतैश्च गन्तुमिच्छामि तत्र न ।
नतं मे मस्तकं तस्या अग्रे भवति लज्जया ॥२८॥

मैं इन लंगूरों के साथ वहां जाना भी नहीं चाहती। मेरा मस्तक उसके सामने लज्जा से झुक जाता है ॥२८॥

पद्मायाः प्रतिवासिन्यास्तनयैका सुतद्वयम् ।
सुखस्य कुरुते राज्यं चिन्ता काऽपि न विद्यते ॥२९॥

मेरी पड़ोसिन पद्मा के एक पुत्र और एक ही पुत्री है, वह सुख का राज करती है, उसे किसी भी बात की चिन्ता नहीं है ॥२९॥

कदाऽपि कल्पना तेन कल्पिताऽऽसीन्न मानसे ।
ईदृशव्यङ्ग्यबाणानां क्षेपं मयि करिष्यति ॥३०॥

उस (पति) ने अपने मन में यह कभी कल्पना भी नहीं की थी कि वह इस प्रकार मुझ पर व्यङ्ग्यबाण फेंकेगी ॥३०॥

कोपेनासौ प्रचंडेन स्थालीं च क्षिप्तवान् बहिर् ।
उभावेव शिशू चापि प्राताडयत्पदेन सः ॥३१॥

उसने क्रोध में आ कर थाली को बाहर फैंक दिया और दोनों बच्चों की पैर से ताडना की ।।३१।।

पतिरुवाच

चांडिके त्वं वृथा ब्रूषे नाहं ते दुःखकारणम् ।
त्वमेव नरकस्यास्य भवसि कारणं खलु ॥३२॥

अरी चंडिके ! तूं व्यर्थ बोलती है, मैं तेरे दुःख का कारण नहीं हूं । निश्चय ही इस नरक का कारण तूं ही है ॥३२॥

वारम्वारमवोचस्त्वं बह्वपत्याः सुखं जनाः ।
अनुभवन्ति लोकेऽस्मिन् स्वल्पापत्याश्च दुःखिनः ॥३३॥

तूं बार-बार कहती थी कि अधिक संतान वाले लोग सुखी रहते हैं और थोड़ी संतान वाले दुःखी होते हैं । ३३॥

आधिक्षिपासि मां व्यर्थं नरकः साधितस्त्वया ।
सांप्रतं बह्वपत्या त्वं फलं भुंग्धि स्वकर्मणः ॥३४॥

यह नरक तूंने ही बनाया है, व्यर्थ ही मेरा तिरस्कार कर रही है । अब तू अधिक सन्तान वाली बन चुकी है, अपने कर्मों का फल भोग ॥३४॥

मूत्रपुरीषदुर्गन्धो दुरूहां कुरुते स्थितिम् ।
आगामिष्यामि गेहं न त्वमत्र सुखिनी भव ॥३५॥

मूत्र और विष्ठा की दुर्गन्धि से घर में ठहरना कठिन हो चुका है। मैं घर नहीं आऊंगा, यहाँ तूं ही सुख से रह ॥३५॥

विषं दत्त्वा हनिष्यामि सर्वानेतानहं शठे ।
न चाहं नरके स्थातुमिच्छामि सदने मम ॥३६॥

अरी दुष्ट ! मैं इन सब को विष देकर मार दूंगा। मैं अपने घर में नरक में नहीं रहना चाहता ॥३६॥

भार्योवाच

पुरुषाणां स्वभावोऽयं रहस्यं गोपयन्ति ते ।
वचनैरनृतैर्नारीर्वंचयन्ति छलान्वितैः ॥३७॥

पत्नी बोली कि पुरुषों का यह स्वभाव होता है कि वह अपने रहस्य को छिपाते हैं और फिर छल भरी झूठी बातें कह कर स्त्रियों को ठगते हैं ॥३७॥

न मूल्येन मयाऽऽनीता भवतां कृपयाऽऽगताः ।
वस्तुनश्च स्वकीयस्य घृणाऽस्ति भवतां कथम् ॥३८॥

मैं इन को खरीद कर नहीं लाई हूं, ये आप की कृपा से ही आए हैं। आप को अपनी ही वस्तु से घृणा क्यों है ? ॥३८॥

गतवर्षे यदाऽगच्छमहं च पितुरालयम् ।
आयाताश्च भवन्तोऽपि न जाने केन हेतुना ॥३९॥

गत वर्ष जब मैं मायके गई तो आप भी वहां आए थे । मुझे प्रतीत नहीं कि आप किस कारण से आये थे ॥३९॥

बहुशः प्रार्थनां कृत्वा भवन्तो वारिता मया ।
परन्तु देवपादैर्न परिणामः सुचिन्तितः ॥४०॥

मैंने अनेक प्रकार की प्रार्थनाएं करके निषेध किया परन्तु आपने परिणाम नहीं सोचा ॥४०॥

मध्ये चैकस्य वर्षस्य धारयाम्यपरं शिशुम् ।
एतेषां च मिषेणैव दंडो मह्यं प्रदीयते ॥४१॥

अब एक ही वर्ष के बीच में मेरा यह दूसरा बच्चा है । आप बच्चों के बहाने से मुझे दंड दे रहे हैं ॥४१॥

दौर्बल्यं सांप्रतं गोप्तुं वृथैव तर्जयन्ति माम् ।
नैषा मानवता चास्ति पृच्छ्यतामन्तरात्मनम् ॥४२॥

अब आप अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए मेरी भर्त्सना कर रहे हैं । यह कोई मानवता नहीं है, अपनी अन्तरात्मा से पूछिये ॥४२॥

नतोऽसौ ग्लानिभारेण तथाऽपि कुपितो महान् ।
तथा पश्यति भार्यां स छागं च बधिको यथा ॥४३॥

वह ग्लानि के भार से झुक गया था परन्तु उसके क्रोध

का ठिकाना न था। वह पत्नी को ऐसे देख रहा था जैसे कसाई बकरे को देखता है ॥४४॥

पतिरुवाच

गृहस्थाय घृणा चैवमभवत्तव मानसे ।
किमर्थमागता त्वं मां भूत्वा वधूस्वरूपिणी ॥४४॥

पति बोला कि यदि तेरे मन में गृहस्थ के लिए इतनी घृणा थी तो तूं वधू का रूप धारण कर मेरे पास आई ही क्यों थी ? ॥४४॥

भार्योवाच

आश्रमोऽयं गृहस्थस्य धर्मस्य साधनं स्मृतम् ।
नास्ति व्यसनसेवित्वमुद्देश्यमस्य भूतले ॥४५॥

पत्नी बोली कि यह गृहस्थ का आश्रम संसार में धर्म की साधना के लिए है, इसका उद्‌देश्य व्यसनों के पीछे भागना नहीं है ॥४५॥

कथ्यन्ते स्म यदा नार्यो नराणां भोगसाधनम् ।
समयोऽसौ गतः कान्त कालानुसरणं कुरु ॥४६॥

वह बोली कि हे पतिदेव ! वह समय अब बीत चुका है जब कि नारियों को भोग का साधन कहा जाता था, अब आप को समय के अनुसार चलना होगा ॥४६॥

पतिरुवाच

त्यागं तव करिष्यामि किमर्थं बहु भाषसे ।
त्वया सह न निर्वाहः कदापि मे भविष्यति ॥४७॥

पति बोला कि अरी नारी ! तूं बहुत बकवास क्यों करती है, मैं तेरा त्याग कर दूंगा। तेरे साथ मेरा निर्वाह नहीं हो सकेगा ।।४७।।

जिह्वा तव वशे नास्ति वदासि चित्तमागतम् ।
त्वादृशा ललना लोके भवन्ति पादताडिताः ।।४८।।

वह बोला कि तेरी जीभ तेरे वश में नहीं है, जो कुछ तेरे मन में आता है तूं कह देती है। तेरे जैसी नारियां तो संसार में पैरों की ठोकरें खाती हैं ।।४८।।

भार्योवाच

इच्छा त्यागस्य चेदासीत् परिणीता कथं पते ।
भवतां पूर्वभार्याया अवर्तत शिशुद्वयम् ।।४९।।

पत्नी बोली कि हे पतिदेव ! यदि मेरा त्याग करना था तो मेरे साथ विवाह ही क्यों किया था ? आप की पहली पत्नी के भी तो दो बच्चे थे ।।४९।।

करिष्यन्ति कथं त्यागं न मह्यं स्वीकृतो यदि ।
चौरश्चिकीर्षति त्यक्तुं परं भारो न मुंचति ।।५०।।

यदि मुझे स्वीकार नहीं है तो आप त्याग कैसे करेगें ? चोर गठड़ी को छोड़ना चाहता है परन्तु गठड़ी चोर को नहीं छोड़ती है।।५०।।

युष्माननुगमिष्यामि सीता दाशरथिं यथा ।
लब्धोऽस्ति श्लाघ्यभाग्येन भवादृशः पतिर्मया ।।५१।।

मैं तो आप के पीछे चलूंगी जैसे सीता राम के पीछे चलती

थी। आप जैसा पति मुझे बड़े भाग्य से मिला है ।।५१।।

स्वमार्गो भवतामस्ति मदीयो निज एव च ।
आवाभ्यामास्ति गन्तव्यं स्वेन स्वेन पथा पते ।।५२।।

हे पतिदेव ! आप का अपना रास्ता है, मेरा अपना रास्ता है। हम दोनों को अपने-अपने रास्ते पर चलना होगा ।।५२।।

कुमार्गं आवयोर्यश्च गमिष्यत्यविवेकतः ।
स एव स्वाविवेकस्य यातनां लप्स्यते ध्रुवम् ।।५३।।

हम दोनों में से जो अज्ञान से कुमार्ग पर चलेगा वह ही अपने अविवेक का दण्ड पायेगा ।।५३।।

सदैव बाह्यसौन्दर्याद् घृणा मह्यमवर्तत ।
कदाऽपि न गता गेहादर्धवस्त्रैरहं बहिर् ।।५४।।

मुझे बाहरी सुन्दरता से सदा घृणा रही है। मैं दूसरी स्त्रियों की तरह आधे आधे वस्त्र पहन कर कभी घर से बाहर नहीं निकली हूं ।।५४।।

संकोचस्येदृशस्त्यागः कदाऽपि न कृतो मया ।
अधिक्षिपन्ति मामेवं निर्निमित्तमनागसाम् ।।५५।।

मैंने संकोच का कभी त्याग नहीं किया। आप विना कारण और बिना अपराध के ही मेरा तिरस्कार कर रहे हैं ।।५५।।

न्यायालयं भवन्तश्चेद् यास्यन्ति त्यागहेतवे ।
दृष्ट्वा द्वादशसंख्यां किं न्यायाधीशो वदिष्यति ।।५६।।

यदि आप मेरा त्याग करने के लिए न्यायालय में जाएंगे तो इन बारह बच्चों को देख कर न्यायाधीश क्या कहेगा ? ॥५६॥

किमाज्ञां दास्यति प्राज्ञो न्यायाधीश उपेक्षितुम् ।
एतान्निरपराधान् वै भाग्यं भोक्तुं समागतान् ॥५७॥

क्या बुद्धिमान् न्यायाधीश अपना भाग्य भोगने के लिये आये हुए निरपराध इन सब को छोड़ने की स्वीकृति आपको दे देगा ? ॥५७॥

मारणीया विषं दत्त्वा किमर्थं जन्म दापिताः ।
हेतुस्तत्र क आसीद् वै विषयाः शिशवोऽथवा ॥५८॥

यदि इन्हें विष दे कर मार देना है तो आपने इन्हें जन्म ग्रहण क्यों करवाया। कहिये, वहां क्या कारण था, विषयभोग या संतान-उत्पति ? ॥५८॥

मह्यं पूर्वं विषं देयमेतेभ्यस्तदनन्तरम् ।
अपराधो ममैवास्ति जन्मकाले हता न हि ॥५९॥

यपि विष ही देना है तो पहले मुझे दो, इन को बाद में देना क्योंकि यह मेरा ही अपराध है कि मैंने इन्हें जन्म लेते ही मार नहीं दिया ॥५९॥

एवमुक्त्वा च सा नारी रुरोद स्त्रीस्वभावतः ।
भर्ता तस्यास्ततोऽगच्छद् द्रुतं कार्यालयं प्रति ॥६०॥

इस प्रकार कह कर वह नारी स्त्रीस्वभाव से रोने लग पड़ी। उसका पति शीघ्र ही कार्यालय को चला गया ॥६०॥

एकः प्रश्नस्तयोश्चित्तमतुदत्सकलं दिनम् ।
आवयोः कस्य दोषेण नरकोऽयं समागतः ॥६१॥

एक प्रश्न उन दोनों के मन को दिन भर पीडित करता रहा कि हम दोनों में से इस नरक के लिए कौन दोषी है ॥६१॥

पादूशंकुर्यथा पादे घर्षणं कुरुतेऽप्रियम् ।
अयं प्रश्नस्तयोश्चित्तेऽकरोत्तथैव घर्षणम् ॥६२॥

जैसे जूती की निकली हुई कील पैर में दुःखदायी रगड़ करती है इसी प्रकार यह प्रश्न उन दोनों के मन में रगड़ करता रहा ॥६२॥

स्वयमेव हि तौ वित्त उभयोश्च मिथस्त्रुटीः ।
दम्पत्योरंतरंगं हि ज्ञातुं च नापरः प्रभुः ॥६३॥

वह दोनों एक-दूसरे की त्रुटियों को आपस में जानते थे। भला पति-पत्नी की अन्दरूनी बातों को कोई दूसरा कैसे जान सकता है ? ॥६३॥

पतिश्चिन्तयति

उद्दीपनकरैर्भावैरेतया मोहितो ह्यहम् ।
नियंत्रणेऽसमर्थः स्यां हेतुं मां मन्यते कथम् ॥६४॥

पति सोचता है कि अपने काम-उद्दीपक भावों से यह मुझे मोहित करती रही है और मैं अपने आप को नियंत्रण में नहीं रख सका हूं, फिर यह मुझे कारण कैसे मानती है ? ॥६४॥

भार्या चिन्तयति

विषयिणो नरा एते न जातु तृप्तिमाप्नुयुः ।
इतः कूपस्ततो गर्तः किं कुर्युरबला इमाः ॥६५॥

पत्नी सोचती है कि ये मनुष्य इतने विषयी होते हैं कि इन की कभी तृप्ति ही नहीं होती। बेचारी स्त्रियां क्या करें, एक ओर कूंआं और दूसरी ओर खाई ॥६५॥

एवमेव स्वचित्ते तौ मन्येते च परस्परम् ।
विशालपरिवारस्य हेतुमेकोऽपरं तथा ॥६६॥

इस प्रकार वे दोनों अपने मन ही मन में उस विशाल परिवार के लिए आपस में एक-दूसरे को कारण मान रहे थे ॥६६॥

निन्दति च पतिः पत्नीं पतिमर्धाङ्गिनी तथा ।
किं किं चित्ते तयोरासीज्जानीतस्तौ परस्परम् ॥६७॥

मन ही मन में पति पत्नी की निन्दा कर रहा था और पत्नी पति की निन्दा कर रही थी। उन दोनों के मन में क्या क्या बातें आ रही थीं, ये तो वे ही दोनों जानते थे ॥६७॥

उभौ न निर्णयं कर्तुं शेकतुः सकलं दिनम् ।
आवयोः कस्य दोषेण नरकोऽयं समागतः ॥६८॥

वे दोनों पति-पत्नी दिन भर इस बात का निर्णय नहीं

कर सके कि हम दोनों में से किस के दोष से यह नरक आया है ॥६८॥

कदाचिद् बाह्यचित्तेन किञ्चिद् वदति मानवः ।
परिणामः परं तस्य जायते जातु भीषणः ॥६९॥

कभी कोई मनुष्य बाहरी मन से कोई अनुचित बात कर तो देता है परन्तु उसका परिणाम कभी बहुत भयंकर भोगना पड़ता है ॥६९॥

उमया विस्मृतं सर्वं विषवार्ता न विस्मृता ।
किं सत्यं गरलं दत्त्वा हन्तव्याः शिशवो मम ॥७०॥

उमा को पति की और तो सब बातें भूल गईं परन्तु वह जहर की बात को न भूल सकी । वह सोचने लगी कि क्या अपने बच्चों को सचमुच जहर देकर मार देना चाहिये ? ॥७०॥

उमा चिन्तयति

विषं भवति किं वस्तु म्रियन्ते प्राणिनः कथम् ।
कियाँल्लगति कालश्च तथैतल्लभ्यते कुतः ॥७१॥

जहर क्या वस्तु होती है, इस से लोग कैसे मरते होंगे, मरने में कितना समय लगता होगा और यह कहां से प्राप्त किया जा सकता है ? ॥७१॥

सर्वेभ्यः किं विषं देयं त्रिभ्योऽथवा नृशंसया ।
भारोऽयं पारिवारस्य कथं पत्युर्लघुर्भवेत् ॥७२॥

मैं क्रूर पापिन क्या सब को जहर दे दूं या केवल तीन को ही ? मेरे पति के लिए परिवार का भार कैसे हल्का हो सकेगा ? ॥७२॥

किं मयापि विषं भक्ष्यं शिशुभिः सार्धमेव वा ।
पालनायावशिष्टानां जीवितव्यमभाग्यया ॥७३॥

क्या मुझे भी बच्चों के साथ जहर खा लेना चाहिये या मुझ अभागिन को बाकी बचे हुओं के पालन के लिए जीवित रहना चाहिये ? ॥७३॥

शिशवो लघवश्चेन्मे गमिष्यन्ति यमालयम् ।
जीवित्वा किं करिष्यामि मर्तव्यं हि मयाऽप्यतः ॥७४॥

यदि मेरे छोटे-छोटे बच्चे मर जाएंगे तो मैं भी जीवित रह कर क्या करूंगी। इसलिए मुझे भी मर ही जाना चाहिये ॥७४॥

भरिष्यति स्वयं भर्ताऽवशिष्टान् मम बालकान् ।
द्वाभ्यां सह सपत्न्याश्च नेष्यन्ति दिवसानि ते ॥७५॥

मेरा पति बाकी बचे हुओं को अपने आप ही पाल लेगा।

सौतिन के दो बच्चों के साथ वह भी अपने दिन बिताते रहेंगे ॥७५॥

विषं विषं च मस्तिष्क उमाया नर्तने रतम् ।
मरिष्यामि विषं भुक्त्वा कुतश्च प्राप्स्यते विषम् ॥७६॥

उमा के दिमाग में विष ही विष नाचने लगा। मैं विष खा कर मर जाऊंगी, यह विष मुझे कहां से प्राप्त होगा ॥७६॥

परमाणौ गते सिन्धौ बृहदान्दोलनं यथा ।
हृदय एवमेवास्या उदतिष्ठद् 'बवंडरः' ॥७७॥

जैसे समुद्र में परमाणु बम के गिराने पर बड़ी भारी खलबली मच जाती है उसी प्रकार इसके हृदय में एक बवंडर उठ रहा था ॥७७॥

तस्मिन्नेव दिने तत्र चागतो ग्रामसेवकः ।
औषधं दातुमाखूनां मारणाय गृहे गृहे ॥७८॥

उसी दिन वहां ग्रामसेवक आया, वह घर-घर में चूहों के मारने की दवाई बांट रहा था ॥७८॥

उमोवाच

हे भ्रातः सदनेऽस्माकं मूषिका बहवः खलु ।
ते दूषयन्ति खाद्यान्नं प्रधावन्त इतस्ततः ॥७९॥

उमा बोली कि हे भाई ! हमारे घर में निश्चय ही बहुत चूहे हैं। वह इधर-उधर दौड़ते हुए खाने-पीने की सामग्री को गन्दा कर देते हैं ।।७९।।

छिन्दान्ति सर्ववस्तूनि दन्ता वेद्मि न कीदृशाः ।
गतिविधिभिरेतेषां रात्रौ निद्राऽपि दुर्लभा ॥८०॥

ये सारी वस्तुओं को काट देते हैं, पता नहीं इन के दांत कैसे हैं। इन की गतिविधि से रात को नींद भी नहीं आती ।।८०।।

एतेषां पीडयाऽस्माकं गृहे वासोऽपि दुःशकः ।
औषधमीदृशं देयं सर्वनाशो भवेद्यथा ॥८१॥

इनके दुःख से हमारा घर में रहना भी कठिन हो गया है। कोई ऐसी औषधि देने की कृपा करें कि इनका सर्वनाश हो जाय ।।८१।।

दुकूलमानयामास क्षौममभ्यन्तरात्ततः ।
पश्यन्तु चपलैरेतैश्छिद्रैश्च तितउः कृतः ॥८२॥

फिर उसने अन्दर से एक रेशमी दुपट्टा ला कर उसको दिखाया कि देखो इन चपल चूहों ने छेदों से किस प्रकार इसको कतरनी बना दिया है ।।८२।।

ततः सा दर्शयामास पत्युः "पैण्ट"द्वयं तथा ।
छिद्राणि शतसंख्यानि स्पष्टान्यासँस्तयोरपि ॥८३॥

फिर उसने अपने पति की दो पैंट दिखाई। उन में भी सैंकड़ों छेद स्पष्ट दिखाई दे रहे थे ॥८३॥

एवं सहानुभूतिश्च समार्जितोमया तदा ।
तया प्रभावितः सोऽपि जगाद ग्रामसेवकः ॥८४॥

इस प्रकार उमा ने ग्रामसेवक की सहानुभूति प्राप्त कर ली। उस से प्रभावित हुआ ग्रामसेवक भी बोला ।८४॥

गामसेवक उवाच

विषं तीव्रं प्रदास्यामि म्रियेरन् सकला यथा ।
सावधानैः परं भाव्यं स्पृशेयुर्नार्भका: क्वचित् ॥८५॥

ग्रामसेवक ने कहा कि मैं इतना तेज जहर दूंगा कि ये सब मर जाएंगे। परन्तु सावधान रहना, कहीं बच्चे इसका स्पर्श न करें ॥८५॥

पयसि स्वल्पमेवास्य चूर्णं वा मिश्रितं कुरु ।
पयो धेह्यायते पात्रे गुटिका वा बिलान्तिके ॥८६॥

इस जहर का थोड़ा भाग दूध में डाल देना या आटे में मिला कर गोलियां बना लेना। दूध को किसी चौड़े पात्र में

डाल कर बिल के पास रख देना या गोलियों को बिल के पास रख देना ॥८६॥

पास्यन्ति मूषिकाः क्षीरं वात्स्यन्ति गुटिका यदा ।
मरिष्यन्ति पलेष्वेव दुःखं दूरे गमिष्यति ॥८७॥

जब चूहे उस जहर वाले दूध को पीएंगे या गोलियों को खाएंगे तो कुछ ही पलों में मर जाएंगे ॥८७॥

उमाया अस्पृशन् शब्दाः स्वान्तं विद्युत्करंटवत् ।
भा मुखस्य तथा जाता यथाऽऽस्ते रविमंडलम् ॥८८॥

ग्रामसेवक के इन शब्दों ने उमा के हृदय को बिजली के करंट के समान छू लिया। उसका मुंह इस प्रकार लाल हो गया जैसे अस्त के समय सूर्य हो जाता है ॥८८॥

नावगन्तुं मनोभावान् शशाक ग्रामसेवकः ।
प्रदाय चौषधं तस्यै गृहमन्यं जगाम सः ॥८९॥

ग्रामसेवक उस के मन के भावों को न समझ सका। वह उसे दवाई देकर दूसरे घर को चला गया ॥८९॥

ग्रामसेवकशब्दाश्च "स्पृशेयुर्नार्भकाः क्वचित्" ।
अभ्राम्यन् हृदये तस्या रथनाभिरिवानिशम् ॥९०॥

"कहीं इस विष को बच्चे न छू लें" ग्रामसेवक के

यह शब्द उस के हृदय में रथनाभि के समान लगातार घूमने लगे ।।९०।।

उमाऽचिन्तयत्

समाधानं समस्यायाः संजातं दैवयोगतः ।
अगामिष्यं च कुत्राहं विषस्य प्राप्तये किल ।।९१।।

उमा सोचने लगी कि दैवयोग से मेरी समस्या हल हो गई। मैं जहर प्राप्त करने के लिये कहां जाती ? ।।९१।।

अर्भकान् पाययिष्यामि कृत्वा पयसि मिश्रितम् ।
स्वयमपि च पास्यामि कुटुम्बोऽस्य लघुर्भवेत् ।।९२।।

मैं इस बिष को दूध में मिला कर बच्चों को पिला दूंगी और स्वयं भी पी लूंगी जिससे इस पति के परिवार का भार हल्का हो जाय ।।९२।।

घटिकाभ्यन्तरे दृष्टाऽवर्तत सूचिका त्रिषु ।
शीघ्रमेव मया कार्यमेका होराऽवशिष्यते ।।९३।।

उसने अन्दर घड़ी देखी तो सूई तीन पर थी। वह सोचने लगी कि अब एक ही घंटा बाकी है मुझे शीघ्रता करनी चाहिये ।।९३।।

बालका आगमिष्यन्ति त्वरितं शिक्षणालयात् ।
पतिदेवोऽपि पंचस्यः पूर्वमेवागमिष्यति ।।९४।।

बच्चे स्कूल से शीघ्र ही आ जाएंगे। पतिदेव भी पांच बजे से पहले ही पहुंच जाएंगे ॥९४॥

स्तनं निपीड्य धाराश्च 'चमचे' पातितास्तया।
गरलं मिश्रितं कृत्वा लघिष्ठं तदपाययत् ॥९५॥

उसने अपने स्तन को दबा कर दूध की धाराएं चमच में गिराईं और उस में विष मिला कर सब से छोटे को पिला दिया ॥९५॥

'चूं चूं' वारद्वयं कृत्वा नेत्रे चासौ न्यमीलयत्।
शरीरं कृष्णतां यातमङ्गारः शीतलो यथा ॥९६॥

उस बच्चे ने दो बार चूं-चूं की और आंखें बन्द कर लीं। उस का शरीर इस प्रकार काला पड़ गया जैसे बुझा हुआ अंगार होता है ॥९६॥

शीघ्रमेव ततः पात्रे दुग्धं च पातितं तया।
शेषं विषस्य तास्मिँश्च पातयामास साऽङ्गना ॥९७॥

फिर उसने शीघ्र ही गिलास में दूध डाला और विष के शेष भाग को उस में डाल दिया ॥९७॥

कुक्कूः पिंकूरुभावेवाभवतामन्तिके तदा।
पाययामास ताभ्यां सा स्वयं चापि पपौ ततः ॥९८॥

उस समय कुक्कू और पिंकू ही उस के पास थे। उसने

उनको वह विषमिश्रित दूध पिलाया और फिर स्वयं भी पी लिया ॥९८॥

धडामेति च शब्देन पपात धरणीतले ।
हिचकीद्वयमादाय यमलोकं जगाम सा ॥९९॥

वह धड़ाम के साथ धरती पर गिर गई, उसे दो हिचकियां आई और परलोक सिधार गई ॥९९॥

कुक्कूः पपात वामाङ्गे पिंकूस्तस्याश्च दक्षिणे ।
पार्श्वयोरुभयोरास्तां सुप्तौ निशि यथाऽम्बया ॥१००॥

कुक्कू उसकी बाईं ओर और पिंकू दाईं ओर गिरा। वह दोनों उसके दोनों ओर इस प्रकार पड़े थे मानों रात के समय माता के साथ सोये हों ॥१००॥

आगच्छन् पाठशालातश्छात्रास्तत्सद्मनस्ततः ।
'मां जी, मां जी' पयो देहि क्षुधा नो बाधते बहु ॥१०१॥

फिर उस घर के छात्र पाठशाला से आ गये। वे कह रहे थे—मां जी ! हमें दूध दो, बड़ी भूख लग रही है ॥१०१॥

यथापूर्वं च ते सर्वे वक्तुं प्रारेभिरेऽङ्गणात् ।
नाजानन् जननी नास्ति सत्कर्तुमद्य तान् भुवि ॥१०२॥

वे सब पहले की तरह आंगन से ही माता को पुकारने लग पड़े। उन्हें यह प्रतीत नहीं था कि उन की स्वागतकर्त्री माता संसार से चल बसी है।१०२॥

तेषां मध्ये कनिष्ठो य आन्दोलयत्करेण ताम्।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मातस्त्वमकाले निद्रिता कथम् ॥१०३॥

प्रदेहि दुग्धमस्मभ्यं विलम्बं कुरुषे कथम्।
क्षुधिताः स्म वयं सर्वे कार्यं कर्तुं च वर्तते ॥१०४॥

उन विद्यार्थियों में जो सब से छोटा था वह उसे हाथ से हिलाता हुआ बोला—माता जी ! उठो। आप आज असमय (बेमौका) क्यों सो रही हैं। हमें दूध दो, देर क्यों कर रही हो। हमें भूख लग रही है और फिर हमें स्कूल का काम भी करना है ॥१०३॥१०४॥

शय्यायां सुप्तमेकश्चादातुमैच्छत्प्रियं शिशुम्।
नीलमाकाशवद् दृष्ट्वा सेहे स्प्रष्टुं भयेन न ॥१०५॥

एक विद्यार्थी ने बिस्तर पर सोये हुए प्यारे नन्हे को उठाना चाहा परन्तु आकाश के समान उसका नीला रंग देख कर भय का मारा उसे छू न सका॥१०५॥

कुक्कूर् वदति किञ्चिन्न पिंकूश्चापि न भाषते।
तावद्य न यथापूर्वमालिङ्गितुमधावताम् ॥१०६॥

आज न कुक्कू कुछ बोल रहा था और न पिंकू बोल रहा

था वे दोनों आज पहले की तरह अपने भाई-बहनों से लिपटने के लिये नहीं दौड़े ॥१०६॥

पठन्त्यौ दशमश्रेण्यां जज्ञतुर्बालिके परम् ।
वज्रपातो गृहे जातो दशा नः का भविष्यति ॥१०७॥

परन्तु उन में से जो दो लड़कियां दशम श्रेणी में पढ़ती थीं उन को पता लग गया था कि हमारे घर में तो वज्रपात हो गया है, हमारी क्या दशा होगी ॥१०७॥

रोदितुं सर्व आरब्धा हाहाकारो महानभूत् ।
लोकाश्च प्रातिवासस्य श्रुत्वा तत्र समाययुः ॥१०८॥

फिर वे सब बच्चे रोने लग पड़े, हाहाकार मच गया। उन के क्रन्दन को सुन कर पड़ोस के लोग भी वहां आ गये ॥१०८॥

अभैषुः सकला दृष्ट्वैकत्रैव चतुरः शवान् ।
संदेहमखिलाश्चक्रुः स्पृष्टा एते महाहिना ॥१०९॥

उन चार मुर्दों को एक ही स्थान पर पड़ा हुआ देख कर सब डरने लगे और संदेह करने लगे कि इन को किसी फणिहर ने छू लिया है ॥१०९॥

अन्वमोदत वृद्धैका ग्राम आस्ते भुजंगमः ।
बहुबारं मया दृष्टः काल इव भयावहः ॥११०॥

एक बुढ़िया ने इस बात का समर्थन किया कि हां, इस ग्राम में सांप रहता है, मैंने उसे कई बार देखा है, वह काल के समान भयंकर है ॥११०॥

कश्चिद् वदति केनापि तंत्रविद्या कृता भवेत् ।
एकदैवान्यथा ब्रूत चत्वारश्च मृताः कथम् ॥१११॥

कोई कहता है कि किसी ने जादू-टोना कर दिया होगा। नहीं तो भला बताओ कि ये चार इकठ्ठे ही कैसे मर गये ॥१११॥

कुर्वन्ति स्म जना ईर्ष्यामेतैश्च कारणं विना ।
लोकानां दुष्टताया हि सीमा काचिन्न विद्यते ॥११२॥

लोग विना किसी कारण के ही इन के साथ ईर्ष्या करते थे। लोगों की दुष्टता की कोई सीमा नहीं है ॥११२॥

कश्चिद् ब्रूते कुटुंबस्य भारश्चास्यै महानभूत् ।
कच्चित्तेनैव दुःखेन मृत्युरालिङ्गिता स्वयम् ॥११३॥

कोई कहता है कि इसे परिवार बड़ा बोझ था। हो सकता

हैं उस दुःख से यह स्वयं ही कुछ खा कर मर गई हो ॥११३॥

काश्चिद् गुणगुणायन्ते ललनाः परतः स्थिताः ।
अद्य प्रातर् हि दंपत्योरस्माभिः कलहः श्रुतः ॥११४॥

कुछ स्त्रियां दूर खड़ी आपस में खुसर-फुसर कर रही थीं कि आज प्रातः ही ये पति-पत्नी आपस में झगड़ रहे थे, हमने सुना था ॥११४॥

सकलैरागतैस्तत्र स्वेच्छया टिप्पणी कृता ।
सरपंचो बभाषे किं नागतः श्यामसुन्दरः ॥११५॥

वहां जो भी आये थे, सब ने अपनी-अपनी इच्छा से टीका टिप्पणी की। तब सरपंच ने पूछा कि क्या अभी तक श्याम-सुन्दर घर नहीं आया है ? ॥११५॥

आगच्छति स्म मार्गे स मुक्तः कार्यालयान्निजात् ।
पन्थाः प्रतीयते तस्मै विदूरेऽज्ञातकारणात् ॥११६॥

वह भी अपने कार्यालय से मुक्त हो कर रास्ते में आ रहा था। आज घर का रास्ता उसे किसी अज्ञात कारण से बहुत दूर प्रतीत हो रहा था ॥११६॥

गृहे कोलाहलं श्रुत्वा संभ्रान्तः श्यामसुंदरः ।
दधाव त्वरया गत्या "किं किं" पृच्छति मानवान् ॥११७॥

घर में कोलाहल को सुन कर श्यामसुन्दर घबरा गया, वह बड़ी तेज दौड़ कर गया और लोगों से पूछने लगा कि "क्या बात हुई, क्या बात हुई" ॥११७॥

शवान् स चतुरो दृष्ट्वा विललापातिदुःखितः ।
उमे ममैव दोषेण नरकोऽयं समागतः ॥११८॥

वह चार मुर्दों को देख कर बड़े दुःख से विलाप करने लगा कि हे उमा देवी ! यह नरक मेरे ही अपराध से आया है ॥११८॥

इति सप्तमः सर्गः समाप्तः



अथाष्टमः सर्गः

अन्धा किमसि पापिनि ?

O you wife, have you gone insane ?



कर्मचार्येकदा कश्चिल्लुब्धतामगमत्खलः ।
उत्कोचस्तेन चादत्तो ग्रामीणादेकदा क्वचित् ॥१॥

एक बार कोई मूर्ख कर्मचारी लोभ में आ गया । उसने कहीं एक भोले-भोले ग्रामीण से रिश्वत ले ली ॥१॥

स उवाच

वाञ्छसि कार्यसिद्धिं चेद् ग्रामीण त्वरितं कुरु ।
रूप्यकाणां शतं देहि लप्स्यसे स्वं मनोरथम् ॥२॥

उसने कहा—हे ग्रामीण ! यदि तुम अपना काम सिद्ध करवाना चाहते हो तो एक सौ रुपया जल्दी लाओ, तुम्हारा काम बन जायेगा ॥२॥

बद्धाञ्जलिर्वराकः स प्रोवाच विनयान्वितः ।
श्रीमन्तः, किं शतार्धेन कार्यं मम न सेत्स्यति ॥३॥

वह बेचारा ग्रामीण नम्रता के साथ हाथ जोड़ कर बोला-श्रीमान् जी ! क्या पचास से काम नहीं बन सकेगा ? ॥३॥

ग्रामीण उवाच

भवामि निर्धनः श्रीमन् प्रदास्यामि शतं कुतः ।
स्पृशामि भवतां पादौ दर्शयन्तु दयालुताम् ॥४॥

श्रीमान् जी ! मैं तो बहुत निर्धन हूं, सौ रुपया कहाँ से दूंगा ? आपके चरणों को छूता हूं, मुझ पर दया करें ॥४॥

भो धृष्ट, गच्छ गच्छेतः कुरु मे न शिरोव्यथाम् ।
कार्यभारो महानस्ति समयं मे बाधसे कथम् ॥५॥

वह कर्मचारी बोला—अरे धृष्ट ! यहां से चले जाओ। मेरे सिर में दर्द मत करो, मुझे बहुत काम करना है, मेरा समय नष्ट मत करो ॥५॥

दीर्घं निश्वासमादाय कक्षात्स आगतो बहिर् ।
पादाभ्यां भारवद्भ्यां च चचाल सदनं प्रति ॥६॥

उस ग्रामीण ने एक लम्बा साँस लिया और कमरे से

बाहर चला आया। अपने भारी पैरों के साथ वह घर को चल पड़ा ॥६॥

कालेन द्विगुणेनासौ प्राप्तवान् सदनं स्वकम् ।
मुखं नु क्षुधयाऽशुष्यच्छिरसि वेदनाऽभवत् ॥७॥

उसे घर पहुंचने में दुगना समय लगा। उस का मुखड़ा भूख से सूख गया था और सिर में पीडा हो रही थी ॥७॥

आगच्छन् प्रांगणे दृष्टो भार्यया व्यथितः पतिः ।
तस्या अपि मुखं शीघ्रं म्लानतामगमत्तदा ॥८॥

जब पत्नी ने अपने पीडित पति को आंगन में आता हुआ देखा तो उसका मुखड़ा भी मुरझा गया ॥८॥

खट्वायां जीर्णशीर्णायामतिष्ठात्खिन्नमानसः ।
भार्यायै यष्टिका दत्ता कोणे च स्थापिता तया ॥९॥

वह खिन्न मन से टूटी-फूटी खाट पर बैठ गया। उसने अपनी लाठी स्त्री के हाथ में दी और उसने कोने में रख दी ॥९॥

तृणेनाच्छादितं वेश्म बहुषु विवृतेष्टकम् ।
वदति स्म दशां तस्य हृदयाघातकारिणीम् ॥१०॥

उस का घर फूस से छाया हुआ था और स्थान-स्थान पर

ईंटें उखड़ी हुई थीं। वह घर हृदय पर आघात करने वाली उस की दशा को बता रहा था ॥१०॥

वर्षाबिन्दुनिपातेन चिह्नानि यानि भित्तिषु ।
दृश्यन्ते स्म तथा तानि सिङ्घाणं कायसंचितम् ॥११॥

वर्षा की बून्दें पड़ने से दीवारों पर जो चिन्ह थे वे ऐसे मालूम हो रहे थे मानो किसी गंवार के शरीर पर सींढ लगा हुआ हो ॥११॥

आच्छादनतृणं तस्य पंचवर्षपुरातनम् ।
अर्धमेव तु वर्षाया धारयितुं शशाक तत् ॥१२॥

उस पर जो घास छाया हुआ था वह अब पांच वर्ष का पुराना हो चुका था। इसलिए वह अब वर्षा का आधा पानी ही धारण कर सकता था ॥१२॥

अर्धं वर्षाजलं तस्याभ्यन्तरे पतितं सदा ।
न वेद्मि दम्पती तास्मिन् वासमकुरुतां कथम् ॥१३॥

वर्षा का आधा पानी घर के अन्दर ही पड़ता था । पता नहीं, वे पति-पत्नी उस घर में कैसे निवास करते थे ॥१३॥

वारिणो बिन्दवा वर्षाकाले चाभ्यन्तरेऽपतन् ।

मिषेणैतेन तत्सद्म दशायां तस्य रोदिति ॥१४॥

वर्षा के समय पानी की बून्दें अन्दर ही पड़ती थीं। मानो इस बहाने से वह उसकी दशा पर रोया करता था ॥१४॥

न दया दर्शिता तेन चेतनकर्मचारिणा ।
अचेतनं परं तस्य गृहं तद्दुःखदुःखितम् ॥१५॥

उसका अचेतन घर उस के दुःख से दुःखी था परन्तु चेतन कर्मचारी को उस पर दया नहीं आई ॥१५॥

अन्तिका भार्यया तस्य कटेनाच्छादिता कृता ।
क्लिन्ना वर्षाजलेनेयं पक्ष्यते भोजनं कथम् ॥१६॥

उसकी स्त्री ने अपने चूल्हे को चटाई से ढांप दिया था कि कहीं यह वर्षा के पानी से भीग न जाय अन्यथा भोजन कैसे बनाया जाएगा ॥१६॥

लम्बमानो बहिर्भित्तौ रज्जुभिरुभयाश्रितः ।
कन्थाभिरावृतो वेणुर् दर्शयति स्म तद्व्यथाम् ॥१७॥

बाहर दीवार के साथ दोनों ओर रस्सियों से थामा हुआ और गुदड़ियों से लदा हुआ बांस (बिलंग) उसकी पीडा को बता रहा था ॥१७॥

प्रांगणे पिचुमर्दस्य वृक्षो वंशक्रमागतः ।
पवनेरितशाखाभिः सान्त्वयति स्म तं भृशम् ॥१८॥

उस के आंगन में वंश-परंपरा से आने वाला नीम का पेड़

वायु से झुलाई हुई शाखाओं से मानो उसे सान्त्वना दिया करता था ॥१८॥

धेनुस्तस्य गता क्षेत्रे ग्रामण्या धनिकस्य चेत् ।
आकाशो नापतद् भूमौ सस्यं न खादितं तया ॥१९॥

यदि उस की गौ धनी नंबरदार के खेत में चली ही गई थी तो कोई आकाश धरती पर नहीं गिर गया था। खेती तो गौ ने बिलकुल नहीं खाई थी ॥१९॥

अपृच्छत्सा तदा पत्नी भर्तारं भग्नमानसम् ।
सिद्धं किमस्ति कार्यं नो विलम्बादागतो भवान् ॥२०॥

तब पत्नी ने टूटे हुए मन वाले पति को पूछा कि क्या काम सिद्ध हो गया है ? आप बड़ी देर करके आए हैं ॥२०॥

भार्योवाच

कपिला क्षुधिता कच्चित्तृषार्ता तत्र वा भवेत् ।
अन्नोदकं ग्रहीष्येऽहं कथं तया विना पते ॥२१॥

हे पतिदेव ! मेरी कपिला वहां भूखी-प्यासी होगी। मैं उस के बिना अन्न-जल कैसे ग्रहण करूंगी ? ॥२१॥

अतिशीलस्वभावा सा दोग्धुमर्हति कोऽपि ताम् ।
प्राणेभ्योऽपि प्रिया मेऽस्ति न वेद्मि कुत्र सीदति ॥२२॥

मेरी कपिला का स्वभाव बहुत शीतल है, उस से कोई भी दूध ले सकता है, मुझे वह प्राणों से भी प्यारी है। पता नहीं, इस समय वह कहां दुःख झेल रही है ॥२२॥

धेनुर्निरपराधा मे न सस्यं भक्षितं तया।
ग्रामण्येष महापापी धनोन्मादेन नीतवान् ॥२३॥

मेरी कपिला का कोई अपराध नहीं था, उसने खेती नहीं खाई थी। यह नम्बरदार बड़ा पापी है, पैसे के उन्माद में मेरी गौ को फाटक में ले गया ॥२३॥

पतिरुवाच

भार्ये सिद्धं न नः कार्यं शतं पूर्णं स याचति।
मन्यते न शतार्धेन प्रार्थितो बहुधा मया ॥२४॥

हे प्रिये ! हमारा काम सिद्ध नहीं हुआ, वह तो पूरे सौ रुपये मांगता है। मेरे द्वारा बार-बार प्रार्थना करने पर भी पचास के लिए नहीं माना ॥२४॥

एवञ्च वदतस्तस्य नेत्रयोरश्रुबिन्दवः।
निवेदयितुमाजग्मुर्निर्धनानां सुखं कुतः ॥२५॥

इस प्रकार कहते हुए उस की आंखों में आंसू उमड़ आए मानो वे यह बताने के लिये आये कि गरीबों को सुख कहां ? ॥२५॥

रुदन्तं निजभर्तारं पत्नी दृष्टवती यदा ।
शतधा हृदयं तस्या अभवन्नात्र संशयः ॥२६॥

जब पत्नी ने अपने पति को रोते हुए देखा तो उसके हृदय के सौ-सौ टुकड़े होने लगे, इसमें कोई भी संदेह नहीं ॥२६॥

भार्योवाच

क्लेशं मा कुरु भर्तस्त्वं कंकणे मम तिष्ठतः ।
प्रदेहि स्वर्णकाराय वित्तं तेनागामिष्यति ॥२७॥

हे पतिदेव ! आप दुःख न मनाएं, मेरे ये कंगण हैं, इन्हें सुनार को दे दो, इन से धन आ जायेगा ॥२७॥

पतिरुवाच

प्रदत्ते कंकणे तुभ्यं पितृभ्यां पाणिपीडने ।
विक्रेष्यामि कथं पण्य एतल्लज्जाकरं परम् ॥२८॥

पति ने कहा कि तुम्हारे माता-पिता ने विवाह के अवसर पर जो कंकण तुम्हें दिये हैं इन्हें मैं दुकान पर कैसे बेचूंगा, यह तो बड़ी लज्जा की बात होगी ॥२८॥

कालो विंशतिवर्षाणां विवाहस्यावयोर्गतः ।
अद्यापि न मया तुभ्यं प्रिये किमपि भूषणम् ॥२९॥

हमारे विवाह हुए बीस वर्ष बीत चुके हैं परन्तु मैं तुम्हारे लिए अब तक कोई भूषण बनवा कर न दे सका ॥२९॥

भार्योवाच

शरीरं भवतामास्ति कंकणयोस्तु का कथा ।
आदाय शीघ्रमेवैते प्रयाहि नगरं प्रति ॥३०॥

हे पतिदेव ! यह शरीर ही आप का है, कंगणों की तो बात ही क्या ? आप इन्हें ले कर शीघ्र ही नगर को चले जाएं ॥३०॥

गृहीत्वा कंकणे भर्ता नगरं गतवाँस्तदा ।
हट्टेऽलंकरणानां च प्राविशत्स नतेक्षणः ॥३१॥

फिर वह ग्रामीण उन कंगणों को ले कर नगर को चला गया और आंखें नीची किये हुए सराफों के बाजार में पहुँच गया ॥३१॥

स्वर्णकार उवाच

किं त्वमिच्छसि विक्रेतुं ग्रामीण वस्तु दर्शय ।
पूर्णं मूल्यं प्रदास्यामि शंकां त्वं त्यज सर्वथा ॥३२॥

सुनियार बोला कि अरे ग्रामीण ! तू क्या बेचना चाहता है ? अपनी चीज को दिखा, मैं तुम्हें पूरा-पूरा मोल दूंगा, तू शंका मत कर ॥३२॥

स्वर्णकारास्तमन्येऽपि चाजुहुवुर्बलेन ते ।
आगच्छागच्छ भो भ्रातर् विक्रेतुं त्वं किमिच्छसि ।।३३।।

दूसरे सराफ भी उसे जोर-जोर से बुलाने लगे । अरे भाई ! इधर आओ, इधर आओ, तुम क्या बेचना चाहते हो ? ।।३३।।

तत्रैकः स्वर्णकारस्तु बाहुग्राहं निनाय तम् ।
किमस्ति तेऽञ्चले बद्धं मूल्यं ब्रूहि मनोगतम् ।।३४।।

एक स्वर्णकार उसे बाहु से पकड़ कर ले गया और बोला कि तुम्हारी गांठ में क्या बंधा है ? जो मोल लेना है, बताओ ।।३४।।

ग्रामीण उवाच

एकं शतं ग्रहीष्यामि नाधिकेन प्रयोजनम् ।
गणयितुं न जानामि वंचना न भवेत्क्वचित् ।।३५।।

ग्रामीण बोला—मुझे एक सौ रुपयों की आवश्यकता है, अधिक नहीं चाहिये । मैं गिनती करना नहीं जानता हूं, मेरे साथ कोई ठगी न करना ।।३५।।

हर्षितस्वर्णकारेण गृहीते तस्य कंकणे ।
विक्रेता चेदृशस्तेन संप्राप्तो भाग्ययोगतः ।।३६।।

स्वर्णकार ने प्रसन्न हो कर उस के कंगणों को ले लिया । इस प्रकार का विक्रेता उसे भाग्य से ही मिला था ।।३६।।

मुद्राणां शतमादाय ग्रामीणस्तस्य संनिधौ ।
जगाम 'रिश्वतं' सोऽपि तस्माज्जग्राह लोलुपः ॥३७॥

वह ग्रामीण सौ रुपया लेकर उस कर्मचारी के पास पहुंच गया । उस लोभी ने भी रिश्वत के रूप में वह रुपया उस से ले लिया ॥३७॥

स उवाच

पत्रं त्वं दर्शयित्वैतन्नय धेनुं गृहं प्रति ।
कार्यं किञ्चिद् भविष्ये चेदागच्छ मम संनिधौ ॥३८॥

वह कर्मचारी उसे बोला कि तुम यह पत्र दिखा दो और अपनी गौ घर ले जाओ । आगे के लिए भी कोई काम हो तो सीधे मेरे पास आ जाना ॥३८॥

सायंकाले यदा सोऽपि लोलुपो गृहमाययौ ।
वित्तेन तेन खाद्यान्नमक्रीणात्परया मुदा ॥३९॥

सायंकाल को जब वह लोभी कर्मचारी घर आया तो वह उसी रिश्वत के धन से खाने-पीने की चीजें खरीद कर ले आया ॥३९॥

निशाया भोजनं पत्न्या स्वपत्ये परिवेषितम् ।
उद्यतो ग्रासमादातुं स्थाल्यां कीटान् स ऐक्षत ॥४०॥

पत्नी ने रात का भोजन पति को परोसा । वह ज्यों ही

ग्रास उठाने के लिये तैयार हुआ तो थाली में उसे कीड़े दिखाई दिये ॥४०॥

पतिरुवाच

अवहेलनया दुष्टे पक्वं हि भोजनं त्वया ।
चयनं न कृतं सम्यक् पिठरे धारणात् पुरा ॥४१॥

अरी दुष्टे ! तुम ने भोजन बड़ी लापरवाही से बनाया है। देगची में डालने से पहले तुम ने अच्छी तरह इस को साफ नहीं किया ॥४१॥

शूर्पो मया समानीतो वितुण्डनस्य हेतवे ।
पक्वं कीटैः सहैवान्नमन्धा किमसि पापिनि ? ॥४२॥

मैंने छांटने के लिये तुम्हें छाज भी ला कर दिया है। अरी पापिनी ! तुमने कीड़ों के साथ ही अन्न पका दिया, क्या तूं अन्धी है ? ॥४२॥

भीता भार्याऽग्रतो भूत्वा स्थालीं यदा निरीक्षते ।
नैव कीटास्तया दृष्टाः परं वक्तुं शशाक न ॥४३॥

डरती हुई पत्नी ने आगे हो कर थाली को देखा तो उसे कीड़े नहीं दिखाई दिये परन्तु वह कुछ बोल न सकी ॥४३॥

स उवाच

मुद्रां गृहाण शोभे त्वं दुग्धमानय हट्टतः ।
पिबाम्यहं पयस्तावत्पच्यते भोजनं पुनः ॥४४॥

वह कर्मचारी अपनी पुत्री शोभा को बोला—ओ शोभा ! तूं दुकान से दूध ले आ, जब तक दूसरी बार भोजन बनता है, मैं दूध ही पी लेता हूं ।।४४।।

शोभा चासौ गता शीघ्रं हट्टं दुग्धस्य हेतवे ।
मोदकान्यर्धमुद्राया अर्धमुद्रामितं पयः ।।४५।।

शोभा शीघ्र ही दूध के लिए दुकान को चली गयी। अठन्नी के लड्डू ले आई और अठन्नी का दूध ले आई ।।४५।।

धारयामास बाला सा खाद्यं तातस्य सम्मुखे ।
तोडितं मोदकं तेन मध्ये कीटान्स ऐक्षत ।।४६।।

लड़की ने दूध और लड्डू पिता के सामने रख दिये। जब उसने खाने के लिये लड्डू तोड़ा तो उस में भी उसे कीड़े दिखाई दिये ।।४६।।

चपेटेनाहता बाला पपात धरणीतले ।
पठसि नवमश्रेण्यां क्रेतुं खाद्यं न वेत्सि किम् ।।४७।।

लड़की को उसने एक चपेड़ लगाई और वह धरती पर गिर गई। वह बोला—अरी मूर्ख लड़की ! तूं नौवी श्रेणी पढ़ती है, क्या तूं खाने-पीने की चीज भी नहीं खरीद सकती ? ।।४७।।

न वेद्मि कति घस्राणां मोदकानि त्वमानयः ।
परीक्षा न कृता तत्र मुद्रा व्यर्थं विनाशिता ॥४८॥

पता नहीं, ये कितने दिनों के बने हुए लड्डू तू ले आई है। तू ने वहां अच्छी तरह देखा नहीं और एक रुपया व्यर्थ ही खो कर आ गई ॥४८॥

भयान्विता ततः पुत्री साहसेनावदत्पुनः ।
सांप्रतमेव हे तात पच्यन्ते मोदकानि हि ॥४९॥

डरी हुई पुत्री साहस करके बोली कि हे पिता जी! लड्डू तो अभी-अभी बनाये जा रहे हैं ॥४९॥

ग्राहका मम पश्यन्त्या अक्रीणन् मोदकानि च ।
न वेद्मि भवतां दृष्टौ दोषो भवति कीदृशः ॥५०॥

मेरे देखते-देखते ही ग्राहक लड्डू खरीद रहे थे। पता नहीं आप की नजर में क्या दोष है? ॥५०॥

बाला प्रत्युत्तरे दक्षा मात्रेङ्गितेन वारिता ।
चपेटेनापरेण त्वं मृतैवाथ भविष्यसि ॥५१॥

वह लड़की उत्तर-प्रत्युत्तर में बड़ी चतुर थी। माता ने उसे इशारे के साथ रोका। यदि तुझे एक चपेड़ और पड़ गई तो तू मर जाएगी ॥५१॥

नीत्वोष्ठयोः पयःपात्रं स पातुमुद्यतो यदा ।
पयसः प्रथमं कीटा लग्ना दशनवाससोः ॥५२॥

फिर उसने दूध पीने का विचार किया । ज्यों ही वह गिलास को होठों तक ले गया तो कीड़े दूध से पहले उस के होठों से चिपट गये ॥५२॥

'थू-थू' धिग् धिक् च दुग्धेऽपि कीटाः सन्ति मलीमसाः ।
ओ शोभे क्व गताऽऽगच्छ त्वामन्धां पाठयाम्यहम् ॥५३॥

थू-थू, हाय-हाय ! दूध में भी कीड़े हैं । ओ शोभा ! तू कहां गई, इधर आ । मैं तुझ अन्धी को पाठ पढ़ाऊँ ॥५३॥

चोरयन्ती पितुश्चक्षुर्दधाव प्रांगणं सुता ।
सोपानस्य च मार्गेण नाश्रावि तातभाषितम् ॥५४॥

लड़की अपने पिता की आंख बचा कर पौड़ियों के रास्ते से आंगन को दौड़ गई । उस ने पिता की बात को अनसुनी कर दिया ॥५४॥

भार्या च कंपमानाऽऽसीदश्मन्तस्य समीपतः ।
कीदृशी भयदा रात्रिरागता कर्मयोगतः ॥५५॥

पत्नी चूल्हे के पास बैठी-बैठी कांप रही थी कि पता नहीं भाग्य संयोग से कैसी भयानक रात आ गई ॥५५॥

अस्य दृष्टौ समायान्ति कीटा मम न नेत्रयोः ।
सावधाना निरीक्षेऽहं हेतुः कोऽत्र भविष्यति ॥५६॥

वह सोचने लगी कि इस की नजर में कीड़े आ रहे हैं परन्तु मुझे नहीं दिखाई देते । मैं सावधान हो कर देखती हूं कि कारण क्या है ॥५६॥

दुग्धपात्रं ततो नीत्वा ललनाऽपरकोष्ठकम् ।
सावधानतयाऽपश्यत्पायसं तत्पुनः पुनः ॥५७॥

वह नारी उस दूध के गिलास को दूसरे कमरे में ले गई और बड़ी सावधानी से दूध को बार-बार देखने लगी ॥५७॥

तस्मिँस्तु नाभवन् कीटा आसीत्तान्निर्मलं पयः ।
विस्मयं कुरुते नारी धवः कीटान् समीक्षते ॥५८॥

उस दूध में कीड़े नहीं थे, वह बिलकुल निर्मल था । नारी को बड़ा अचंभा हुआ कि पति को कीड़े क्यों दिखाई दे रहे हैं ? ॥५८॥

तले हस्तस्य सा किञ्चिदादाय स्वमुखेऽकरोत् ।
स्वादवत्तत्तयाऽबोधि पायसममृतोपमम् ॥५९॥

उसने हाथ के तले पर थोड़ा सा दूध लिया और मुंह में डाला तो वह दूध अमृत के समान स्वादिष्ट था ॥५९॥

साऽचिन्तयत्

कुशलेन गतः प्रातर् भूतग्रस्तोऽभवत्कथम् ।
कार्यालये न जानामि कृतं किं केन शत्रुणा ॥६०॥

वह सोचने लगी कि यह प्रातःकाल कुशलपूर्वक घर से गया था । कार्यालय में जा कर इसे कौन भूत चिपट गया। प्रतीत नहीं, किस शत्रु ने क्या कर दिया ॥६०॥

यथाविधि यवागूश्च पक्वा तया तदा स्त्रिया ।
अभिघार्य घृतेनैतां दधार भर्तुरग्रतः ॥६१॥

फिर स्त्री ने विधिपूर्वक खिचड़ी तैयार की और इसे घी से तर करके पति के आगे रख दिया ॥६१॥

हस्तौ विमृज्य सम्यक् स कृत्वा च चुलुकं तथा ।
आस्वादितुं यवागूं तामारेभे भीतमानसः ॥६२॥

उसने अच्छी तरह हाथ धोये और कुल्ला आदि किया फिर डरे हुए मन से उस खिचड़ी को खाने लगा ॥६२॥

आदाय ग्रासमेकं स मुखे कर्तुं यदाऽभवत् ।
तदैव पतिता ग्रासात् स्थाल्यां कीटा घृणाप्रदाः ॥६३॥

ज्यों ही वह ग्रास ले कर मुँह में डालने लगा तो उस के ग्रास से घृणा पैदा करने वाले कीड़े थाली में गिरे ॥६३॥

उत्थाप्य क्षिप्तवान् स्थालीं पत्न्याः शिरसि वेगतः ।
पापिनि किं करोषि त्वं प्रपीड्येऽहं त्वया वृथा ॥६४॥

उसने थाली बड़े जोर से पत्नी के सिर पर मारी और कहा कि अरी पापिन ! तू क्या करती है, मुझे व्यर्थ ही तंग कर रही है ॥६४॥

आघातेन तदा स्थाल्या व्रणोऽजायत मस्तके ।
धारयाऽजस्रया रक्तं तस्मात्सुस्राव भूतले ॥६५॥

थाली की चोट से पत्नी के मस्तक में घाव हो गया । उस से खून की धारा लगातार धरती पर गिरने लगी ॥६५॥

चन्द्रचारु मुखं तस्या रक्तलिप्तमदृश्यत ।
संहत्या च यथा राहोर्हिमांशुः क्षतजाप्लुतः ॥६६॥

उस का चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखड़ा खून से लिबड़ा हुआ ऐसे दिखाई देने लगा जैसे राहु की टक्कर से चांद खून से लथपथ हो गया हो ॥६६॥

क्षुधित एव सुप्तः स शय्यायां खिन्नमानसः ।
दुकूलेन शिरो बद्ध्वा भार्या विस्तरमाश्रिता ॥६७॥

वह भूखा ही खिन्न मन के साथ बिस्तर पर लेट गया । पत्नी भी दुपट्टे से अपना सिर बाँध कर बिस्तर पर चली गयी ॥६७॥

बहु प्रयतमानोऽपि निद्रां लेभे न लोलुपः ।
यत्र तत्र च सर्वत्र कीटानेव स ऐक्षत ॥६८॥

वह लोभी कर्मचारी बहुत प्रयत्न करने पर भी नींद प्राप्त न कर सका और जहां-तहां सब जगह उसे कीड़े ही कीड़े दिखाई देने लगे ॥६८॥

हताशो दुःखितो भूत्वा बभ्राम कोष्ठके ततः ।
न शान्तिर्भ्रमतस्तस्य न च शय्याश्रितस्य च ॥६९॥

वह दुःखी व हताश हो कर कमरे में घूमने लगा परन्तु उसे न घूमने में शान्ति मिल रही थी और न ही बिस्तर पर लेटने से ॥६९॥

एषाऽपि पापिनी निद्रा नायाति मम नेत्रयोः ।
जानामि नापराधं मे प्रतिकूलोऽस्ति किं विधिः ॥७०॥

वह सोचने लगा कि यह पापिन नींद भी मेरी आंखों में नहीं आ रही है । पता नहीं, मुझ से क्या अपराध हो गया है, विधाता क्यों प्रतिकूल हो गया है ॥७०॥

नेत्रे निमील्य यत्नं स निद्रार्थं बहुधाऽकरोत् ।
मनः परं ययौ तस्य क्रोशानगणितांस्तदा ॥७१॥

वह नेत्रों को बन्द करके नींद के लिये बार-बार प्रयत्न कर रहा था परन्तु उस का मन अनगिनत कोस भागा जा रहा था ॥७१॥

दीपकस्य यथा ज्वाला कंपमाना भवत्यसौ ।
युध्यमानाऽन्धकारेण तथाऽकंपत तन्मनः ॥७२॥

जैसे अन्धेरे से लड़ती हुई दीपक की ज्वाला कांपती है उसी प्रकार उसका मन काँप रहा था ॥७२॥

स्फुलिंगा अन्वभूयन्त तेन चापादमस्तकम् ।
प्रक्रमन्तस्तदा काय उत्कोचपापदूषिते ॥७३॥

वह रिश्वत के पाप से दूषित अपने शरीर में सिर से पैर तक उठती हुई चिनगारियां अनुभव करने लगा ॥७३॥

पापानलः शरीरान्तस्तस्यासीद् बहुदीपितः ।
धूमिलायां परं रात्रौ धूमस्तत्र न लक्षितः ॥७४॥

उस के शरीर के अन्दर पाप की आग बहुत भड़क रही थी परन्तु काली रात में धूंआँ दिखाई नहीं दे रहा था ॥७४॥

सुषुप्तेरागता स्वप्नं भार्या 'बडबडायितुम्' ।
स्वशय्यायां समारेभे हा हा हा, मां न ताडय ॥७५॥

उस की पत्नी जब सुषुप्ति से (वह दशा जिस में मन भी विश्राम करता है) स्वप्न अवस्था में आई तो वह अपने बिस्तर में बड़बड़ाने लगी 'हाय-हाय ! मुझे मत मारो' ॥७५॥

यामिन्याश्चरमे यामे कथंचिन्निद्रितोऽभवत् ।
शीघ्रमेव मनस्तस्य न्यमज्जत्स्वप्नवारिधौ ॥७६॥

रात के अंतिम पहर में उसे जैसे-कैसे नींद आई तो शीघ्र ही उसे स्वप्न आने लगा । ७६॥

माता जगाद तं स्वप्ने प्रत्यक्षमागता तदा ।
कथं करोषि पुत्र त्वं स्तन्यं मे लाञ्छनान्वितम् ॥७७॥

माता स्वप्न में उस के सामने आ कर बोली—अरे पुत्र ! तूं मेरे दूध को लाञ्छन क्यों लगाने लगा है ॥७७।

सोढ्वा बहूनि कष्टानि त्वामहं पर्यपोषयम् ।
श्रमार्जितेन वित्तेन सदुपायाश्रितेन च ॥७८॥

बोधितस्त्वं मया भूरि शिक्षितो जनकेन च ।
भ्रष्टाचारे न गन्तव्यं नायं भवति शोभनः ॥७९॥

मैंने अनेक कष्ट झेल कर अच्छे उपायों पर आधारित परिश्रम से कमाये हुए धन से तुझे पाला था। मैंने तुझे बार-बार समझाया था और तुम्हारे पिता जी ने भी तुम्हें यह शिक्षा दी थी कि भ्रष्टाचार के मार्ग पर नहीं जाना, यह मार्ग अच्छा नहीं होता है ॥७८॥७९॥

निन्दा भवति राष्ट्रस्य चैवंविधकुकर्मणा।
स्मरसि त्वं न किं पुत्र विश्वस्य भारतं गुरुः ॥८०॥

ऐसे खोटे कर्मों से राष्ट्र की निन्दा होती है। अरे पुत्र ! क्या तुम्हें याद नहीं है कि भारत सारे संसार का गुरु है ? ॥८०॥

उद्धाराय स्वपितॄणामाचरन्ति शुभं सुताः।
कुकर्माश्रित्य पुत्र त्वं मां निनीषसि रौरवम् ॥८१॥

पुत्र अपने पितरों का उद्धार करने के लिए अच्छे काम करते हैं परन्तु तूं रिश्वत रूपी कुकर्म का सहारा ले कर मुझे रौरव नाम के नरक में धकेलना चाहता है ॥८१॥

उत्कोचं च त्वयाऽऽदाय कुलमास्ति कलंकितम्।
पिंडदानं त्वया दत्तं ग्रहीष्याम्यग्रतः कथम् ॥८२॥

तुम ने रिश्वत ले कर कुल को कलंकित कर दिया। मैं आगे के लिये तुम से दिये हुए पिंडदान को कैसे ग्रहण करूंगी ? ॥८२॥

ग्रामीणौ दंपती स्वप्तुं नार्हतां क्षुधितौ गृहे।
आक्रान्तस्त्वामितः कीटै रोदिषि निजकर्षणे ॥८३॥

उधर वह ग्रामीण पति-पत्नी भूख के मारे नहीं सो सके और इधर तू कीड़ों से आक्रमण किया हुआ अपने कर्मों के लिये रो रहा है ॥८३॥

ताडितेयं वधूर्व्यर्थं मुधैव भर्त्सिता सुता ।
कुकर्माणि स्वयं कृत्वा कुटुम्बं तुदसे कथम् ॥८४॥

तुम ने पत्नी की व्यर्थ ताड़ना की और लड़की को भी व्यर्थ झिड़का । तुम स्वयं खोटा काम कर के अपने परिवार को क्यों तंग करते हो ? ॥८४॥

ग्रामीणं गच्छ तं प्रातः प्रत्यावर्तय तद्धनम् ।
विशुद्धाचरणेनैवं कल्याणं ते भविष्यति ॥८५॥

तुम प्रातः ही उस ग्रामीण के पास जाओ और उस का धन लौटा दो । इस प्रकार आचरण की शुद्धि से ही तेरा कल्याण होगा ॥८५॥

उन्मीलिते यदा नेत्रे नासीन्माताऽग्रतः स्थिता ।
पालयितुं तदादेशमधीरमभवन्मनः ॥८६॥

जब उस की आंखें खुलीं तो माता आगे खड़ी नहीं थी । उस का मन माता की आज्ञा का पालन करने के लिए अधीर हो उठा ॥८६॥

ग्लानिरेतादृशी जाता संभ्रान्ते तस्य मानसे ।
उड्डीय द्रष्टुमैच्छत्स ग्रामीणं तं पलद्वये ॥८७॥

उस के भटके हुए मन में ऐसी ग्लानि पैदा हो गई कि वह दो ही पल में उड़ कर उस ग्रामीण को देखने की इच्छा करने लगा ॥८७॥

प्रत्यूषसि समुत्थाय पत्नीं प्रोवाच सादरम् ।
जिगमिषामि कार्याय जलं स्नानाय धारय ॥८८॥

प्रात:काल ही उठ कर उसने अपनी पत्नी को आदर के साथ कहा कि मैं काम पर जाना चाहता हूं, स्नान के लिए पानी रखो ॥८८॥

पृच्छन् पृच्छँस्ततो लोकान्प्राप्तस्तद्ग्राममन्तरा ।
सदनं बिलभद्रस्य भवति कुत्र भोः स्थितम् ॥८९॥

लोगों से पूछता-पूछता वह उसके ग्राम में पहुंच गया । ग्राम में वह पूछने लगा, अरे भाई ! बिलभद्र का घर कहां है ? ॥८९॥

श्रीमँस्तदस्ति तद्गेहं वामाङ्गे मम सद्मनः ।
एषा कपिलवर्णा गौराजिरे तस्य वर्तते ॥९०॥

एक ग्रामीण ने कहा—श्रीमान् जी ! उसका घर इस मेरे घर

की बाईं ओर है। यह कपिल रंग की गौ उसके ही आंगन में बंधी हुई है॥९०॥

आगच्छन् स यदा दृष्टो बिलभद्रेण लोलुपः।
कल्पनावीचयस्तस्य हृदयाब्धौ समुत्थिताः॥९१॥

जब बिलभद्र ने उस लोभी कर्मचारी को आता हुआ देखा तो उसके हृदय रूपी समुद्र में कल्पना रूपी तरंगें उठने लगीं॥९१॥

कच्चिदयं समायातो ग्रहीतुमधिकं धनम्।
अथवा दर्शनं दत्तं नेतुं मे कपिलां गृहम्॥९२॥

बिलभद्र सोचने लगा कि क्या यह मुझ से और धन लेने के लिये आया है अथवा मेरी कपिला को अपने घर ले जाने के लिये दर्शन दे रहा है?॥९२॥

जीविष्यति न मे भार्या कपिलया विना क्षणम्।
ममापि जीवनं शून्यमेतया रहितं तथा॥९३॥

मेरी पत्नी कपिला के बिना पल भर भी नहीं जी सकेगी और मेरा जीवन भी इस गौ के बिना सूना हो जाएगा॥९३॥

खट्वायामर्धभग्नायां स्थित्वा चित्रं स ऐक्षत।
दारिद्र्यस्य विचित्रं तन्न दृष्टं न श्रुतं क्वचित्॥९४॥

वह लोभी कर्मचारी टूटी हुई खाट पर बैठ गया, तब उस

ने गरीबी का ऐसा चित्र देखा कि जो इस से पहले न कभी देखा था और न सुना था ॥९४॥

मानवस्योचिता भावा मानवे जागृतास्तदा ।
चिन्तयामास पापं स्वं पूर्वेद्युस्तेन यत्कृतम् ॥९५॥

तब उस मनुष्य में मनुष्य के योग्य भाव उमड़ आए। पहले दिन जो पाप उसने किया था उस के बारे में वह सोचने लगा ॥९५॥

धिगस्तु शतवारं मां पापी मत्तोऽधिकः क्वचित् ।
यत्नेनान्विष्यमाणोऽपि भूतले न भविष्यति ॥९६॥

कर्मचारी मन में बोला—मुझे सौ बार धिक्कार है, मुझ से बड़ा पापी संसार में यत्न के द्वारा ढूंढने पर भी कोई नहीं मिलेगा ॥९६॥

सक्तून् खर्परं आदाय गौर्वाहीक उवाच तम् ।
आतिथेयं दरिद्राणां स्वीकुर्वन्तु महाजनाः ॥९७॥

वह भोला-भाला किसान एक खप्पर (टूटा हुआ मिट्टी का बर्तन) में सत्तू डाल कर ले आया और उस लोभी से कहा कि महाराज ! गरीबों के अतिथिसत्कार को स्वीकार करें ॥९७॥

प्रार्थना बिलभद्रस्य स्वीकृता तेन सादरम् ।
दैवी बुद्धिर्यदाऽऽयाति मानसं निर्मलं भवेत् ॥९८॥

उस ने बिलभद्र की प्रार्थना को आदर के साथ स्वीकार कर लिया। जब दैवी बुद्धि आती है तो मन भी निर्मल हो जाता है ॥९८॥

शतस्य 'नोट'मादाय ग्रामीणाय ददौ ततः।
अश्रूणि तस्य नेत्राभ्यां पतितानि धरातले ॥९९॥

उस ने सौ का नोट लिया और ग्रामीण के हाथ पर रख दिया। उस समय उस की आंखों से धरती पर आंसू गिरने लगे ॥९९॥

एतस्यामेव खट्वायामस्मिन्नेव धरातले।
बिलभद्रस्य भार्याया न्यपतन्नश्रुबिन्दवः ॥१००॥

इसी धरती पर और इसी खाट पर बिलभद्र की पत्नी के भी आँसू गिरे थे ॥१००॥

अश्रूणां संगमेनाद्य क्षालितं तस्य कल्मषम्।
प्रायश्चित्ते कृते लोकाः प्राप्नुवन्ति शमद्भुतम् ॥१०१॥

आज आंसुओं के समागम से उस कर्मचारी के पाप धुल गये। प्रायश्चित्त कर लेने पर लोगों को अद्भुत शान्ति प्राप्त होती है ॥१०१॥

पचन्ती भोजनं भार्या गृह आसीद् भयाकुला ।
कच्चिन्न घटना रात्रेर् द्विरावृत्ता भवेदिह ॥१०२॥

घर पर भोजन पका रही पत्नी भय से व्याकुल थी कि कहीं रात की घटना की पुनरावृत्ति न हो ॥१०२॥

सद्मागत्य प्रसन्नोऽसौ भोजनार्थमुपाययौ ।
चकंपे कदलीवासौ दृष्ट्वा तं निकटागतम् ॥१०३॥

वह घर आ कर बड़ा प्रसन्न हुआ और भोजन करने के लिए पाकशाला में प्रवेश किया । उस को निकट आया हुआ देख कर पत्नी केले के पत्ते के समान कांप रही थी ॥१०३॥

सुस्वादु भोजनं भुक्तं भार्यया परिवेषितम् ।
कार्यालयं ततो यातो निजं कार्यं विचिन्तयन् ॥१०४॥

उस ने अपनी पत्नी से परोसा हुआ भोजन बड़े स्वाद से खाया और फिर अपने कार्य का ध्यान करता हुआ कार्यालय को चला गया ॥१०४॥

पतिं प्रसन्नमालोक्य सुषमा मोदमागता ।
दूरे गतं भयं तस्या यदासीन्मनसि स्थितम् ॥१०५

अपने पति को प्रसन्न देख कर सुषमा को बहुत हर्ष हुआ, उस के मन में जो भय था वह दूर हो गया ॥१०५॥

श्रुत्वा तस्मात्कथामेतां बहवो मार्गमागताः ।
स्पष्टमेव श्रुतं सर्वैर्न तथ्यं तेन गोपितम् ॥१०६॥

उससे इस कथा को सुन कर बहुत से लोग मार्ग पर आ गये। उस ने सचाई को छिपाया नहीं, सब ने स्पष्ट बात सुनी ॥१०६॥

इत्यष्टमः सर्गः समाप्तः



अथ नवमः सर्गः

अस्पृश्यः कोऽस्ति संसारे ?

Who is the untouchable ?



ऋषिभिरेकदा प्राज्ञैः सभाऽऽहूता तपोवने ।
विषया विविधास्तत्र विचारविषयं ययुः ॥१॥

एक बार बुद्धिमान् ऋषियों ने तपोवन में सभा बुलाई । वहां अनेक विषयों पर विचार किया गया ॥१॥

विषयेषु च सर्वेषु मुख्येयं मंत्रणाऽभवत् ।
"अस्पृश्यः कोऽस्ति संसारे" मतं व्यक्तं निजं निजम् ॥२॥

सब विषयों में यह मंत्रणा प्रमुख रही कि संसार में अछूत कौन होता है ? इस पर सब ने अपना-अपना मत प्रकट किया ॥२॥

ऋषयस्तत्र ये सर्वे भिन्नं भिन्नं मतं दधुः ।
दृष्टान्ताँश्च बहूनूचुः शास्त्रेभ्यस्ते पृथक् पृथक् ॥३॥

वहां जितने भी ऋषि थे उन के भिन्न-भिन्न मत थे। उन्होंने अपने पक्ष की पुष्टि में शास्त्रों से अलग-अलग बहुत से दृष्टान्त दिये ॥३॥

पूर्वो वदति यत्किंचित् प्रतिवादं परोऽकरोत् ।
उद्धृत्य वेदवाक्यानि चाप्तानां वचनं तथा ॥४॥

पहला जो कुछ बोलता था दूसरा उस का प्रतिवाद करता था। वह वेद वाक्यों का उदाहरण देता था और साथ ही आप्त पुरुषों के वचन भी बोलता था ॥४॥

अस्पृश्यो जन्मना शूद्रो भवत्येको यदाऽब्रवीत् ।
श्रुत्वैव वचनं तस्य क्षुब्धाः सर्वे महर्षयः ॥५॥

जब एक ने कहा कि जो जन्म से शूद्र होता है वही अस्पृश्य होता है तो उसके वचन को सुनते ही सब ऋषि क्षुब्ध हो गये ॥५॥

ऋषय ऊचुः

स्थीयतां स्थीयतां शीघ्रं शुश्रूषामो न ते वचः ।
देशकालविरुद्धं यन्महानर्थकरं तथा ॥६॥

ऋषि उसे बोले कि बैठ जाओ, जल्दी बैठ जाओ, हम आप के वचन नहीं सुनना चाहते। यह देश-काल के विरुद्ध है और अनर्थ करने वाला है ॥६॥

प्रमाणं नैव शास्त्रेषु कुत्रापि दृश्यते तव ।
समर्थने मतस्यास्य प्रयासो विहितो वृथा ॥७॥

आप के इस मत के समर्थन के लिए शास्त्रों में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। आपने व्यर्थ ही बोलने का प्रयास किया ॥७॥

स्थापना च मतस्यास्य कृता स्वार्थपरायणैः ।
देशकालानजानद्भिर्मानवधर्मवंचितैः ॥८॥

इस मत की स्थापना देश-काल को न जानने वाले तथा मानवधर्म से रहित स्वार्थी लोगों ने ही की है ॥८॥

लिखितं चास्ति गीतायां 'गुणकर्मविभागशः ।
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं' शंका तत्र च कीदृशी ॥९॥

गीता में यह बात लिखी हुई है कि मैंने (भगवान् ने) गुण और कर्म के अनुसार चार वर्णों की रचना की है। फिर इस संबंध में शंका कैसे हो सकती है ? ॥९॥

कोलाहलो महानासीच्छृणोत्येको न चापरम् ।
वक्ता समर्थनाभावे तस्थौ स लज्जितो यथा ॥१०॥

वहां बहुत शोर मच गया। एक की बात को दूसरा नहीं सुनता था। जब वक्ता को किसी भी ओर से समर्थन न मिला तो वह लज्जित हो कर बैठ गया ॥१०॥

प्रधानस्य पदासीनो महर्षिः 'शं' यदाऽवदत् ।
मौनेनावास्थिताः सर्वे शक्रगोष्ठ्यां यथाऽमराः ।।११।।

प्रधान के पद पर बैठे हुए महर्षि ने जब 'शान्तिः' शब्द कहा तो सब इस प्रकार चुप हो कर बैठ गये जैसे इन्द्र की सभा में देवता लोग बैठते हैं ।।११।।

प्रतीयते स्म साक्षात्स ब्रह्मा वेदमुखो यथा ।
सकलं वाङ्मयं तेन हृदय एव धारितम् ।।१२।।

वह वेदों का उच्चारण करने वाला साक्षात् ब्रह्मा प्रतीत होता था। उसने सारे शास्त्रों को हृदय में धारण किया हुआ था ।।१२।।

नेत्रयोर् ज्योतिषा तस्य बभौ तत्स्थंडिलं तथा ।
प्रकाशेन यथाऽर्कस्य भासते व्योममंडलम् ।।१३।।

उस के नेत्रों के प्रकाश से उस मंडप की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे सूर्य के प्रकाश से आकाश-मंडल की शोभा होती है ।।१३।।

अकुर्वन् पादयोः स्पर्शं लम्बमाना गले जटाः ।
उन्नते च भ्रुवौ तस्यादर्शयेतां तपोबलम् ।।१४।।

गले में लटकी हुई जटाएं उसके पैरों का स्पर्श कर रही थीं और उसकी ऊंची-ऊंची भौहें उसके तपस्या के बल को दिखा रही थीं ।।१४।।

विशालेन ललाटेन लक्ष्यते स्म विशिष्टता ।
व्यक्तित्वमीदृशं तस्य यथा साक्षाद् बृहस्पतिः ॥१५॥

उसके चौड़े मस्तष्क से उसकी विशेषता मालूम हो रही थी। उसका ऐसा व्यक्तित्व था मानो साक्षात् बृहस्पति हो ।।१५।।

मस्तके बलयास्तिस्रो वेदत्रयीमदर्शयन् ।
वक्ता कोऽपि न तस्याग्रे ततो वक्तुमपारयत् ॥१६॥

उसके मस्तक पर जो तीन रेखाएं थीं वे मानो तीन वेद थे। उसके सामने कोई भी वक्ता बोल नहीं सकता था ।।१६।।

भ्रुकुटिभ्यां स दुर्वासा लक्ष्यते स्म महामतिः ।
जटाभिश्चैव दीर्घाभिः साक्षादेव महेश्वरः ॥१७॥

वह भौहों से महामति दुर्वासा मालूम होता था और लम्बी-लम्बी जटाओं से साक्षात् महादेव प्रतीत होता था ।।१७।।

महर्षेः शुशुभातेऽथ पादयोस्तस्य पादुके ।
अक्षोटस्य च काष्ठेन निर्मिते विज्ञशिल्पिना ॥१८॥

उस महर्षि के पैरों में खड़ाऊं शोभा दे रहे थे,

उन्हें चतुर शिल्पी ने अखरोट की लकड़ी से बनाया था ॥१८॥

शाटका भूर्जपत्रस्य दुकूलं मृगचर्मणः ।
भूषयतो वपुस्तस्य महर्षेः कांचनोपमम् ॥१९॥

उसके सोने जैसे शरीर को भूर्जपत्र की धोती और मृगचर्म का दुपट्टा शोभायमान कर रहे थे ॥१९॥

निर्णयं स यदा दातुं सिंहासनात्समुत्थितः ।
मौनस्य शासनं तत्राभवत्सकलमंडपे ॥२०॥

जब वह निर्णय देने के लिए सिंहासन से उठा तो वहां सारे मंडप में चुप्पी छा गई ॥२०॥

नर्षयः केवलं तत्र वृक्षाश्रितखगा अपि ।
महर्षेर्वचनं श्रोतुं स्वश्रोत्राणि समर्पयन् ॥२१॥

केवल ऋषि ही नहीं, बल्कि पेड़ों पर बैठे हुए पक्षियों ने भी महर्षि का वचन सुनने के लिए अपने कान लगा दिए ॥२१॥

दक्षिणतः स्थितः सिंह उत्तरतो मृगास्तथा ।
नाधिकं पंचकिष्कुभ्यो दूरत्वमुभयोरभूत् ॥२२॥

दक्षिण की ओर शेर बैठा था और उत्तर की ओर हिरण

बैठे थे। इन दोनों की दूरी पांच हाथ से अधिक नहीं थी ॥२२।

अभवत्कीदृशः स्नेहो जीवानां च परस्परम् ।
अस्त्वेतन्न कथं नाम राष्ट्रे धर्मानपेक्षिते ॥२३॥

देखो, प्राणियों का आपस में कितना प्यार था! भला एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में ऐसा हो भी क्यों न! ॥२३॥

वक्तुं यदाऽधरौ तेनोद्घाटितावृषिणा तदा ।
रश्मयः शुभ्रदन्तानां मुनीनां निकरेऽपतन् ॥२४॥

जब उस ऋषि ने बोलने के लिए होंठ खोले तो उस के सफेद दांतों की किरणें मुनियों के समूह पर पड़ने लगी ॥२४॥

भाति नभसि विद्युच्च पयोदपटले यथा ।
एवमेव हि दन्ताभा बभौ काये तपस्विनाम् ॥२५॥

जैसे आकाश में बादलों के पटल पर बिजली शोभा देती है उसी प्रकार तपस्वियों के शरीर पर महर्षि के दांतों की चमक शोभा दे रही थी ॥२५॥

महर्षिरुवाच

शृण्वन्तु सकला लोकाः सभायामास्थिता इह ।
अपाकरोमि वः शंकां प्रदाय निर्णयं मम ॥२६॥

सभा में बैठे हुए सब मुनियो ! सुनिये, मैं अपना निर्णय देकर आपकी शंका को दूर करता हूं ॥२६॥

प्रथमं शूद्रशब्दस्य व्युत्पत्तिं दर्शयामि वः ।
शंका च भवतामेवं द्रुतं दूरे गमिष्यति ॥२७॥

मैं पहले आप को शूद्र शब्द की व्युत्पत्ति बताता हूं, इससे आप की शंका शीघ्र ही दूर हो जायगी ॥२७॥

'शुचेर्दश्च' च सूत्रोऽयमुणादिषु विलोक्यते ।
सिध्यति शूद्रशब्दोऽयमेतेनैव तपस्विनः ॥२८॥

हे तपस्वियो ! उणदियों में 'शुचेर्दश्च' सूत्र है, उसी से शूद्र शब्द बनता है ॥२८॥

पाणिनिमुनिना धातुः 'शुच्' शोकेऽथ प्रकीर्तितः ।
उपर्युक्तेन सूत्रेण शूद्रस्तस्माद् विरच्यते ॥२९॥

पाणिनि मुनि ने 'शुच् शोके' धातु लिखा है। उस धातु से ऊपर लिखे सूत्र के द्वारा शूद्र शब्द बन जाता है ॥२९॥

दादेशे च चकारस्य प्रत्ययेनागते रकि ।
उपधायाः कृते दीर्घे सिद्धः शूद्रो भवत्ययम् ॥३०॥

च के स्थान में द का आदेश होने पर, रक् प्रत्यय के आनें पर तथा उपधा को दीर्घ कर देने पर यह शूद्र शब्द सिद्ध होता है ॥३०॥

शोचति यः स्वकार्येभ्यः 'करोमि न शुभान्यहम्' ।
स एव कथ्यते शूद्रो नान्यो भवति कश्चन ॥३१॥

जो कर्मों के लिए शोक करता है कि मैं अच्छे कर्म नहीं कर रहा हूं उसी को शूद्र कहते हैं। अन्य कोई भी शूद्र नहीं होता है ॥३१॥

जन्मना सकलाः शूद्रा ब्राह्मणाः गुणकर्मभिः ।
उत्तमाधमवर्णत्वं कर्मभिरेव भाव्यते ॥३२॥

जन्म से सब शूद्र होते हैं, गुण और कर्म से ब्राह्मण बनते हैं।वर्ण का ऊंचा या नीचा होना केवल कर्मों से ही जाना जाता है ॥३२॥

कश्चिद् भेदो न कायेऽस्ति जन्मकाले शरीरिणाम् ।
कर्माणि भिन्नभिन्नानि भेदं कुर्वन्ति देहिषु ॥३३॥

जन्मकाल में मनुष्यों के शरीर में कोई भेदभाव नहीं होता। भिन्न-भिन्न कर्म ही प्राणियों में भेद करते है ॥३३॥

प्राणिनां जन्मकाले हि समानानींद्रियाणि च ।
तेन कुर्वन्ति भेदं ये भवन्ति तेऽविवेकिनः ॥३४॥

जन्मकाल में सब प्राणियों की इंद्रियां समान होती हैं। इस लिए जन्म के आधार पर जो लोग भेदभाव करते हैं वे अज्ञानी होते हैं ॥३४॥

वदति जन्मना शूद्रमिह योऽन्धमतिर्नरः ।
भूत्वा मिथ्याभिमानी स हन्ति राष्ट्रं स्वभावतः ॥३५॥

जो अल्पबुद्धि मनुष्य किसी को जन्म से शूद्र मानता है वह मिथ्याभिमानी बन कर स्वभाव से ही राष्ट्र को क्षति पहुंचाता है ॥३५॥

अस्पृश्यश्चास्ति को लोके सांप्रतं कथ्यते मया ।
निर्णयो मे सदैवायं सर्वैर्मान्यो भविष्यति ॥३६॥

अब मैं बताऊंगा कि संसार में अस्पृश्य कौन होता है, यह मेरा निर्णय सब को मान्य होगा ॥३६॥

लेखका अभवँस्तत्र महर्षेर् भाषणस्य ये ।
लेखनस्य गतिस्तेषामद्भुतैव व्यलोक्यत ॥३७॥

महर्षि के वक्तव्य को लिखने वाले जो लेखक वहां पर थे उनके लिखने की गति अद्भुत थी ॥३७॥

पश्चात्ते निःसृतं शब्दं पूर्वमेवालिखन् बुधाः ।
साक्षात्सरस्वती तेषां लेखन्यामवसद्यथा ॥३८॥

महर्षि के मुंह से शब्द अभी निकलता भी नहीं था और वह पहले ही लिख लेते थे। मानों उनकी लेखनी में साक्षात् सरस्वती का निवास था ॥३८॥

लिलिखुर्भूर्जपत्रेषु लेखन्या चन्दनस्य ते ।
गैरिकस्य मसी रक्ता काष्ठपात्रेष्वलंकृता ॥३९॥

वे चन्दन की लेखनी से भुर्जपत्रों पर लिख रहे थे। लकड़ी के पात्रों में गेरू की लाल स्याही सजी हुई थी ॥३९॥

महर्षिरुवाच

अयमुच्चश्च नीचोऽयं भेदं करोति जन्मना ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स स्वयं नरः ॥४०॥

महर्षि बोले कि जो मनुष्य जन्म को आधार मान कर ऊंच-नीच का भेद भाव करता है वह स्वयं ही संसार में अछूत होता है ॥४०॥

राष्ट्रहितमनादृत्य साधयति निजं हितम् ।
नैतस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ॥४१॥

जो मनुष्य राष्ट्र के हित का अनादर कर के अपने व्यक्ति-

गत हित की साधना करता है संसार में उससे बढ़ कर कोई अछूत नहीं होता ॥४१॥

कुरुते राष्ट्रविद्रोहं वामेनाचरणेन यः ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नराधमः ॥४२॥

जो मनुष्य विपरीत आचारण के द्वारा राष्ट्र के साथ द्रोह करता है वही संसार में नीच और अछूत होता है ॥४२॥

लोभं धनस्य कृत्वा यो भेदं ददाति चारये ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नराधमः ॥४३॥

जो मनुष्य धन का लोभ कर के शत्रु को राष्ट्र का भेद दे देता है वह संसार में नीच और अछूत होता है ॥४३॥

स्वार्थस्य यो वशे भूत्वा चेहते राष्ट्रखण्डनम् ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नराधमः ॥४४॥

जो मनुष्य स्वार्थ के वश में होकर राष्ट्र का विघटन करना चाहता है वह संसार में नीच और अछूत होता है ॥४४॥

आस्था यस्य च नैवास्ति स्वराष्ट्रेऽखंडिते तथा ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नराधमः ॥४५॥

जिस मनुष्य को अपने अखंड राष्ट्र पर विश्वास न हो वह संसार में पतित तथा अछूत होता है ।।४५।।

विवादैः प्रान्तभाषाणां राष्ट्रं करोति दुर्बलम् ।
नैतस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ।।४६।।

जो प्रान्त तथा भाषाओं के झगड़ों से राष्ट्र को कमजोर करता है उस से बढ़ कर संसार में कोई भी अछूत नहीं होता है ।।४६।।

संकटे यश्च राष्ट्रस्य मस्तकं नैव दित्सति ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नराधमः ।।४७।।

जो राष्ट्र के संकट में अपना बलिदान नहीं देना चाहता है वही मनुष्य संसार में नीच और अछूत होता है ।।४७।

अन्नोदकं स्वराष्ट्रस्य भुक्त्वाऽपि नेहते हितम् ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नराधमः ।।४८।।

जो मनुष्य अपने राष्ट्र के अन्न-जल का भोग करके भी इस का हित नहीं चाहता है वही मनुष्य संसार में नीच और अछूत होता है ।।४८।।

याचते स्वाधिकारान् यः पङ्गुः कर्तव्यपालने ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स पुमान् ध्रुवम् ।।४९।।

जो मनुष्य अपने अधिकारों की माँग तो करता है परन्तु

राष्ट्र के प्रति कर्तव्य-पालन में सदा पीठ दिखाता है वह आदमी निश्चय ही संसार में अछूत होता है ॥४९॥

पालयति न कर्तव्यं नागरिकस्य यो नरः ।
भवति स नरोऽस्पृश्यः संदेहो नात्र विद्यते ॥५०॥

जो मनुष्य एक अच्छे नागरिक के कर्तव्य का पालन नहीं करता है वह अछूत होता है, इस में कोई भी संदेह नहीं है ॥५०॥

यस्मिन् वसति राष्ट्रे यस्तस्यैव कुरुतेऽहितम् ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नराधमः ॥५१॥

जो मनुष्य जिस राष्ट्र में निवास करता है और उसी की बुराई करता है वह मनुष्य संसार में नीच और अछूत होता है ।।५१।

विश्राम्यति तरोर्यस्य छायायां क्लान्तमानवः ।
परशुना छिनत्ति तं स एवास्पृश्य उच्यते ॥५२॥

जो थका हुआ मनुष्य जिस पेड़ की छाया में विश्राम करता है और फिर उसी को कुल्हाड़े से काट देता है वही मनुष्य अछूत होता है ।।५२।।

दहति राष्ट्रसंपत्तिं दुष्टो यश्च प्रमादतः ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स पुमान् ध्रुवम् ॥५३॥

जो दुष्ट प्रमाद से राष्ट्र की संपत्ति को फूंकता है वह मनुष्य निश्चय ही संसार में अछूत होता है ॥५३॥

प्रयाति यो दुराचारे सदाचारं न सेवते ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स पुमान् ध्रुवम् ॥५४॥

जो सदाचार को छोड़ कर दुराचार के मार्ग पर चलता है वही मनुष्य संसार में अछूत होता है ॥५४॥

पश्यति नात्मदोषान् यो निन्दति चापरान् सदा ।
स एव मानवो लोके बुधैरस्पृश्य उच्यते ॥५५॥

जो अपने दोषों को नहीं देखता है और दूसरों की सदा ही निन्दा करता है, संसार में बुद्धिमान् उसी मनुष्य को अछूत कहते हैं ।।५५॥

असत्यं यः सदा ब्रूते निन्दति सत्यवादिनम् ।
नरः स एव संसारे बुधैरस्पृश्य उच्यते ॥५६॥

जो मनुष्य स्वयं सदा झूठ बोलता है और सच बोलने वाले की निन्दा करता है, संसार में बुद्धिमान् लोग उसी मनुष्य को अछूत कहते है ॥५६।

यश्चोरयति वस्तूनि परेषां लोभमोहितः ।
नरः स एव संसारे बुधैरस्पृश्य उच्यते ॥५७॥

जो मनुष्य लोभ में आकर दूसरों की वस्तुओं को चुराता है,

संसार में बुद्धिमान् लोग उसी मनुष्य को अछूत कहते हैं ॥५७॥

जन्मनश्च प्रदातारौ पितरौ यो न सेवते ।
नरः स एव संसारे बुधैरस्पृश्य उच्यते ॥५८॥

जो मनुष्य जन्म देने वाले माता-पिता की सेवा नहीं करता है, बुद्धिमान् लोग संसार में उसी मनुष्य को अछूत कहते हैं ॥५८॥

पश्यति क्रूरदृष्ट्या यः पितरौ क्रोधभावतः ।
नरः स एव संसारे बुधैरस्पृश्य उच्यते ॥५९॥

जो मनुष्य क्रोध में आकर अपने माता-पिता को क्रूरदृष्टि से देखता है, पंडित आदमी उसी मनुष्य को संसार में अछूत कहते हैं ॥५९॥

पूर्वमभोजयित्वा यः पितरौ खादति स्वयम् ।
नरः स एव संसारे बुधैरस्पृश्य उच्यते ॥६०॥

जो अपने माता-पिता को पहले न खिला कर स्वयं खा लेता है, बुद्धिमान् लोग संसार में उसी मनुष्य को अछूत कहते हैं ॥६०॥

ज्येष्ठानां कुरुते नैव चाभिमानात्समादरम् ।
नरः स एव संसारे बुधैरस्पृश्य उच्यते ॥६१॥

जो मनुष्य अभिमान के कारण अपने से बड़ों का मान नहीं करता है पंडित आदमी उसी मनुष्य को संसार में अछूत कहते हैं ॥६१॥

गुरुं विद्याप्रदातारमाद्रणोति न यो नरः ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नराधमः ॥६२॥

जो मनुष्य विद्या देने वाले अपने गुरु का आदर नहीं करता है वही मनुष्य संसार में नीच और अछूत होता है ॥६२॥

कूटेन विक्रयं कृत्वा वञ्चति ग्राहकाँश्च यः ।
स एव मानवोऽस्पृश्यः संसारे प्रोच्यते बुधैः ॥६३॥

जो मनुष्य छल-कपट से चीजें बेच कर के ग्राहकों को ठगता है उसी मनुष्य को बुद्धिमान् लोग संसार में अछूत कहते हैं ॥६३॥

खाद्येषु च कुवस्तूनि मेलयत्यर्थलोलुपः ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नराधमः ॥६४॥

जो मनुष्य धन के लोभ से खाने-पींने की चीजों में गन्दी वस्तुओं को मिलाता है वही नीच मनुष्य संसार में अछूत होता है ॥६४॥

व्यर्थञ्च कुरुते द्वेषं भ्रातृभिरर्थलोलुपः ।
स एव मानवोऽस्पृश्यः संसारे प्रोच्यते बुधैः ॥६५॥

जो मनुष्य धन के लोभ में अपने भाइयों से व्यर्थ ही द्वेष

करता है, बुद्धिमान् लोग संसार में उसी मनुष्य को अछूत कहते हैं ।।६५।।

दायादं हरते भ्रातुः पतितः पापकर्मणि ।
स एव मानवोऽस्पृश्यः संसारे प्रोच्यते बुधैः ।।६६।।

पाप कर्म में पड़ा हुआ जो मनुष्य अपने भाई की जायदाद को छीन लेता है, बुद्धिमान् लोग उसी मनुष्य को संसार में अछूत कहते हैं ।।६६।।

शरीरं यस्य पूतं न मनो नास्ति च निर्मलम् ।
स एव मानवोऽस्पृश्यः संसारे प्रोच्यते बुधैः ।।६७।।

जिस का न शरीर पवित्र हो और न मन निर्मल हो, बुद्धिमान् लोग संसार में उसी मनुष्य को अछूत कहते हैं ।।६७।।

सूर्योदये च यः शेते तथा चास्तोन्मुखे रवौ ।
स एव मानवोऽस्पृश्यः संसारे प्रोच्यते बुधैः ।।६८।।

जो सूर्योदय काल में और सूर्यास्त के समय में सोता है, बुद्धिमान् लोग उसी मनुष्य को संसार में अछूत कहते हैं ।।६८।।

विना स्नानादिकर्माणि खादति प्रातरेव यः ।
स एव मानवोऽस्पृश्यः संसारे प्रोच्यते बुधैः ।।६९।।

जो मनुष्य विना स्नान आदि किये प्रात:काल ही खाने बैठ जाता है, बुद्धिमान् लोग उसी मनुष्य को संसार में अछूत कहते है ॥६९॥

भक्षयति च योऽमेध्यमन्नं जिह्वावशे स्थितः ।
स एव मानवोऽस्पृश्यः संसारे प्रोच्यते बुधैः ॥७०॥

जो जीभ के वशीभूत होकर अपवित्र अन्न को खाता है, बुद्धिमान् लोग उसो मनुष्य को अछूत कहते हैं ॥७०।

कुरुते मदिरापानं मानवो यश्च दुर्मतिः ।
अस्पृश्यः सकले लोके केवलं स नरः स्मृतः ॥७१॥

जो दुर्बुद्धि मनुष्य मद्यपान करता है केवल वही मनुष्य संसार में अछत कहलाता है ॥७१॥

पश्यति यः कुनेत्रेण परेषां च स्त्रियः खलः ।
अस्पृश्यः सकले लोके केवलं स नरः स्मृतः ॥७२॥

जो दुष्ट मनुष्य पराई स्त्री को बुरी दृष्टि से देखता है केवल वही मनुष्य संसार में अछूत समझा जाता है ॥७२॥

अपशब्दान् मुखाद् ब्रूते चित्ते दधाति विक्रियाम् ।
अस्पृश्यः सकले लोके केवलं स नरः स्मृतः ॥७३॥

जो मनुष्य मुंह से गन्दे शब्द बोलता है और जिसका

मन सदा विकारों में भटकता रहता है केवल वही मनुष्य संसार में अछूत समझा जाता है ।।७३।।

प्रतिवासे वसन्तं यः पीडयति नरं कुधीः ।
अस्पृश्यः सकले लोके केवलं स नरः स्मृतः ।।७४।।

जो दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य अपने पड़ोसी को पीड़ित करता है केवल वही मनुष्य संसार में अछूत समझा जाता है ।।७४।।

कृतज्ञो नोपकाराणां योऽस्ति धृष्टस्वभावतः ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नरो ध्रुवम् ।।७५।।

जो मनुष्य धृष्ट स्वभाव के कारण उपकारों का कृतज्ञ नहीं होता है, निश्चय ही वह आदमी संसार में अछूत होता है ।।७५।।

पीडितं मानवं दृष्ट्वा न चित्तं यस्य दूयते ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नरो ध्रुवम् ।।७६।।

किसी मनुष्य को पीड़ित देख कर जिसका मन दुःखी नहीं होता है वह निश्चय ही संसार में अछूत होता है ।।७६।।

पालयति न कर्तव्यं कर्माणि सन्नियोजितः ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नरो ध्रुवम् ।।७७।।

जो काम पर लगाया हुआ अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता वह मनुष्य निश्चय ही संसार में अछूत होता है ॥७७॥

कुरुते नातिथेर्मानमागतस्य गृहे निजे ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नरो ध्रुवम् ।७८॥

जो मनुष्य घर में आए हुए अतिथि का मान नहीं करता वह निश्चय ही सारे संसार में अछूत होता है ॥७८॥

कस्याचित्कार्यसिद्धौ च विघ्नं यः कुरुते शठः ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नरो ध्रुवम् ॥७९॥

जो दुष्ट आदमी किसी की कार्यसिद्धि में रोड़ा अटकाता है वह निश्चय ही सारे संसार में अछूत होता है ॥७६॥

वापीकूपतडागानां दूषितं कुरुते जलम् ।
अस्पृश्यः सकले लोके भवति स नरो ध्रुवम् ॥८०॥

जो मनुष्य बौड़ी, कूआं या तालाब के पानी को गंदा करता है वह मनुष्य निश्चय ही संसार में अछूत होता है ॥८०॥

ऋणं परेभ्य आदाय न प्रत्यावर्तने मतिः ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ॥८१॥

जो दूसरों से ऋण लेकर उसे लौटाता नहीं है संसार में उस

से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता है ।।८१।।

न्यासं कस्यचिदादाय लुब्धो दातुं न वाञ्छति ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ।।८२।।

जो लोभी मनुष्य किसी की अमानत को ले कर वापस नहीं देना चाहता, संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता है ।।८२।।

मार्गं न दर्शयत्यन्धं न ब्रूते स्नेहपूर्वकम् ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ।।८३।।

जो मनुष्य अन्धे को रास्ता नहीं दिखाता है और न उस से प्यार के साथ बोलता है संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता है ।।८३।।

विनयं नैव जानाति परुषं भाषते तथा ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ।।८४।।

जो नम्रता को नहीं जानता तथा कठोर बोलता है संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता है ।८४।।

य उच्छिष्टं निजं पापो भोजयत्यन्यमानवान् ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ।।८५।।

जो पापी मनुष्य अपनो जूठन दूसरे लोगों को खिलाता है संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता है ॥८५॥

विधायोपकृतिं पश्चात्पश्चात्तापसमन्वितः ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ॥८६॥

जो किसी का उपकार करके पीछे से पछताता है संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता ॥८६॥

सत्यपि वस्तुनि ब्रूते नेति नेति सदा च यः ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ॥८७॥

जो वस्तु के होते हुए भी किसी को इन्कार कर देता है संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता ॥८७॥

पालयति न कर्तव्यमालस्याद् वा प्रमादतः ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ॥८८॥

जो आलस्य या प्रमाद से अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता संसार में उससे बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता ॥८८॥

भिन्नं भिन्नं च यो याति मनसि वाचि कर्मणि ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ॥८९॥

जिस का मन, वचन और कर्म एक जैसा नहीं होता, संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता है ॥८९॥

मारयति विषं दत्त्वा यः कांचिद् वित्तलोभतः ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ॥९०॥

जो धन के लोभ में किसी को जहर दे कर मार देता है संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता ॥९०॥

निन्दति धर्मशास्त्राणि नेहते धर्मपद्धतिम् ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ॥९१॥

जो धर्मशास्त्रों की निन्दा करता है और धर्म के मार्ग पर चलना नहीं चाहता है संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता ॥९१॥

ईश्वरं मन्यते नैव संसृतेः कारणं परम् ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्यः प्रोच्यते भुवि ॥९२॥

जो संसार के परम कारण भगवान् को नहीं मानता है संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता ॥९२॥

प्रयातुं यः सतां मार्गे नेहते दुःस्वभावतः ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्योऽस्ति धरातले ॥९३॥

जो अपने दुष्ट स्वभाव के कारण सज्जन मनुष्य के मार्ग पर नहीं चलना चाहता है इस धरती पर उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता ॥९३॥

संस्कृतिं निजदेशस्य तिरस्करोति यो नरः ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्योऽस्ति धरातले ॥९४॥

जो मनुष्य अपने देश की संस्कृति का तिरस्कार करता है संसार में उस से बढ़ कर कोई अछूत नहीं होता ॥९४॥

सभ्यतां निजदेशस्य त्यक्त्वा गृह्णाति योऽपराम् ।
न तस्मादधिकः कश्चिदस्पृश्योऽस्ति धरातले ॥९५॥

जो अपने देश की सभ्यता को छोड़ कर दूसरी सभ्यता को ग्रहण कर लेता है संसार में उस से बढ़ कर कोई भी अछूत नहीं होता ॥९५॥

श्रावं श्रावमृषेस्तस्य मर्यादां ते सभासदः ।
आसन्नत्यंतसंतुष्टाः सकला मानसे निजे ॥९६॥

उस सभा में बैठने वाले सब लोग महर्षि की की मर्यादा को सुन

कर अपने मन में अत्यंत प्रसन्न हो रहे थे ।।९६॥

समस्या जटिला चेयं समाधत्ता महर्षिणा ।
देशकालानुसारं हि प्रदाय निर्णयं शुभम् ।।९७।।

वे सोच रहे थे कि महर्षि ने देश-काल के अनुसार अपना निर्णय देकर अस्पृश्यता की इस जटिल समस्या को सुलझा दिया ।।९७।।

मानवा न करिष्यन्ति भविष्य उच्चनीचयोः ।
भेदं जन्म समाश्रित्य पूर्वकाले यथा दधुः ।।९८।।

भविष्य में लोग जन्म को आधार मान कर ऊंच-नीच का भेद नहीं करेंगे जैसा पहले करते थे ।।९८।।

अन्वभवँश्च ते सर्वे भारहीनं मनो निजम् ।
यथाऽनुभवति स्नात्वा शरीरं मानवो लघु ।।९९।।

वे सब अपने मन को भार से मुक्त समझ रहे थे जैसे मनुष्य स्नान कर के शरीर को हल्का अनुभव करता है ।।९९।।

सर्वतः पुष्पवर्षाऽसीत्तेजःपुंजे तपस्विनि ।
कृतार्थतां प्रणीताः स्म शंकां चेमां निरस्य नः ।।१००।।

तेज के पुंज उस तपस्वी पर सब ओर से फूलों की वर्षा हो

रही थी। सब कह रहे थे कि इस ने हमारी शंका को दूर कर के हमें कृतार्थ कर दिया ।।१००।।

श्रुत्वा सभासदः सर्वे भरद्वाजस्य निर्णयम्।
वदन्तो धन्य धन्येति स्वाश्रमाणि ययुस्ततः ॥१०१॥

सभी सभासद भरद्वाज के निर्णय को सुन कर "महर्षि धन्य हैं, धन्य हैं" ऐसा कहते हुए अपने-अपने आश्रमों को चले गये ।।१०१।।

इति नवमः सर्गः समाप्तः



अथ दशमः सर्गः

हरिजनो भवाम्यहम्

All are harijans.



हरिणा जन्म दत्तं मे पालयति हरिश्च माम् ।
हारिष्यति हरिश्चैव हरिजनो भवाम्यहम् ॥१॥

मुझे हरि ने जन्म दिया है, हरि मेरी पालना करता है और हरि ही मुझे हर कर ले जाएगा, मैं हरिजन हूं ॥१॥

हरीच्छयाऽऽगतो विश्वे जीवामि च हरीच्छया ।
हरीच्छया मरिष्यामि हरिजनो भवाम्यहम् ॥२॥

मैं हरि की इच्छा से संसार में आया हूं, हरि की इच्छा से जी रहा हूं और हरि की इच्छा से ही मर जाऊंगा, मैं हरिजन हूं ॥२॥

हरिर्वसति मे चित्ते ध्यायाम्यहं हरिं सदा ।
हरिं विना न जीवामि हरिजनो भवाम्यहम् ॥३॥

हरि मेरे चित्त में निवास करता है और मैं हरि का ही सदा ध्यान करता हूं। मैं हरि के बिना जी नहीं सकता, मैं हरिजन हूं ॥३॥

हरिर्वसति मे श्वासे प्रश्वासे च हरिस्तथा ।
हरिश्च सकले काये हरिजनो भवाम्यहम् ॥४॥

मेरे सारे शरीर में हरि निवास करता है, मेरे श्वास और प्रश्वास में भी हरि ही निवास करता है, मैं हरिजन हूं ॥४॥

हरिणा रच्यते सृष्टिर्हरिणा पाल्यते तथा ।
हरिणा ह्रियते चेयं हरिजनो भवाम्यहम् ॥५॥

हरि ही सृष्टि की रचना, पालना तथा संहार करता है, मैं हरिजन हूं ॥५॥

हरिणा रचितं व्योम हरिणा रचिता धरा ।
हरिणैव कृतं सर्वं हरिजनो भवाम्यहम् ॥६॥

हरि ने ही आकाश की रचना की और हरि ने ही पृथ्वी की रचना की है। सब कुछ हरि ने ही बनाया है, मैं हरिजन हूं ॥६॥

हरिणा रचितश्चन्द्रो हरिणैव दिवाकरः ।
हरिणा रचितास्तारा हरिजनो भवाम्यहम् ॥७॥

हरि ने चांद बनाया है, हरि ने सूर्य बनाया है और हरि ने ही तारों की रचना की है, मैं हरिजन हूं ॥७॥

हरिणा रचिता रात्रिर्हरिणा दिवसं तथा ।
हरेरेव कृपा सर्वा हरिजनो भवाम्यहम् ॥८॥

हरि ने रात बनाई है, हरि ने ही दिन बनाया है । यह सब हरि की ही कृपा है, मैं हरिजन हूं ॥८॥

हरिणा रचिता शैलास्तुङ्गशृंगसमान्विताः ।
कीलकवद्धरां धर्तुं हरिजनो भवाम्यहम् ॥९॥

हरि ने ही ऊंची-ऊंची चोटियों वाले इन पहाड़ों की रचना की है । मानों यह पहाड़ उस ने धरती को धारण करने के लिये कीले बनाएं हैं, मैं हरिजन हूं ॥९॥

हरिणा फलदा वृक्षा रचिताः प्राणिहेतवे ।
जनयति हरिर्बीजं हरिजनो भवाम्यहम् ॥१०॥

हरि ने ही प्राणियों के हित के लिए फलदायक वृक्षों की

रचना की है, हरि ही बीज को पैदा करता है, मैं हरिजन हूं ॥१०॥

हरिर्वसति बीजेषु हरिः पुष्पेषु विद्यते ।
शाखास्वपि हरेः सत्ता हरिजनो भवाम्यहम् ॥११॥

हरि बीज में है, हरि फूल में हैं और शाखाओं में भी हरि है, मैं हरिजन हूं ॥११॥

हरिणा जंगमाः सृष्टा हरिणा रचिता जडाः ।
हरिणा सकलं सृष्टं हरिजनो भवाम्यहम् ॥१२॥

हरि ने जड़ और चेतन की रचना की है, हरि ने ही सब कुछ बनाया है, मैं हरिजन हूं ॥१२॥

सृष्ट्वाऽपि सकलां सृष्टिं पद्मपत्रमिवाम्भसि ।
हरिरास्ति स्वयं लोके हरिजनो भवाम्यहम् ॥१३॥

सारी सृष्टि की रचना करके भी हरि संसार में ऐसे है जैसे जल में कमल का पत्ता होता है, मैं हरिजन हूं ॥१३॥

सृष्टेरणावणौ सोऽयं हरिर्वसति सर्वदा ।
न शून्यं हरिणा किञ्चिद्हरिजनो भवाम्यहम् ॥१४॥

सृष्टि के कण-कण में हरि निवास करता है, कोई भी वस्तु हरि के बिना नहीं है, मैं हरिजन हूं ॥१४॥

खादामि प्रत्यहं चान्नं प्रदत्तं हरिणा स्वयम् ।
जीवनं यद् विना नास्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥१५॥

मैं प्रतिदिन स्वयं हरि से दिये हुए अन्न को ही खाता हूं जिस के विना जीना भी संभव नहीं है, मैं हरिजन हूं ॥१५॥

यच्छति हरिरेवान्नं ददाति च हरिर्जलम् ।
चालयति हरिर्वायुं हरिजनो भवाम्यहम् ॥१६॥

हरि ही अन्न देता है, हरि ही जल देता है और हरि ही वायु को चलाता है, मैं हरिजन हूं ॥१६॥

गायन्ति सकला नद्य एवं च सप्त सागराः ।
सर्वेशस्य हरेः कीर्तिं हरिजनो भवाम्यहम् ॥१७॥

ये सारी नदियां और सातों समुद्र सब जीवों के स्वामी उस हरि की ही कीर्ति को गाते हैं, मैं हरिजन हूं ॥१७॥

आराधनं नगा यस्य कुर्वन्ति मूकभाषया ।
हरेस्तस्यैव दासोऽहं हरिजनो भवाम्यहम् ॥१८॥

पहाड़ मूक भाषा के द्वारा जिस की आराधना करते हैं मैं उसी हरि का सेवक हूं, मैं हरिजन हूं ॥१८॥

हरिर्ददाति सद्बुद्धिं मानवहितकारिणीम् ।
साधयति हरिः सर्वं हरिजनो भवाम्यहम् ॥१९॥

हरि ही मानव जाति का हित करने वाली अच्छी बुद्धि देता है, हरि सब कामनाओं को सिद्ध करता है, मैं हरिजन हूं ॥१९॥

स हरिर्वर्तमानेऽस्ति भूतकाले तथा स्थितः ।
भविष्यति भविष्येऽपि हरिजनो भवाम्यहम् ॥२०॥

वह हरि वर्तमान में है, भूतकाल में था और भविष्यत् में भी होगा, मैं हरिजन हूं ॥२०॥

हरिरस्ति त्रिकालज्ञः सर्वव्यापक एव च ।
हरिं सर्वत्र पश्यामि हरिजनो भवाम्यहम् ॥२१॥

हरि तीनों कालों को जानने वाला है और सर्वव्यापक है। मैं सब जगह हरि को ही देखता हूं, मैं हरिजन हूं ॥२१॥

यत्र तत्र च गच्छामि सर्वत्र दृश्यते हरिः ।
हरिर्मे नेत्रयोरस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥२२॥

मैं जहां-जहां जाता हूं मुझे हरि ही दिखाई देता है। हरि मेरे नेत्रों में समाया हुआ है, मैं हरिजन हूं ॥२२॥

विजानाति हरिः सर्वं सुकृतं दुष्कृतं तथा ।
गुह्यं किंचिद्धरेर्नास्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥२३॥

हरि मनुष्य का पाप-पुण्य सब कुछ जानता है, हरि से किसी की कोई बात छिपी हुई नहीं है, मैं हरिजन हूं ॥२३॥

गगनं मस्तकं यस्य पादौ यस्य च पर्वताः ।
हरिः स शरणं मेऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥२४॥

आकाश जिस का मस्तक है और पहाड़ जिस के पैर हैं वह हरि ही मेरा आश्रयदाता है, मैं हरिजन हूं ॥२४॥

नयने सूर्यचन्द्रौ च कर्णौ यस्य दिशः स्मृताः ।
हरिः स शरणं मेऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥२५॥

सूर्य और चांद जिस के नेत्र हैं और दिशाएं जिस के कान है वह हरि ही मेरा आश्रयदाता है, मैं हरिजन हूं ॥२५॥

अन्तरालं धराव्योम्नोरुदरं यस्य शोभनम् ।
हरिः स शरणं मेऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥२६॥

धरती और आकाश का मध्यभाग जिसका सुन्दर पेट है वह हरि ही मेरा आश्रयदाता है, मैं हरिजन हूं ॥२६॥

उद्यन्तो व्योम्नि जीमूता केशा यस्य च शोभनाः ।
हरिः स शरणं मेऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥२७॥

आकाश में उमड़ने वाले मेघ जिस के सुन्दर केश हैं वह हरि ही मेरा आश्रयदाता है, मैं हरिजन हूं ॥२७॥

आसनं च धरा यस्य शाद्वलेनान्विता शुभम् ।
हरिः स शरणं मेऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥२८॥

हरे-हरे घास वाली धरती हो जिस का सुन्दर आसन है वह हरि ही मेरा आश्रयदाता है, मैं हरिजन हूं ॥२८॥

पर्वतानां शिला यस्य पादयोः शोभना नखाः ।
हरिः स शरणं मेऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥२९॥

पहाड़ों की शिलाएं जिसके पैरों के सुन्दर नाखून हैं वह हरि ही मेरा आश्रयदाता है, मैं हरिजन हूं ॥२९॥

अनेत्रोऽपीक्षते यश्च करोति चाकरोऽपि यः ।
हरिः स शरणं मेऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥३०॥

जो भौतिक नेत्रों के विना भी देखता है और हाथों के विना भी काम करता है वह हरि ही मेरा आश्रयदाता है, मैं हरिजन हूं ॥३०॥

आकर्णयत्यकर्णोऽपि गच्छति योऽपदस्तथा ।
हरिः स शरणं मेऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥३१॥

जो भौतिक कानों के विना भी सुनता है और पैरों के विना भी चलता है वह हरि ही मेरा आश्रयदाता है, मैं हरिजन हूं ॥३१॥

विशुद्धचेतसां पुंसां योगक्षेमं दधाति यः ।
हरिः स शरणं मेऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥३२॥

जो शुद्ध चित्त वाले लोगों के योग और क्षेम को धारण करता है वह हरि ही मेरा आश्रयदाता है, मैं हरिजन हूं ॥३२॥

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखशोकाविवर्जितः ।
हरिः स शरणं मेऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥३३॥

जो जन्म, मृत्यु, बुढापा, व्याधि, दुःख और चिन्ता से रहित है वह हरि ही मेरा आश्रयदाता है, मैं हरिजन हूं ॥३३॥

पवनस्य मिषेणैव किञ्चित्स भाषते हरिः ।
जानन्ति केवलं प्राज्ञा हरिजनो भवाम्यहम् ॥३४॥

वह हरि वायु के बहाने से कुछ बोलता है परन्तु उस को पंडित आदमी ही जान सकते हैं, मैं हरिजन हूं ॥३४॥

पत्राणां मर्मरे चास्य पदचापो निशम्यते ।
योगिनस्तद् विजानन्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥३५॥

पत्तों की मर्मर में इस के पैरों की ध्वनि सुनी जाती है परन्तु उस को योगी लोग ही पहचान सकते हैं, मैं हरिजन हूं ॥३५॥

असंख्यान्येव नामानि कीर्त्यन्ते च हरेर्जनैः ।
विभिन्नसंप्रदायानां हरिजनो भवाम्यहम् ॥३६॥

भिन्न-भिन्न संप्रदायों के भिन्न-भिन्न लोगों के द्वारा हरि के असंख्य नाम बताये जाते हैं, मैं हरिजन हूं ॥३६॥

सर्वेषां संप्रदायानां हरिरेवास्ति रक्षकः ।
संज्ञाभिर्भिन्नभिन्नाभिर्हरिजनो भवाम्यहम् ॥३७॥

हरि ही भिन्न-भिन्न नामों के द्वारा सब संप्रदायों का रक्षक है, मैं हरिजन हूँ ॥३७॥

मानवा एव कुर्वन्ति भेदं हरेर्जनेषु च ।
हरेर्दृष्टौ न भेदोऽस्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥३८॥

हरि के लोगों में मनुष्य ही भेद करते हैं, हरि की दृष्टि में तो कोई भी भेद नहीं है, मैं हरिजन हूं ॥३८॥

स्वार्थस्य ये वशे भूत्वा विवदान्ति हरेः कृते ।
द्रोहिणस्ते हरेः सन्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥३९॥

जो स्वार्थ के वश में हो कर हरि (भगवान्) के लिए झगड़ा करते है वह हरि के द्रोही होते हैं, मैं हरिजन हूं ॥३९॥

समदृष्टिर्हरिर्नूनं स्मृतः सर्वेषु देहिषु ।
अभिन्नः सर्वभूतेषु हरिजनो भवाम्यहम् ॥४०॥

हरि सब प्राणियों को समान दृष्टि से देखते हैं, वह किसी से भी भेदभाव नहीं करते, मैं हरिजन हूँ ॥४०॥

सागरे सरितां गत्वा यथा संज्ञाऽपगच्छति ।
एवं सकलधर्माणां हरौ नाम निमज्जति ॥४१॥

जैसे समुद्र में जाकर नदियों का नाम मिट जाता है इसी प्रकार हरि में सब धर्मों का नाम लीन हो जाता है ॥४१॥

स्निह्यति जनमात्राय बुद्ध्वा सर्वान् हरेर्जनान् ।
हरेः प्रियः स एवास्ति हरिजनो भवाम्यहम् ॥४२॥

जो सब लोगों को हरिजन समझ कर मानव मात्र से प्यार करता है वही हरि का प्यारा होता है, मैं हरिजन हूं ॥४२॥

हरिरेव सुखं दत्ते हरिर्दुःखं ददाति च ।
नाहं तं विस्मरिष्यामि हरिजनो भवाम्यहम् ॥४३॥

हरि ही सुख देता है और हरि ही दुःख देता है। मैं उस हरि को कभी नहीं भूलूंगा, मैं हरिजन हूं ॥४३॥

ईक्षते स हरिः सर्वान् पश्यन्ति सकला न तम् ।
जानन्ति योगिनः केचिद्धरिजनो भवाम्यहम् ।।४४।।

वह हरि सब को देखता है परन्तु हरि को सब नहीं देखते उसे तो कोई योगी लोग ही देख सकते हैं, मैं हरिजन हूं ।।४४।।

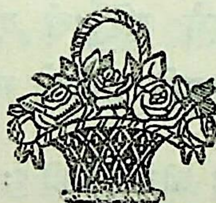
हरौ च विद्यमानोऽहं हरिर्मयि च वर्तते ।
आवयोरन्तरं नास्ति हरिजनो भवाम्यहम् ।।४५।।

मैं हरि में विद्यमान हूं और हरि मुझ में विद्यमान है । मुझ में और हरि में कोई अन्तर नहीं है, मैं हरिजन हूँ ।।४५।।

हरेर्जनश्च यो नास्ति ब्रूयाच्छपथपूर्वकम् ।
हरिजनः कथं नास्ति हरिजनो भवाम्यहम् ।।४६।।

जो हरि का जन नहीं है वह कसम खा कर बताए कि वह हरिजन कैसे नहीं है, मैं तो हरिजन हूं ।।४६।।

इति दशमः सर्गः समाप्तः



अथैकादशः सर्गः

त्यागपत्रं गृहाण मे

Accept my resignation.



हृदयं मे शुभं देहि मानवहितसाधकम् ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥१॥

हे भगवन् ! मुझे अच्छा हृदय दो जो मानव-जाति का हित करने वाला हो, नहीं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥१॥

शरीरं निर्मलं दत्तं मनो दत्तं न निर्मलम् ।
नैवं जीवितुमिच्छामि त्यागपत्रं गृहाण मे ॥२॥

हे भगवन् ! आप ने शरीर तो निर्मल दिया परन्तु मन निर्मल नहीं दिया, मेरा त्यागपत्र ले लो ॥२॥

कारयितुं शुभं कर्म संसारे प्रेषितस्त्वया ।
कारयसि न तन्मत्तस्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥३॥

आप ने मुझे अच्छा कर्म करने के लिये संसार में भेजा है परन्तु मुझ से वह (अच्छा काम) नहीं करवा रहे हो, मेरा त्यागपत्र ले लो ॥३॥

लोकसेवामहं कुर्यां निष्कामः सन् दिने दिने ।
अन्यथा प्रार्थयामि त्वां त्यागपत्रं गृहाण मे ॥४॥

हे भगवन् ! मैं प्रतिदिन निष्काम हो कर लोकसेवा करूं, नहीं तो मेरी आप से प्रार्थना है कि आप मेरा त्यागपत्र ले लो ॥४॥

दत्त्वैतन्मानुषं जन्म न चैतन्निष्फलं कुरु ।
अन्यथा प्रार्थयामि त्वां त्यागपत्रं गृहाण मे ॥५॥

हे प्रभो ! आप ने जो मुझे यह मानुष-जन्म दिया है इसे निष्फल मत करो । नहीं तो मेरी आप से प्रार्थना है कि मेरा त्यागपत्र ले लो ॥५॥

राष्ट्रसेवामहं कुर्यां सदा निःस्वार्थभावतः ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥६॥

हे प्रभो ! मैं सदा ही विना किसी स्वार्थ के राष्ट्र की सेवा करूं, नहीं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥६॥

अन्नं च मातृभूमेर्मे न कुर्यां निष्फलं प्रभो ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण जगदीश्वर ॥७॥

हे प्रभो ! मैं अपनी मातृभूमि का जो अन्न खाता हूं वह निष्फल न जाए, नहीं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥७॥

पूर्वं राष्ट्रमहं मन्ये धर्मं च तदनन्तरम् ।
अन्यथा प्रार्थयामि त्वां त्यागपत्रं गृहाण मे ॥८॥

हे भगवन् ! मैं राष्ट्र को पहले मानूं और धर्म को बाद में । नहीं तो मेरी आप से प्रार्थना है कि मेरा त्यागपत्र ले लो ॥८॥

यस्मिन् वसामि राष्ट्रेऽहं भक्तः स्यां तस्य केवलम् ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥९॥

हे प्रभो ! मैं जिस राष्ट्र में रहता हूं उसी का भक्त बनूं । नहीं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥९॥

राष्ट्सेवाप्रसंगे मां लोभः पदस्य न स्पृशेत् ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया प्रभो ॥१०॥

हे प्रभो ! राष्ट्रसेवा के प्रसंग में मुझे किसी प्रकार के पद का लोभ न हो । नहीं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥१०॥

सांप्रदायिकविद्वेषं ममापनय चेतसः ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया प्रभो ॥११॥

हे भगवान् ! मेरे मन से सांप्रदायिक द्वेष को दूर करो। नहीं तो कृपा करके मेरा त्यागपत्र ले लो ॥११॥

सांप्रदायिकसद्भावं निश्चलं कुरु मानसे ।
नैवं चेत्कुरुषे देव त्यागपत्रं गृहाण मे ॥१२॥

हे देव ! मेरे मन में सांप्रदायिक सद्भावना को निश्चल करो यदि आप ऐसा नहीं कर सकते तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥१२॥

भाषाणां कटुता गच्छेद् विदूरे मम मानसात् ।
कटुना मनसा देव नाहं जीवितुमुत्सहे ॥१३॥

हे भगवन् ! मेरे मन से भाषाओं की कटुता को दूर भगाओ। मैं कटु मन के साथ जीना नहीं चाहता ॥१३॥

जानीयां सकलं राष्ट्रं स्वकीयमेव माधव ।
प्रान्तविवादमुत्पाद्य नाहं जीवितुमुत्सहे ॥१४॥

हे भगवन् ! मैं सारे राष्ट्र को ही अपना समझूं। मैं प्रान्तों का झगड़ा पैदा कर के जीना नहीं चाहता हूँ ॥१४॥

संकटे मातृभूम्याश्च पूर्वं गण्येत मे शिरः।
जीवितुं नान्यथेच्छामि प्रार्थनां शृणु हे प्रभो ॥१५॥

हे प्रभो ! यदि मातृभमि पर कोई संकट आए तो सब से पहले मेरा बलिदान हो। इस शर्त के विना मैं जीना नहीं चाहता, मेरी प्रार्थना को सुन लो ॥१५॥

देहि चावसरं नाथ बलिदानस्य कुत्रचित्।
अन्यथा मातृभूम्यै त्वं त्यागपत्रं गृहाण मे ॥१६॥

हे भगवन् ! मुझे मातृभूमि के लिए कहीं न कहीं बलिदान का अवसर दो, नहीं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥१६॥

मातृभूमिकृते नाथ कायोत्सर्गो भवेन्मम।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥१७॥

हे भगवन् ! मेरे शरीर का त्याग मातृभूमि के लिए ही हो, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥१७॥

आस्थां सकलधर्मेषु समानां च विधेहि मे।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण जगदीश्वर ॥१८॥

हे भगवन् ! सब धर्मों में मेरे आदर को समान बनाओ, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥१८॥

धर्मान्धः सन्नहं नाथ कुर्यां द्वेषं न चापरैः ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया प्रभो ॥१९॥

हे भगवन् ! मैं धर्मान्ध हो कर दूसरों से द्वेष न करूं, नहीं तो कृपा कर के मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥१९॥

सम्मानं सर्वधर्माणां कुर्यां च मानसे निजे ।
नैतद् भवति शक्यं चेत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥२०॥

हे भगवन् ! मैं अपने मन में सब धर्मों का आदर करूं। यदि यह संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥२०॥

कदाचिद्दैवयोगाच्चेन्नेतृत्वमाप्नुयामहम् ।
कुर्यां सुपथगाँल्लोकानन्यथा नय मामितः ॥२१॥

कभी दैवयोग से यदि मैं नेता बन जाऊं तो मैं लोगों को अच्छे रास्ते पर चलने वाला बनाऊं, नहीं तो मुझे इस संसार से ले जाओ ॥२१॥

प्रशासको भवेयं चेत्तिष्ठेयं न्यायमाश्रितः ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥२२॥

हे भगवन् ! यदि मैं प्रशासक बनूं तो न्यायकारी बना रहूं, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥२२॥

वित्तं च सर्वकारस्य चोरयेयं प्रभो नहि ।
नैतद् भवति शक्यं चेत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥२३॥

हे भगवन् ! मैं सरकार के धन को न चुराऊं। यदि ऐसा संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥२३॥

वित्तव्यये नियुक्तः सन् न कुर्यां "धांधलीं" प्रभो ।
मतिमेतादृशीं देहि त्यागपत्रं गृहाण वा ॥२४॥

हे भगवन् ! मुझे ऐसी सद्बुद्धि दो कि यदि मुझे कहीं धनव्यय करने में लगाया जाए तो मैं किसी प्रकार की धांधली न करूं, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥२४॥

कर्तव्यपालनं कुर्यां यावन्मे जीवनं भवेत् ।
अन्यथा प्रार्थयामि त्वां त्यागपत्रं गृहाण मे ॥२५॥

हे भगवन् ! जब तक मेरा जीवन है, मैं अपने कर्तव्य का पालन करता रहूं, नहीं तो मेरी आप से प्रार्थना है कि मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥२५॥

भारमात्रो बुभूषामि न ह्यहं संसृतौ प्रभो ।
स्वीक्रियते न चेदेतत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥२६॥

हे भगवन् ! मैं इस संसार में भारमात्र बन कर नहीं रहना

चाहता। यदि आप को यह स्वीकार न हो तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥२६॥

सुपालयेयमुद्देश्यं निश्चितं नरजन्मनः।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥२७॥

हे भगवन्! मैं मनुष्य-जन्म के उद्देश्य का निश्चित रूप से पालन करूं, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥२७॥

स्पृशेन्मनो न कालुष्यं प्रार्थनां स्वीकुरुष्व मे।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया प्रभो ॥२८॥

हे भगवन्! मेरे मन को पाप न छूए। या तो मेरी प्रार्थना को स्वीकार करो या त्यागपत्र ले लो ॥२८॥

अपाङ्गानामहं सेवां रुग्णानां चैव सर्वदा।
विदध्यामन्यथा धातस्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥२९॥

हे भगवन्! मैं विकलाङ्ग और रोगियों की सदा ही सेवा करूं, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥२९॥

पापादेव घृणां कुर्यां पापिभ्यो मे न सा भवेत्।
पथि यतेय नेतुं तांस्त्यागपत्रं गृहाण वा ॥३०॥

हे भगवन्! मैं पाप से घृणा करूं, पापियों से घृणा न करूं।

मैं उन पापियों को अच्छे रास्ते पर ले जाने का प्रयत्न करूं। यदि ऐसा संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥३०॥

प्रेमाहं नरमात्रेण कुर्यां मे जीवने प्रभो।
अन्यथेदं निजं वस्तु गृहाण कृपया द्रुतम् ॥३१॥

हे भगवन्! मैं अपने जीवन में मानवमात्र से प्यार करूं। नहीं तो इस शरीर रूपी अपनी वस्तु को कृपा कर के शीघ्र ही लौटा लो ॥३१॥

न जातु मदिरापाने प्रवृत्तिः स्यान्मम प्रभो।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण जगदीश्वर ॥३२॥

हे प्रभो! मद्यपान में मेरी कभी भी लगन न हो। नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार लो ॥३२॥

दुराचारे न गच्छेयं स्यां च शीलसमन्वितः।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया प्रभो ॥३३॥

हे भगवन्! मैं दुराचार में न जाऊं, मेरा चरित्र अच्छा हो। नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥३३॥

एकपत्नीव्रते निष्ठां देहि कल्याणकारिणीम्।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण पुरुषोत्तम ॥३४॥

हे भगवन्! मुझे एकपत्नीव्रत में कल्याणकारी श्रद्धा प्रदान

करो अन्यथा मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥३४॥

परनारीश्च हे नाथ पश्येयं मातृवत्सदा ।
अन्यथा पुण्डरीकाक्ष जीवनान्तं कुरुष्व मे ॥३५॥

हे भगवन् ! मैं पराई स्त्रियों को माता के समान देखूं। नहीं तो मेरे जीवन का अन्त कर दो ॥३५॥

वशगानीन्द्रियाणि स्युरेतेषां न वशे प्रभो ।
नैतद् भवति शक्यं चेत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥३६॥

हे प्रभो ! मेरी इन्द्रियां मेरे वश में हों। मैं इन के वश में न होने पाऊं। यदि ऐसा संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥३६॥

गृहस्थे पशुतुल्यो न भवेयं वासनापरः ।
एवं मे संयमं देहि त्यागपत्रं गृहाण वा ॥३७॥

हे भगवन् ! मुझे ऐसा संयम दो कि मैं गृहस्थ में पशु के समान वासनाओं से न लिपटा रहूं। अन्यथा मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥३७॥

विषयेषु पतित्वाऽहं न कुर्यां जीवनं वृथा ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया प्रभो ॥३८॥

हे भगवन् ! मैं विषयों में पड़ कर अपने जीवन को व्यर्थ न बनाऊं। नहीं तो कृपा कर के मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥३८॥

अरातीन् षट् विजित्याहं भवेयं श्रेष्ठमानवः ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण पुरुषोत्तम ॥३९॥

हे भगवन् ! में छः शत्रुओं (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अहंकार) को जीत कर अच्छा मनुष्य बनूं। नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥३९॥

सज्जनाचरिते मार्गे भूयान्मम पदक्रमः ।
नैतद् भवति शक्यं चेन्नाहं जीवितुमुत्सहे ॥४०॥

हे भगवन् ! मैं भले लोगों के रास्ते पर चलूं। यदि ऐसा संभव न हो तो मैं जीना नहीं चाहता ॥४०॥

मनसो मे गतिर्भूयात्पावने शुभकर्मणि ।
नैतद् भवति शक्यं चेन्नाहं जीवितुमुत्सहे ॥४१॥

हे प्रभो ! मेरे मन की गति सदा पवित्र शुभ काम में हो। यदि ऐसा संभव न हो तो मैं जी नहीं सकता ॥४१॥

कायेन मनसा वाचाऽनिष्टं कुर्यां न कस्यचित् ।
अधुनैवान्यथा देव त्यागपत्रं गृहाण मे ॥४२॥

हे देव ! मैं शरीर, मन और वाणी से किसी की भी बुराई न

करूं, नहीं तो मेरा अभी त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥४२॥

नोपकारफलं देव कदाप्युपकृतान्नरात् ।
इच्छेयमन्यथा सद्यस्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥४३॥

हे देव! मैं उपकार किये हुए मानव से कभी प्रत्युपकार की चाहना न करूं। नहीं तो शीघ्र ही मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥४३॥

अन्येषां कार्यसिद्धौ च भवेयं बाधको न हि ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण पुरुषोत्तम ॥४४॥

हे भगवन्! मैं दूसरों की कार्यसिद्धि में बाधक न बनूं। नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥४४॥

विशालं हृदयं देहि जनानां हितसाधकम् ।
संकीर्णमनसा नाथ नाभीष्टं मम जीवनम् ॥४५॥

हे भगवन्! मुझे लोगों का हित करने वाला विशाल हृदय दो। संकीर्ण मन के साथ जीना मुझे अच्छा नहीं लगता ॥४५॥

प्राणिनां दुःखतप्तानामार्तेश्च हरणं यदि ।
न भवेज्जीवनोद्देश्यं त्यागपत्रं गृहाण मे ॥४६॥

हे भगवन्! यदि मेरे जीवन का उद्देश्य दुःखियों की पीड़ा को दूर करना न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥४६॥

कुर्यां च संग्रहं तावद् यावता जीवनं सुखम् ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥४७॥

हे भगवन् ! मैं उतना ही संग्रह करूं जितने से मेरा जीवन सुख से बीत सके । नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥४७॥

स्वेनार्जितेन वित्तेन कुर्यामुदरपूरणम् ।
शक्यं भवति नैतच्चेत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥४८॥

हे भगवन् ! मैं अपने कमाए हुए धन से ही अपना पेट भरूं । यदि ऐसा संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥४८॥

नयनाभ्यां न पश्येयं किञ्चिदप्यवरं प्रभो ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया द्रुतम् ॥४९॥

हे भगवन् ! मैं नेत्रों से कोई भी बुरी बात न देखूं । नहीं तो कृपा करके शीघ्र ही मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥४९॥

मित्रस्य चक्षुषा लोकान् पश्येयं नाथ भूतले ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥५०॥

हे भगवन् ! मैं ससार के सब लोगों को मित्र की आंख से देखूं नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥५०॥

शृणुयां न च कर्णाभ्यामभद्रं कस्यचित् प्रभो ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण जगदीश्वर ॥५१॥

हे भगवन्! मैं कानों से किसी की भी बुराई न सुनूं। नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥५१॥

कुर्यां नाथ कराभ्यां न किञ्चित्कुकर्म संसृतौ ।
अन्यथा जीवनान्तं मे विधेहि सपदि प्रभो ॥५२॥

हे भगवन्! मैं अपने हाथों से संसार में कोई बुरा काम न करूं। नहीं तो शीघ्र ही मेरे जीवन का अन्त कर दो ॥५२॥

चरणाभ्यां न गच्छेयं कुमार्गे च कदाऽप्यहम् ।
अन्यथा जीवनान्तं मे कुरुष्व झटिति प्रभो ॥५३॥

हे भगवन्! मैं अपने पैर कभी कुमार्ग पर न धरूं, नहीं तो शीघ्र ही मेरे जीवन का अन्त कर दो ॥५३॥

वदेयं जिह्वया नैव चापशब्दान् कदाऽप्यहम् ।
अन्यथा जीवनान्तं मे विधेहि परमेश्वर ॥५४॥

हे भगवन्! मैं जीभ से कभी बुरे शब्द न बोलूं। नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥५४॥

कायो भवतु मे नाथ परार्थसाधकः सदा ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥५५॥

हे भगवन् ! मेरा शरीर सदा ही परार्थ करने वाला हो । नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥५५॥

मनोवाणी तथा कर्म भेदस्त्रिषु भवेन्न च ।
नैतद् भवति शक्यं चेत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥५६॥

मेरे मन, वाणी तथा कर्म में भेद न हो। यदि ऐसा संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥५६॥

सिद्धान्तेष्वेव चास्थां मे विधेहि परमेश्वर ।
नैतद् भवति शक्यं चेत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥५७॥

हे भगवन् ! सिद्धान्तों में मेरी श्रद्धा पैदा करो । यदि ऐसा संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥५७॥

दया भवतु दीनेषु ममताऽस्तु सुकर्मणि ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण पुरुषोत्तम ॥५८॥

मुझे दीनों पर दया हो और अच्छे काम में ममता हो, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥५८॥

ग्लानिर्भवतु मे चित्ते सदैवाथ कुकर्मणः ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया प्रभो ॥५९॥

हे प्रभो ! बुरे कामों से मेरे मन को सदा ग्लानि हो, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥५९॥

धनं भवतु दानाय शक्तिस्त्रातुं च दुर्बलान् ।
नैतद् भवति शक्यं चेत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥६०॥

हे प्रभो ! मेरा धन दान के लिये हो और शक्ति दुर्बलों की रक्षा के लिये हो। यदि ऐसा संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥६०॥

जगदीश्वर जानीयामन्तरं पापपुण्ययोः ।
कृपां चेत्कुरुषे नैवं त्यागपत्रं गृहाण मे ॥६१॥

हे भगवन् ! मुझे पाप और पुण्य का अन्तर समझने की शक्ति दो। यदि आप ऐसी कृपा नहीं कर सकते तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥६१॥

शरणागतरक्षायै दद्यां प्राणानहं प्रभो ।
मां यदि कुरुषे नैवं त्यागपत्रं गृहाण मे ॥६२॥

हे भगवन् ! मैं शरणागत की रक्षा के लिए अपने प्राण तक देने के लिए तैयार रहूं, यदि आप मुझे ऐसा नहीं बना सकते तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥६२॥

लाभालाभौ समौ ज्ञत्वा कर्तव्यपालने रतः ।
स्यामहमन्यथा देव त्यागपत्रं गृहाण मे ॥६३॥

हे भगवन् ! मैं लाभ-हानि को समान समझ कर अपने कर्तव्य का पालन करता रहूं, यदि ऐसा संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥६३॥

सुखे नैवातिहृष्टः स्यां दुःखे दीनो न चेश्वर ।
गुणं ददासि नैतं चेत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥६४॥

हे प्रभो ! सुख में मुझे अधिक प्रसन्नता न हो और दुःख में दीनता न हो, यदि आप मुझे यह गुण नहीं दे सकते तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥६४॥

मनसा सरलेनेश यां वै गत्याऽविरामया ।
सुपथि चान्यथा देव त्यागपत्रं गृहाण मे ॥६५॥

हे भगवन् ! मैं अविराम गति से सरल मन के साथ अच्छे मार्ग पर चलता रहूं, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥६५॥

स्नेहेन केवलं लोकान् वशीकुर्यां बलेन न ।
अन्यथा जीवनान्तं मे विधेहि परमेश्वर ॥६६॥

मैं लोगों को प्यार से वश में करूं, शक्ति से नहीं।

हे भगवन ! यदि ऐसा संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ।।६६।।

कुर्यां प्रवंचनां नाहं कुत्रापि जगदीश्वर ।
प्रार्थनां स्वीकुरुष्वैनां त्यागपत्रं गृहाण वा ।।६७।।

हे भगवन् ! मैं कहीं भी किसी से ठगी न करूं । मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करो, नहीं तो त्यागपत्र ले लो ।।६७।।

क्रोधो मे न भवेत्क्वापि पश्चात्तापसमन्वितः ।
प्रार्थनां स्वीकुरुष्वैनां त्यागपत्रं गृहाण वा ।।६८।।

मेरा क्रोध कहीं भी पश्चात्ताप से युक्त न हो, अर्थात् मैं इतना क्रोध न करूं कि उस में कोई अनुचित काम कर के मुझे बाद में पछताना पड़े । हे भगवन् ! या तो मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करो या त्यागपत्र ले लो ।।६८।।

धारयेयं गुणानीश गुणिनामप्रमादतः ।
अन्यथा प्रार्थयामि त्वां त्यागपत्रं गृहाण मे ।।६९।।

हे भगवन् ! मैं गुणियों के गुणों को विना प्रमाद के धारण करूं, नहीं तो मेरी प्रार्थना को स्वीकार करो और मेरा त्यागपत्र ले लो ।।६९।।

यत्र कुत्रापि गच्छेयमर्जयेयं गुणानहम् ।
नान्यथा स्थातुमिच्छामि केवलमुदरम्भरिः ।।७०।।

हे भगवन् ! मैं जहां भी जाऊं, गुणों का ही संग्रह करूं । मैं

केवल पेट भरने वाला बन कर जीना नहीं चाहता हूं ।।७०।।

गुणानुकरणं कुर्यां दोषानुकरणं न च ।
नैतद् भवति शक्यं चेत्त्यागपत्रं गृहाण मे ।।७१।।

मैं सदा गुणों का अनुकरण करूं, दोषों का अनुकरण कभी न करूं। हे भगवन् ! यदि यह बात संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र ले लो ।।७१।।

भूमितुल्यां च मे देहि सहनशीलतां प्रभो ।
प्रार्थनां स्वीकुरुष्वैनां जिजीविषामि नान्यथा ।।७२।।

हे भगवन् ! मुझे धरती के समान सहनशीलता दो। मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करो, नहीं तो मैं जीना नहीं चाहता ।।७२।।

भावं परोपकारस्य देहि मे मेघवृक्षयोः ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया प्रभो ।।७३।।

हे भगवन् ! मुझे बादल और पेड़ के समान परोपकार की भावना दो, नहीं तो कृपा कर के मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ।।७३।।

हस्तेन मे न चेद्भूयादुपकृतिर्नरस्य च ।
नाहं जीवितुमिच्छामि क्षणमात्रमपि प्रभो ।।७४।।

हे भगवन् ! यदि मेरे हाथ से किसी मनुष्य का उपकार न हो तो मैं पलमात्र भी जीना नहीं चाहता ।।७४।।

विशालं हृदयं देहि गगनामिव हे प्रभो ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥७५॥

हे भगवन् ! मेरे हृदय को आकाश के समान विशाल बनाओ, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥७५॥

विचारा मे न संकीर्णा भवेयुः परमेश्वर ।
अनुग्रहं कुरुष्वैवं त्यागपत्रं गृहाण वा ॥७६॥

हे भगवन्! मेरे विचार संकीर्ण न हों । या तो मुझ पर ऐसा अनुग्रह करो या मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥७६॥

प्रधानं कर्म जानीयां प्रभो जन्म कदापि न ।
बुद्धिमेतादृशीं देहि त्यागपत्रं गृहाण वा ॥७७॥

हे भगवन् ! मुझे ऐसी बुद्धि दो कि मैं कर्म को प्रधान मानूं, जन्म को महत्त्व न दूं । नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥७७॥

स्पर्धां कुर्यां सुकार्याय घृणां कुर्यां कुकर्मणः ।
स्वीकृतं चेत्प्रभो नैतत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥७८॥

हे प्रभो ! अच्छे कार्य के लिए मुझ में स्पर्धा हो और बुरे काम से घृणा हो । यदि यह स्वीकार नहीं है तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥७८॥

ईर्ष्यया परकार्ये च न स्यां विघ्नस्य कारकः ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥७९॥

हे भगवन् ! मैं ईर्ष्या के वश में हो कर दूसरे के काम में बाधा डालने वाला न बनूं नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥७९॥

पदोन्मादे च लोकानां कुर्यामहं न पीडनम् ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया प्रभो ॥८०॥

हे भगवन् ! मैं पद के उन्माद में लोगों को पीडित न करूं, नहीं तो कृपा करके मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥८०॥

पशुषु करुणां कुर्यां पीडयेयं न तान् प्रभो ।
अशोकस्य दयां देहि त्यागपत्रं गृहाण वा ॥८१॥

हे भगवन् ! मुझे पशुओं पर भी करुणा हो, मैं उन्हें दुःखी न करूं । मुझे सम्राट् अशोक जैसी दया दो, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥८१॥

प्रस्तुत्य स्वीयमादर्शं गमयेयं जनानहम् ।
सुपथि नोपदेशेन त्यागपत्रं गृहाण वा ॥८२॥

मैं लोगों को अपना आदर्श दिखा कर अच्छे रास्ते पर ले जाने वाला बनूं, उपदेश के द्वारा नहीं । यदि ऐसा न हो तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥८२॥

स्वाभिमानो न मे नश्येदहंकारो न मां स्पृशेत् ।
अन्यथा जगदाधार त्यागपत्रं गृहाण मे ॥८३॥

हे संसार के स्वामी ! मेरा स्वाभिमान कभी नष्ट न हो

परन्तु अहंकार मुझ न छू जाए। यदि ऐसा संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥८३॥

येन पथा गतो रामः कृष्णो येन पथा गतः ।
पथा तेनैव गच्छेयं त्यागपत्रं गृहाण वा ॥८४॥

जिस रास्ते से राम गये और जिस से कृष्ण गये, मैं भी उसी रास्ते पर चलूं, नहीं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥८४॥

येन पथा गतो बुद्धो गान्धिर्येन पथा गतः ।
पथा तेनैव गच्छेयं स्थातुमिच्छामि नान्यथा ॥८५॥

जिस रास्ते से महात्मा बुद्ध गये और जिस से महात्मा गान्धी गये, मैं भी उसी रास्ते पर चलूं, नहीं तो मैं इस संसार में रहना नहीं चाहता ॥८५॥

दयानन्दोपादिष्टेन मार्गेणास्तु गतिर्मम ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण पुरुषोत्तम ॥८६॥

हे भगवन् ! मैं स्वामी दयानन्द के बताये रास्ते पर चलूं, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥८६॥

येन मार्गेण यातश्च सोऽस्माकं गुरुनानकः ।
पथा तेनैव गच्छेयं स्थातुमिच्छामि नान्यथा ॥८७॥

जिस रास्ते से वह हमारे गुरु नानकदेव गये मैं भी उसी रास्ते पर चलूं, नहीं तो मैं इस संसार में रहना नहीं चाहता ॥८७॥

ईसा च येन मार्गेण येन यातो मुहम्मदः ।
पथा तेनैव गच्छेयं स्थातुमिच्छामि नान्यथा ॥८८॥

जिस रास्ते से ईसा मसीह गये और जिस रास्ते से हजरत मुहम्मद गये मैं भी उसी रास्ते पर चलूं, नहीं तो मैं इस संसार में रहना नहीं चाहता ॥८८॥

सत्ये स्यां च हरिश्चन्द्रो वाचि दशरथस्तथा ।
जीवितुं नान्यथेच्छामि प्रार्थनां शृणु हे प्रभो ॥८९॥

हे भगवन् ! मेरी प्रार्थना को सुन लो कि मैं हरिश्चन्द्र के समान सत्यव्रत का पालन करूं और दशरथ के समान अपने वचन का पालन करूं । यदि ऐसा संभव न हो तो मैं जीना नहीं चाहता ॥८९॥

दाने स्यामीश कर्णोऽहं सत्ये चापि युधिष्ठिरः ।
कामये जीवितुं नाथ पणेनैतेन केवलम् ॥९०॥

मैं कर्ण के समान दानी बनूं और युधिष्ठिर के समान सत्य-वादी बनूं । हे भगवन् ! मैं केवल इसी शर्त के साथ जीना चाहता हूं ॥९०॥

पितृभक्तस्तथैव स्यां यथाऽसौ श्रवणोऽभवत् ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे स्वीकुरुष्वानुकंपया ॥९१॥

मैं माता-पिता का वैसा भक्त बनूं जैसा वह श्रवण था, नहीं तो कृपा करके मेरा त्यागपत्र ले लो ।।९१।।

अटला चास्तु मे श्रद्धा सदैव पितृपादयोः ।
अधुनैवान्यथा देव त्यागपत्रं गृहाण मे ।।९२।।

हे भगवन् ! माता-पिता के चरणों में मेरी श्रद्धा सदा अटल रहे, नहीं तो इसी समय मेरा त्यागपत्र ले लो ।।९२।।

अन्यायाग्रे नतं नास्तु कदापि मस्तकं मम ।
सुकरातबलं देहि त्यागपत्रं गृहाण वा ।।९३।।

हे भगवन् ! मेरा मस्तक अन्याय के आगे कभी न झुके, मुझे सुकरात जैसी शक्ति दो, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ।।९३।।

सत्यं च प्रकटीकर्तुं नैव स्यां भग्नमानसः ।
ईशेदृशं बलं देहि त्यागपत्रं गृहाण वा ।।९४।।

हे भगवन्! सचाई को प्रकट करने के लिए मेरा मन टूट न जाए। मुझे ऐसा बल दो, नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ।।९४।।

सीतेव पतिभक्ता स्यां पतिं याऽनुययौ वनम् ।
अन्यथा जीवनान्तं मे विधेहि परमेश्वर ।।९५।।

हे भगवन ! मैं सीता के समान पतिभक्ता बनूं जो पति के पीछे-पीछे वन को चली गई। यदि यह संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥९५॥

सावित्रीव पतिप्राणा यमराजो जितो यथा ।
स्यामहमन्यथा देव त्यागपत्रं गृहाण मे ॥९६॥

हे देव ! मैं उस सावित्री के समान पतिव्रता बनूं जिस ने यमराज को भी जीत लिया था। यदि यह संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥९६॥

साध्वी स्यां दमयन्तीव पत्या बभ्राम या वने ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण जगदीश्वर ॥९७॥

हे प्रभो ! मैं उस दमयन्ती के समान पतिव्रता बनूं जो पति के साथ बन में घूमती रही। नहीं तो मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लो ॥९७॥

छायेवानुससारासौ कस्तूरा मोहनं यथा ।
विधेहि मां तथाभूतां त्यागपत्रं गृहाण वा ॥९८॥

जैसे कस्तूरबाई मोहनदास कर्मचन्द गान्धी के पीछे छाया के समान घूमती रही, मुझे भी उसी प्रकार की बनाओ, नहीं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥९८॥

नाईटंगेलवन्नाथ सेवेयं पीडितानहम् ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥९९॥

हे भगवन् ! मैं फ्लोरेंस नाइटिंगेल के समान पीडित मानव की सेवा करूं नहीं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥९९॥

वीरा स्यामुचिते काले लक्ष्मीबाई यथाऽभवत् ।
नैतद् भवति शक्यं चेत्त्यागपत्रं गृहाण मे ॥१००॥

हे प्रभो ! मैं आवश्यकता पड़ने पर महारानी लक्ष्मीबाई के समान बहादुर बनूं । यदि यह संभव न हो तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥१००॥

ईश्वरोपकृतं वेत्सि दत्त्वेदं मानुषं वपुः ।
उपकारं कथं मन्ये कारयसि शुभं न चेत् ॥१०१॥

हे भगवन् ! आप यह मानव-शरीर देकर मुझे अपना उपकृत समझते हो, परन्तु यदि आप मुझ से अच्छे काम न करवाएं तो मैं आप के उपकार को कैसे मानूं ? ॥१०१॥

अस्ति दत्तस्य को लाभो भवति चेन्न सार्थकम् ।
जानासि स्वयमेवेश सार्थकं जीवनं कुरु ॥१०२॥

हे भगवन् ! यदि दी हुई वस्तु सार्थक न हो तो उसके देने से

क्या लाभ ? आप सारी बातों को जानते हैं इसलिए मेरे जीवन को सार्थक बनाओ ॥१०२॥

क्रियते सार्थकं चेन्न न मह्यं रोचते प्रभो ।
असमर्थोऽसि चेदीश त्यागपत्रं गृहाण मे ॥१०३॥

हे भगवन् ! यदि आप मेरे जीवन को सार्थक न बनाएं तो यह मुझे अच्छा नहीं लगता है। यदि आप ऐसा करने में असमर्थ हैं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥१०३॥

भवेयुः सर्वकर्माणि निष्कामानि तथा च मे ।
एतेनैव पणेनाहं जीवितुं कामये प्रभो ॥१०४॥

हे भगवन् ! मेरे सब कर्म निष्काम हों। मैं केवल इस शर्त के साथ ही जीना चाहता हूं ॥१०४॥

सकलान्येव कर्माणि कुर्यामीश त्वदर्पणम् ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण कृपया द्रुतम् ॥१०५॥

हे भगवन् ! मैं सारे कर्म आप के ही अर्पण करूं नहीं तो कृपा करके शीघ्र ही मेरा त्यागपत्र ले लो ॥१०५॥

जानीयां मानवे रूपं तवैव चिह्नितं प्रभो ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे स्वीकुरुष्वानुकंपया ॥१०६॥

हे भगवन्! मैं मानवमात्र में आप के ही रूप को प्रतिबिम्बित समझूं, नहीं तो दया करके मेरा त्यागपत्र ले लो ॥१०६॥

विश्वमात्रस्य कल्याणं भवतु मानसे स्थितम् ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाण परमेश्वर ॥१०७॥

हे भगवन्! मेरे मन में संसारमात्र के कल्याण की भावना हो, नहीं तो मेरा त्यागपत्र ले लो ॥१०७॥

विस्मरेयं न नाथ त्वां क्षणमपि ममायुषि ।
अन्यथा त्यागपत्रं मे गृहाणेशानुकंपया ॥१०८॥

हे भगवन ! मैं अपनी आयु में आप को एक पल के लिये भी न भूलूं, नहीं तो दया करके मेरा त्यागपत्र ले लो ॥१०८॥

कारयसि शुभं मत्तो जीवय मां शतं समाः ।
अधुनैवान्यथा देव त्यागपत्रं गृहाण मे ॥१०९॥

हे भगवन् ! यदि आप मुझ से अच्छा कर्म कराएं तो मुझे सौ वर्ष तक जीवित रखें, नहीं तो इसी समय मेरा त्यागपत्र ले लो ॥१०९॥

कुर्यां तादृशकर्माणि नैवायां संसृतौ पुनः ।
स्वीकृत्य प्रार्थनां देव मोचय जन्मबंधनात् ॥११०।

हे भगवन् ! मैं ऐसे काम करूं जिस से मुझे बार-बार संसार में न आना पड़े। मेरी प्रार्थना को स्वीकार करके मुझे जन्म-मरण के बंधन से छुडा लो ॥११०॥

इत्येकादशः सर्गः समाप्तः



अथ किमियं तर्जनी किञ्चोद्देश्यम् ?

What is Tarjanee and what it's aim ?

तर्जन्येषा भवतु विशदं दर्पणं पाठकानां
दृष्ट्वैतस्यां सरलविधिना स्वस्य राष्ट्रस्य रूपम् ।
चिह्नं चेत्स्यात्क्वचिदपि च तैर्लक्षितं कालिमायाः
शीलं धृत्वा विमलजलवल्लाञ्छनं क्षालयन्तु ॥१॥

यह तर्जनी पाठकों के लिये निर्मल दर्पण का काम देगी। वे इस में सरलता से अपने राष्ट्र के रूप को देख सकेंगे। यदि उन्हें इस में कोई कालिमा का धब्बा दिखाई दे तो वह निर्मल जल के समान ऊंचे चरित्र को धारण करके उसे धो दें ॥१॥

किं किं कुत्र प्रचलति कथं भारते चास्मदीये
गर्ह्यं चेड्यं सकलमपि यत्तर्जनी व्यक्तकर्त्री ।
निंद्यं निंद्यं भवतु परतः स्तुत्यमायातु राष्ट्रे
भूयाच्चेदं क्षितितलगुरुः पूर्वकाले यथाऽऽसीत् ॥२॥

हमारे भारत देश में कहां-कहां क्या-क्या हो रहा है। क्या निन्दा के योग्य है और क्या प्रशंसा के योग्य है। इन सारी बातों को यह तर्जनी प्रकट करेगी। जो जो बात निन्दा के योग्य है वह इस राष्ट्र से दूर भाग जाए और जो स्तुति के योग्य है वह इस में स्थिर रहे। यह भारत प्राचीन काल के समान फिर सारे संसार का गुरु बन जाए ॥२॥

भ्रष्टाचारो भवतु च यथा भ्रष्ट एव स्वराष्ट्रात्
सर्वे दोषा द्रुततरमितो यान्तु पातालगर्तम् ।
आश्रित्यैतद् विमलचरितं भासतां पूर्णविश्वे
कृत्वा सर्वं मदभिलषितं तर्जनी स्यात्कृतार्था ॥३॥

भ्रष्टाचार इस रान्ट्र से दूर भाग जाए। इस के सब दोष शीघ्र ही पाताल में समा जाएं। यह राष्ट्र निर्मल उच्च चरित्र को धारण करके सारे संसार में चमक उठे। यह तर्जनी इन सब मनोरथों को पूरा करके सफलता को प्राप्त करे ॥३॥

मार्गभ्रष्टो भवति यदि वै राष्ट्रवासी च कश्चि-
त्तर्जन्येषा सपदि मनुजं तादृशं दर्शयेत ।
भीतिर्नास्याः क्वचिदपि भवेत्तर्जने राष्ट्रहन्तुः
कृत्वा सर्वं मदभिलषितं तर्जनी स्यात्कृतार्था ॥४॥

यदि कोई राष्ट्रवासी अच्छे रास्ते से गिर जाए तो यह तर्जनी उसे दिखा दे। राष्ट्र को हानि पहुंचाने वाले की प्रताडना करने में इस (तर्जनी) को कहीं भी भय न हो। यह तर्जनी इन सब मनोरथों को पूरा करके सफलता को प्राप्त करे ॥४॥

दत्त्वा प्रज्ञां छलविरहितां निश्चलां मानवेभ्यः
संदर्श्यैवं निखिलभुवनं भ्रातृसंबंधबद्धम् ।
प्राप्य स्थानं परमरुचिरं काव्यमंदारराजौ
कृत्वा सर्वं मदभिलषितं तर्जनी स्यात्कृतार्था ।।५।।

यह तर्जनी सब मनुष्यों को छल से हीन स्थिर बुद्धि दे । सारे संसार को भाईचारे के संबंध से बाँध दे। काव्यरूपी मंदार वृक्ष की पंक्ति में अच्छा स्थान प्राप्त करे। यह तर्जनी इन सब मनोरथों को पूरा करके सफलता को प्राप्त करे ।।५।।

धर्माश्रित्य क्वचिदपि कलिर्भारते नैव भूया-
दन्योन्यं वै जहतु कटुतां संप्रदायाश्च सर्वे ।
एको वृक्षो बहुविधशिफा भावनेयं स्थिरा स्यात्
कृत्वा सर्वं मदभिलषितं तर्जनी स्यात्कृतार्था ।।६।।

धर्म की आड़ ले कर भारत में कहीं भी झगड़ा न हो। सब संप्रदाय एक दूसरे के प्रति अपनी कटुता को छोड़ दें। लोगों में यह भावना स्थिर हो जाय कि यह हमारा राष्ट्र एक विशाल वृक्ष है और सब संप्रदाय इस की भिन्न-भिन्न शाखाएं है। यह तर्जनी इन सब मनोरथों को पूरा कर के सफलता को प्राप्त करे ।।६।।

वर्षश्चायं प्रथमशतकं कीर्त्यते गान्धिनश्च
भावक्लिन्नं स्मरति भुवनं मोहनं शान्तिदूतम् ।
श्रद्धां सर्वे विविधविधिभिर्दर्शयान्ति स्वकीयां
तर्जन्येषा भवति च ममाकिंचनस्योपहारः ॥७॥

इस वर्ष गान्धी की शताब्दी मनाई जा रही हैं। भावों से भीगा सारा संसार शान्ति के दूत मोहनदास कर्मचन्द गान्धी को याद कर रहा है। सब लोग अनेक प्रकार से अपनी-अपनी श्रद्धा दिखा रहे हैं। मुझ अकिंचन की यह तर्जनी ही तुच्छ उपहार है ॥७॥
